धर्म-प्रसंग में स्वामी शिवानन्द

(भगवान श्रीरामकृष्ण देव के अन्तरंग शिष्य)

प्रथम भाग

स्वामी अपूर्वानन्द द्वारा संकलित

श्रीरामकृष्ण आश्रम,
अक्टूबर, १९५३] धन्तोली, नागपुर [मूल्य २॥)

अध्यक्ष, श्रीरामकृष्ण आश्रम,
धन्तोली, नागपुर – १, म. प्र.

'४०२८

श्रीरामकृष्ण - शिवानन्द - स्मृतिग्रन्थम
पुष्प ५२ वाँ

मुद्रक :
रामगोपाल गिरिधार
बजरंग मुद्र
बर्डीबाग, ना

प्रकाशक के दो शब्द

भगवान श्रीरामकृष्ण देव के अन्यतम लीलासहचर स्वामी शिवानन्दजी महाराज के अमृतमय उपदेशों को पुस्तकाकार में पाठकों के समक्ष रखते हुए हमें बड़ी प्रसन्नता हो रही है। विभिन्न समयों में जनसाधारण के कल्याणार्थ तथा भक्तों के प्रश्नों के उत्तर में उन्होंने जो उपदेश प्रदान किए थे, वे ही त्यागी और गृही भक्तों की डायरी से संग्रहित कर इस पुस्तक में ग्रथित हुए हैं।

जब से स्वामी शिवानन्दजी ने श्रीरामकृष्ण मठ और मिशन के अध्यक्ष-पद पर अधिष्ठित हो उक्त संघ के कार्यभार को सँभाला, तब से उनके पास दिन से लेकर रात तक सब समय—विशेषकर छुट्टी के दिनों में—जिज्ञासुओं, भक्तों तथा मुमुक्षुओं का ताँता लगा रहता था। कोई संसार-ज्वाला से जला हुआ अपने तापों को शीतल करने उनके पास आता, कोई देश और जन सेवा की भावना लिए तत्सम्बन्धी समस्याओं का समाधान कराने आता, तो कोई आध्यात्मिक पथ की कठिनाइयों में उलझकर साधन-भजन, कर्म एवं उपासना सम्बन्धी रहस्यों के आलोक में उन्हें सुलझाने आता। और वे भी आत्ममग्न महापुरुष इतनी आत्मीयता के साथ उन सब समस्याओं का समाधान करते कि उन लोगों के मन का भार तत्क्षण हलका हो जाता और वे लोग उन उपदेशों का अपने जीवन में बड़ा प्रभाव अनुभव करते। उन्हीं उपदेशों को सकलित कर हम प्रस्तुत पुस्तक के रूप में प्रकाशित कर रहे हैं।

स्वामी शिवानन्दजी के अन्यतम गुरुभ्राता स्वामी विज्ञानानन्दजी महाराज ने मूल ग्रन्थ को भूमिका लिखने की बड़ी दया की है। उसे भी हम यहाँ सन्निविष्ट कर रहे हैं।

श्री पृथ्वीनाथ शास्त्री, एम. ए. और पण्डित व्रजनन्दन मिश्र इन बन्धुद्वय ने मूल बँगला ग्रन्थ से प्रस्तुत पुस्तक का अनुवाद किया है। उन्होंने भाव और भाषा दोनों की दृष्टि से इस अनुवाद-कार्य में जो

सफलता पाई है, वह श्लाघनीय है। हम उनके प्रति अपनी हार्दिक
ज्ञता प्रकाशित करते हैं।

हमारा विश्वास है कि इस पुस्तक के पाठ से पाठकों को
जीवन को सुचारु रूप से गढ़ने में बड़ी सहायता मिलेगी।

नागपुर,
विजयादशमी,
१८-१०-१९५३

प्रकाशक

भूमिका

भगवान श्रीरामकृष्ण देव के अन्तरंग और लीला-सहायक रूप में जो लोग उनके श्रीपादपद्मों में अपना जीवन उत्सर्ग कर धन्य हुए थे, महापुरुष स्वामी शिवानन्दजी महाराज उनमें अन्यतम थे। श्रीगुरुदेव के चरण-प्रान्त में और बाद में भी, उनको घनिष्ठ रूप से जानने का सुअवसर मुझे प्राप्त हुआ था। दक्षिणेश्वर के कालीमन्दिर में, श्रीश्रीठाकुर• के कमरे में उनके समीप मैंने महापुरुष महाराज को पहले-पहल देखा था। यह घटना सम्भवतः १८८४ ई० की अर्थात् ५२-५३ वर्ष पहले की होगी। वे उस समय देखने में कुछ लम्बे कद के थे, और बड़े तेजस्वी मालूम हुए। ठाकुर ने उनसे कहा, "देख, यहाँ तो कितने लोग आते हैं, कितने लड़के भी आते हैं, पर किसी से 'तेरा घर कहाँ है अथवा तेरे पिता का क्या नाम है', यह सब कभी कुछ नहीं पूछता। किन्तु तुझसे ये सब बातें पूछने की इच्छा हो रही है। अच्छा, बता तो भला, तेरा घर कहाँ है और तेरे पिता का नाम क्या है?" इसके उत्तर में महापुरुष महाराज ने अपने पिता का नाम और घर का पता बताया। यह सुनकर ठाकुर ने कहा, "अच्छा, तू उनका लड़का है? उनको तो मैं जानता हूँ। वे तो सिद्ध पुरुष हैं। तब तो तेरा होगा, तेरा जरूर होगा।" उस दिन और भी अन्यान्य बातें हुई थीं।

इसके बाद परिस्थितियों के उलट-फेर के कारण मैं महापुरुष महाराज को कुछ वर्षों तक नहीं देख पाया। बाद में, जब मैं इंजीनियर था —यह आज से कोई ४१ वर्ष पहले (सन् १८९७) की बात होगी, मैं छुट्टी बिताकर बाँकीपुर से अपनी नौकरी की जगह पर वापस जा रहा था। रास्ते में बक्सर रेल्वे स्टेशन पर उतरकर प्लैटफार्म पर घूम रहा था। मैंने देखा कि एक गेरुआ वस्त्रधारी साधु भी प्लैटफार्म पर टहल रहे हैं— देखने में वे विशेष फुर्तीले और बुद्धिमान मालूम होते थे। दूर से उन्हें देखने पर ही मेरे मन में [illegible]ठा कि ये अवश्य ही श्रीरामकृष्ण मठ के

साधु हैं। यह सोचकर मैं ज्योंही उनके पास पहुँचा, तो देखता हूँ कि ये तो महापुरुष महाराज हैं! मैंने उन्हें प्रणाम किया; उन्होंने भी मुझे पहचान लिया, और बताया कि वे काशी जा रहे हैं तथा वहीं दत्त के मकान पर ठहरेंगे। मुझसे भी वहाँ आने के लिए कहा। उनके आदेशानुसार मैं काशी जाकर उनसे मिला। वे मुझे देखकर बड़े प्रसन्न हुए और मेरी खूब देख-भाल की। उनसे मुझे मठ के सब समाचार ज्ञात हुए।

इसके कुछ समय बाद जब मैंने आलमबाजार मठ में जीवन अर्पित किया, उस समय महापुरुष महाराज दाक्षिणात्य अंचल में थे। उस समय वे कठोर तपस्वी का जीवन व्यतीत करते थे। अल्प बातचीत करते और विशेष गम्भीर रहते थे। कुछ दिनों बाद वे मठ लौट आए।

महापुरुषजी ने दीर्घ काल अल्मोड़ा, कनखल आदि स्थानों में तपस्या करते हुए बिताया था। बीच-बीच में वे मठ आते और कुछ दिन यहाँ रहकर पुनः तपस्या के लिए चले जाते थे। वे बड़े कठोर तपस्वी थे। उनके अलौकिक त्याग एवं संयम आदि को देखकर श्रीमत् स्वामी विवेकानन्दजी उन्हें 'महापुरुष' कहकर पुकारा करते थे। वे जब स्वामीजी के साथ बुद्ध-गया में थे, उस समय एक दिन वे समाधि में इतने मग्न हो गए कि स्वामीजी ने उनसे कहा, "आप मानो बुद्धदेव हैं।" और यह भी एक कारण था कि स्वामीजी ने उन्हें 'महापुरुष' की संज्ञा दी थी।

श्रद्धेय स्वामी प्रेमानन्दजी महाराज ने सन् १९१८ में शरीर-त्याग किया। इसके लगभग दो वर्ष पूर्व से ही महापुरुष महाराज ने बेलुड़ मठ के संचालन का भार अपने ऊपर ले लिया था। तभी से उन्होंने लोगों के साथ मिलना-जुलना प्रारम्भ किया। सन् १९२२ में, श्रीमत् स्वामी ब्रह्मानन्दजी महाराज के देह-त्याग के बाद महापुरुषजी श्रीरामकृष्ण मठ और मिशन के अध्यक्ष हुए। वे इस संघ के द्वितीय अध्यक्ष थे। उसी समय से उनकी जीवन-धारा में मानो आमूल परिवर्तन हो गया। वे सैकड़ों लोगों के साथ अथक रूप से मिलने-जुलने एवं उन सबों को धर्मोपदेश आदि देने लगे। सबके साथ मधुर और स्नेहपूर्ण व्यवहार करना, सबकी देख-भाल करना, सबकी खोज-खबर लेना तथा सब काम-काज की देख-रेख करना—

यह मानो उनका नित्य कार्य ही हो गया। उनके पास से कोई भी खाली हाथ या शून्य-चित्त लेकर वापस नहीं लौटता था। वे सबके मन-प्राण परिपूर्ण कर देते थे। सहस्रों स्त्री-पुरुष उनके पास से दीक्षा आदि कृपा पाकर धन्य हुए हैं। कितने ही लोग उन पर अगाध श्रद्धा-भक्ति रखते थे, किन्तु उनमें जरासा भी अहं-भाव नहीं था। वे कहते कि श्रीश्रीठाकुर ही मेरे हृदय में बैठकर सब पर कृपा कर रहे हैं, मैं तो ठाकुर और माँ* को छोड़ और कुछ नहीं जानता। बालक के समान उनके मुख से सर्वदा 'माँ, माँ' की वाणी सुनाई देती थी।

अन्तिम कुछ वर्ष नाना प्रकार की शारीरिक अस्वस्थता के कारण उनको हम लोगों ने अत्यन्त कष्ट पाते देखा है। किन्तु वे जिस प्रकार अविचलित रूप से वह सब सहन करते, उससे मालूम होता था कि उन्हें देह-बोध बिलकुल नहीं था। उनकी ऐसी अवस्था में भी बहुत दूर-दूर के स्थानों से अनेक लोग उनकी कृपा और आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए आया करते थे। वे किसी को भी हताश नहीं करते थे, सबों पर हृदय खोलकर कृपा करते थे। दूसरों का दुःख-कष्ट देखकर वे फिर और अधिक स्थिर नहीं रह सकते थे, और अपना अनन्त कृपा-भंडार खोल देते थे। साधारण मनुष्य के लिए यह सब सम्भव नहीं। श्रीश्रीठाकुर, श्रीश्रीमाँ और स्वामीजी आदि सभी ने मानो उनके भीतर बैठकर अनेक लोगों का उद्धार किया है। महापुरुष महाराज ने वास्तविक ही अपने को ठाकुर के साथ इतना मिला दिया था कि उनकी कोई पृथक् सत्ता ही नहीं रह गई थी। उन्होंने जिन पर कृपा की है, वे लोग ठाकुर की ही कृपा के भागी हुए हैं। उनके उपदेश भी ठाकुर के ही उपदेश हैं।

यदि उनसे कोई पूछता कि शरीर-त्याग के बाद वे कहाँ जाएँगे, तो तुरन्त उत्तर देते कि मैं श्रीरामकृष्ण-लोक में जाऊँगा, ठाकुर के पास रहूँगा और युग-युग में ठाकुर का लीला-सहचर होकर उनके साथ आऊँगा। अब वे स्थूल देह का त्याग कर ठाकुर के पास सूक्ष्म शरीर में हैं और सबका कल्याण कर रहे हैं—यही मेरा विश्वास है।

---

* भगवान श्रीरामकृष्ण देव की धर्मपत्नी श्रीसारदा देवी।

प्रस्तुत ग्रन्थ में महापुरुष महाराज के जो उपदेश संकलित किए
हैं, वे सब अमूल्य उपदेश श्रीभगवान के पवित्र आशीर्वाद के समान भ
भक्तों और साधकों के लिए असीम कल्याण का निदान होंगे। इस
के पाठ से भक्तों के हृदय में धर्मभाव उद्दीप्त हो उठे, यही मेरी आन्त
प्रार्थना है।

श्रीरामकृष्ण मठ,
इलाहाबाद,
७ अगस्त, १९३७

विज्ञानानन्द

धर्म-प्रसंग में स्वामी शिवानन्द

बेलुड़ मठ

अक्टूबर, १९१८

एक बालक भक्त ने स्वप्न में महापुरुष महाराज * के दर्शन किए। अतः उसने उनको यह बात पत्र द्वारा सूचित की। इस समय वही बालक उनकी अनुमति लेकर कुछ दिन के लिए मठ में रहने आया है। एक दिन प्रातःकाल महापुरुष महाराज कुछ ही देर हुई मन्दिर से लौटे थे कि वह भक्त भक्तिपूर्ण हृदय से उन्हें प्रणाम कर उनसे मन्त्रदीक्षा पाने की प्रार्थना करने लगा और कहा, "महाराज, आपने दया करके मुझे स्वप्न में दर्शन दिए थे; मेरी यह ऐकान्तिक इच्छा है कि आप कृपा कर मुझे दीक्षा प्रदान करें।" यह कहते-कहते उस बालक भक्त की आँखें डबडबा आईं और उसने महापुरुषजी के युगलचरणों को पकड़ लिया। भक्त का इस प्रकार अतिशय आग्रह देखकर उन्होंने सस्नेह कहा, "बच्चा, मैं तुम्हें खूब आशीर्वाद देता हूँ, ठाकुर † के

* स्वामी शिवानन्द। इनके अलौकिक त्याग एवं संयमादि को देखकर स्वामी विवेकानन्दजी इन्हें 'महापुरुष' कहकर पुकारते थे। एक समय जब ये स्वामीजी के साथ बुद्ध-गया में थे, तब एक दिन समाधि में ये इतने मग्न हो गए कि स्वामीजी बोल उठे, "आप तो मानो बुद्धदेव हैं।" और यह भी एक कारण था कि स्वामीजी ने इन्हें 'महापुरुष' की संज्ञा दी थी।

† भगवान श्रीरामकृष्ण देव।

स्वामी शिवानन्द

हो। उनकी दया से, उनके अवतारत्व में जब तुम्हारा पूरा विश्वास हुआ है, तब फिर कोई चिन्ता नहीं। तुम बड़े भाग्यवान हो—पूर्व जन्मार्जित अनेकानेक पुण्यों के फल से भगवान के युगावतारत्व मे विश्वास होता है। तुम्हे जब यह हुआ है, तब फिर चिन्ता किस बात की? मै कहता हूँ—मेरी बात पर विश्वास करो—तुम इस भव-बन्धन से अवश्य ही मुक्त हो जाओगे। खूब आन्तरिक हृदय से उनको पुकारो—कातर होकर प्रार्थना करो; वे तुम्हारे इस विश्वास को और भी पक्का कर देंगे, और भक्ति-विश्वास से तुम्हारा हृदय परिपूर्ण हो जायगा।"

भक्त—"जप किस प्रकार करूँ? उसका क्या कोई विशेष नियम है?"

महापुरुषजी—"प्रेम सहित बारम्बार नाम लेना ही जप है। वही करना, और वैसा करते-करते आनन्द पाओगे। जप का कोई विशेष नियम नहीं है—सभी समय, चलते-फिरते, खाते, लेटते, सोते, स्वप्न देखते, जागते सभी अवस्थाओं में जप किया जा सकता है। वास्तविक वस्तु है—प्रेम। जितना अधिक प्रेम के साथ उनका नाम लोगे, उतना ही अधिक आनन्द पाओगे। वे अन्तर्यामी है—वे देखते है हृदय। हृदय मे व्याकुलता आने पर—व्याकुल होकर उनको पुकारने पर, तुरन्त उसका फल अनुभव करोगे। बालक जिस प्रकार माता-पिता के पास हठ करके रोता है, ठीक उसी प्रकार उनसे विश्वास, भक्ति और प्रेम मांगो, अवश्य पाओगे। वे जीवन्त जाग्रत् देवता हैं, पतित-पावन, कलिकल्मषहारी, परम कारुणिक, भक्तवत्सल और प्रेम-मय है। खूब उनका नाम जपो। सब समय तो, जहाँ तक हो सके, जप करोगे ही; किन्तु विशेष रूप से प्रातःकाल और सायंकाल

श्रीचरणों में तुम्हारी भक्ति, विश्वास और प्रेम दिन-पर-दिन खूब बढ़े। तुम उनकी ओर खूब अग्रसर हो जाओ। दीक्षा के सम्बन्ध में तो मैं कुछ भी नहीं जानता—मैंने किसी को दीक्षा दी भी नहीं है। ठाकुर ने मेरे भीतर गुरु-बुद्धि बिलकुल दी ही नहीं। मैं उनका सेवक हूँ, उनका दास हूँ, उनकी सन्तान हूँ। इसके अतिरिक्त, दीक्षा देने के सम्बन्ध में ठाकुर के पास से मैंने अभी तक कोई आदेश भी नहीं पाया है। मैं जानता हूँ 'रामकृष्ण' नाम ही इस युग का महामन्त्र है। जो भक्तिपूर्ण हृदय से पतित-पावन युगावतार ठाकुर का नाम जपेगा, उसके लिए भक्ति, मुक्ति सभी कुछ करामलकवत् है। 'रामकृष्ण' इस युग का गौरवान्वित महाशक्तिशाली नाम है। जीव की मुक्ति के लिए रामकृष्ण नाम जपना ही यथेष्ट है। इसको छोड़ और किसी प्रकार की दीक्षा की आवश्यकता है, यह तो मैं नहीं सोचता। जो कोई शरीर, मन और वाणी के द्वारा श्रीरामकृष्ण का आश्रय लेगा, उनका नाम जपेगा, वह मुक्त हो जायगा, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। जो राम हुए, जो कृष्ण हुए, वे ही इस युग में श्रीरामकृष्ण-रूप में आविर्भूत हुए हैं—जीव को मुक्ति देने के लिए।"

भक्त—"ठाकुर का नाम तो जितना हो पाता है, जपता हूँ। उनके श्रीचरणों में प्रार्थना भी करता हूँ। वे युगावतार भगवान हैं, इस पर भी मेरा पूर्ण विश्वास है। आप उन्हीं के अन्तरंग पार्षद हैं, आपकी कृपा प्राप्त होने पर मेरा जीवन सार्थक हो जाता—यह मेरी दृढ़ धारणा है।"

महापुरुषजी—"मेरी तो कृपा है ही; नहीं तो भला इतना कहता ही क्यों? खूब प्रार्थना करता हूँ, तुम्हारा कल्याण

हो। उनकी दया से, उनके अवतारत्व में जब तुम्हारा पूरा विश्वास हुआ है, तब फिर कोई चिन्ता नहीं। तुम बड़े भाग्यवान हो—पूर्व जन्मार्जित अनेकानेक पुण्यों के फल से भगवान के युगावतारत्व में विश्वास होता है। तुम्हें जब यह हुआ है, तब फिर चिन्ता किस बात की? मैं कहता हूँ—मेरी बात पर विश्वास करो—तुम इस भव-बन्धन से अवश्य ही मुक्त हो जाओगे। खूब आन्तरिक हृदय से उनको पुकारो—कातर होकर प्रार्थना करो; वे तुम्हारे इस विश्वास को और भी पक्का कर देंगे, और भक्ति-विश्वास से तुम्हारा हृदय परिपूर्ण हो जायगा।"

भक्त—"जप किस प्रकार करूँ? उसका क्या कोई विशेष नियम है?"

महापुरुषजी—"प्रेम सहित बारम्बार नाम लेना ही जप है। वही करना, और वैसा करते-करते आनन्द पाओगे। जप का कोई विशेष नियम नहीं है—सभी समय, चलते-फिरते, खाते, लेटते, सोते, स्वप्न देखते, जागते सभी अवस्थाओं में जप किया जा सकता है। वास्तविक वस्तु है—प्रेम। जितना अधिक प्रेम के साथ उनका नाम लोगे, उतना ही अधिक आनन्द पाओगे। वे अन्तर्यामी हैं—वे देखते हैं हृदय। हृदय में व्याकुलता आने पर—व्याकुल होकर उनको पुकारने पर, तुरन्त उसका फल अनुभव करोगे। बालक जिस प्रकार माता-पिता के पास हठ करके रोता है, ठीक उसी प्रकार उनसे विश्वास, भक्ति और प्रेम माँगो, अवश्य पाओगे। वे जीवन्त जाग्रत् देवता हैं, पतित-पावन, कलिकल्मषहारी, परम कारुणिक, भक्तवत्सल और प्रेम-मय हैं। खूब उनका नाम जपो। सब समय तो, जहाँ तक हो सके, जप करोगे ही; किन्तु विशेष रूप से प्रातःकाल और सायंकाल

नियमपूर्वक, निर्दिष्ट समय में, एक ही स्थान पर बैठकर ध्यान करना परमावश्यक है। वही करो।"

भक्त — "ध्यान किस तरह करूँ, महाराज? ध्यान करने की चेष्टा करता हूँ, किन्तु ध्यान क्या है, सो भी अच्छी तरह नहीं जानता, और ध्यान भी उतना नहीं हो पाता।"

महापुरुषजी — "पहले-पहल ध्यान लगना कठिन होता है। उनकी कृपा से उनका नाम लेते-लेते, प्रार्थना करते-करते जब उनके ऊपर प्रेम उत्पन्न होगा, तब ध्यान अनायास ही लग जायगा। पहले-पहल ध्यान करने की चेष्टा न करके निरपवित्र, कामकाञ्चनवर्जित, शुद्धम् अपापविद्धम्, परम कारुणिक, युगाचार्य, जगद्गुरु उन श्रीरामकृष्ण की श्रीमूर्ति के सामने बैठकर खूब व्याकुल भाव से बालक के समान रो-रोकर प्रार्थना करना। कहना, 'प्रभु, तुमने जगत् के उद्धार के लिए नर-देह धारण की है, तथा समस्त जीवों के लिए तुमने कितना कष्ट सहा है; मैं अत्यन्त दीन-हीन हूँ; भजनहीन, पूजनहीन, ज्ञानहीन, भक्तिहीन, विश्वासहीन और प्रेमहीन हूँ, दया करके मुझे विश्वास, भक्ति, ज्ञान, प्रीति और पवित्रता दो; मेरा मानव-जन्म सफल हो जाय। तुम कृपा करके मेरे हृदय में प्रकाशित होओ — मुझे दिखाई दो, प्रभो! तुम्हारी ही एक सन्तान ने मुझे तुम्हारे पास इस प्रकार प्रार्थना करना सिखलाया है। तुम मुझ पर कृपा करो।' इस तरह प्रार्थना करते-करते तुम्हें उनकी कृपा प्राप्त हो जायगी। तब मन स्थिर हो जायगा — जप-ध्यान करने में मन लगने लगेगा, हृदय में प्रेम और आनन्द का अनुभव होगा, प्राणों में आशा का संचार होगा। इस प्रकार खूब प्रार्थना करने के बाद जैसा मैंने बताया है, वैसा जप करना। उनका पवित्र नाम जपते-जपते

धीरे-धीरे आप-ही-आप ध्यान होने लगेगा। जप के साथ-साथ खूब एकाग्र भाव से ऐसा सोचना कि वे अत्यन्त स्नेहमयी दृष्टि से तुम्हारी ओर देख रहे हैं। वही भावना जब समान रूप से दीर्घ काल तक बनी रहती है, तो उसी को ध्यान कहते हैं। तुम उनका नाम जपते-जपते प्रार्थना करना, 'प्रभु, ऐसा कर दो, जिससे मुझे ध्यान लगे।' वे वैसा ही कर देंगे — निश्चय जानो। वे ही सबों के हृदय के गुरु, पथ-प्रदर्शक, प्रभु, पिता, माता और सखा हैं। किसी भी प्रकार के प्रेम का भाव लेकर उनकी श्रीमूर्ति की भावना या उनके गुणों का चिन्तन करना ही ध्यान है। अभी इसी भाव से करते जाओ, बाद में प्रयोजनानुसार वे खुद ही अन्दर से ज्ञात करा देंगे कि किस प्रकार ध्यान करना होगा। खूब व्याकुल होकर पुकारो — खूब रोओ। रोते-रोते चित्त के सभी मालिन्य दूर हो जायेंगे, और वे कृपा करके अपना स्वरूप प्रकाशित करेंगे। यह सब एक दिन में या एकदम नहीं होता। करते जाओ, पुकारते जाओ — अवश्य ही उनका सहारा पाओगे — आनन्द पाओगे।"

भक्त — "व्याकुलता ही तो नही आती। उनको पाने के लिए व्याकुलता किस प्रकार बढ़ाई जाय, महाराज?"

महापुरुषजी — "व्याकुलता, बच्चा, कोई किसी को सिखा नही सकता। वह अपने आप ही समय पर आ जाती है। प्राणों में भगवान के अभाव का जितना अधिक बोध होगा, हृदय में उतनी ही अधिक व्याकुलता बढ़ेगी। यदि इतनी व्याकुलता न आए, तो समझना होगा कि अभी भी समय नही आया है। माँ जानती हैं किस बालक को किस समय खिलाना होगा। यदि देरी होती है, तो माँ जानती हैं कि उस बालक को देरी से भोजन देना होगा।

उसका क्या कारण है, सो तो वे ही जानती हैं। प्रभु ही माँ हैं। उनके ऊपर सम्पूर्ण विश्वास और निर्भरता के साथ पड़े रहना होगा। वे अन्य जागतिक माता के सदृश तो नहीं हैं ? वे अन्तर्यामी हैं। कौन बालक सचमुच उन्हें देखना चाहता है, सो वे अच्छी तरह जानते हैं और समयानुसार दर्शन भी देते हैं। खूब पुकारते जाओ, खूब उनका नाम लेते जाओ। उनके ऊपर सम्पूर्ण निर्भर रहकर पड़े रहो— जिस समय जो आवश्यकता होगी, वे सब दे देंगे। पवित्रता धर्मजीवन की भित्ति है। पवित्र हृदय में भगवान शीघ्र प्रकट होते हैं। मन, वाणी और शरीर से पवित्र होने की चेष्टा करो। अभी तो तुम्हारा छात्र-जीवन है। छात्र-जीवन तो अत्यधिक पवित्र होता है। ठाकुर पवित्र हृदय एवं विषयवासना-रहित बालकों से बहुत स्नेह करते थे। जिसके मन में विषय का दाग नहीं लगा है, उसे बहुत शीघ्र चैतन्य की प्राप्ति होगी। और आवश्यकता है—श्रद्धा तथा विश्वास की। जैसा-जैसा तुम्हें बताया गया है, उस सब पर सरल हृदय से विश्वास करके ठीक उसी प्रकार से साधना में लग जाओ; देखोगे, उनकी दया होगी—खूब आनन्द पाओगे। असल बात है— साधना करनी होगी। ठाकुर कहते थे, 'केवल मुँह से भाँग-भाँग कहने से तो नशा नहीं आता ! भाँग लाना होगा—परिश्रम करके घोटना होगा, भाँग पीना होगा—तब कहीं नशा आता है।' इसी प्रकार भगवान का नाम जपो, उनका ध्यान करो, उनके पास प्रार्थना करो—आन्तरिक भाव से; तभी आनन्द पाओगे।"

भक्त— "बहुत आशा लगाकर आया था कि आप कृपा कर मुझे दीक्षा दे देंगे। आप मुझ पर कृपा करें, महाराज।"

महापुरुषजी— "बच्चा, तुमसे तो कहा ही है कि दीक्षा

के सम्बन्ध में अभी तक ठाकुर के पास से कोई आदेश नहीं मिला है। तुम दीक्षा के लिए सोच मत करो। अन्तर में उन्हें पुकारते जाओ — वे तुम्हारी प्रार्थना अवश्य सुनेंगे — तुम्हारी मनोवाञ्छा पूर्ण करेंगे। तुम्हे जब दीक्षा लेने की आवश्यकता होगी, तब वे ही सब कुछ ठीक कर देंगे, यह निश्चय समझ लो। मैं भी आन्तरिक प्रार्थना करता हूँ, प्रभु के श्रीचरणकमलों में तुम्हारा आन्तरिक विश्वास और पूर्ण निर्भरता हो; प्रेम और पवित्रता से तुम्हारा हृदय प्लावित हो जाय, प्रभु तुम्हारे विश्वास, भक्ति, प्रीति की दिन-पर-दिन वृद्धि करें। खूब प्रार्थना करता हूँ।" यह कहते-कहते आँखें मूँदकर कुछ देर तक बैठे रहे। बाद में भक्त के मस्तक पर दोनों हाथ रखकर नेत्र मूँदे ही हुए उन्होंने आशीर्वाद दिया। भक्त भी हृदय के अत्यधिक आवेग से अश्रुपात करने लगा। जब वह कुछ शान्त हुआ, तब महापुरुषजी ने स्नेहपूर्वक अपने हाथ से उसको ठाकुर का प्रसाद खाने के लिए दिया।

इस वर्ष उस समय श्रीश्रीमाँ * बागबाजार में मुखर्जी लेन (वर्तमान उद्बोधन लेन) में एक घर में रहती थीं। पूजनीय शरत् महाराज (स्वामी सारदानन्द) भी वही घर थे तथा श्रीमहाराज (स्वामी ब्रह्मानन्द) और पूजनीय हरि महाराज (स्वामी तुरीयानन्द) बलराम-मन्दिर में थे। कुछ दिन मठ में रहने के बाद बालक भक्त ने श्रीश्रीमाताजी के, तथा ठाकुर के अन्तरग पार्षदों के दर्शन करने की इच्छा महापुरुष महाराज से प्रकट की और उनसे कलकत्ता जाने की अनुमति माँगी। इस पर उन्होंने कहा, "हाँ, हाँ, जाओ, अवश्य जाओ। इतने समीप आकर भी उनके दर्शन नही करोगे? तुम्हारा अहोभाग्य है कि इस समय

* भगवान श्रीरामकृष्ण देव की धर्मपत्नी श्रीशारदा देवी।

ने सभी कष्टों में ही है। ऐसा सुयोग सहज नहीं मिलता। प
बागबाजार में जाना — माँ के दर्शन करना। वे इस युग की
हैं। साक्षात् जगदम्बा हैं। ठाकुर की लीला की परिपुष्टि करने
के लिए उन्होंने नर देह धारण की है। उनकी आशीर्वाद पाकर
जगत् धन्य हुआ जा रहा है। माँ को हम लोग कोई भी नहीं
समझ सके। उनका भाव इतना गंभीर है कि उनको कौन समझ
सकता है? वे अपने को बिल्कुल पहचानने नहीं देतीं। साधारण
गृहस्थों के घर की स्त्रियों के समान रहती हैं — सभी कार्य अपने
हाथ से करती हैं, भक्तों की सेवा करती हैं। कौन कहेगा कि वे साक्षात्
भगवती हैं! ठाकुर ने एक दिन मुझसे कहा था, 'यह जो मन्दिर
में माँ है और यह नहबत की माँ — दोनों अभिन्न हैं।' माँ को
प्रणाम करके उनके समीप भक्ति-विश्वास की प्राप्ति के लिए खूब
प्रार्थना करना। उनके प्रसन्न होते ही जीव को भुक्ति, मुक्ति सब मिल
जाती है। उद्बोधन में शरत् महाराज भी रहते हैं — माँ के महावीर
सेवक; उनके भी दर्शन करना। उनसे कहना तो वे तुरन्त माँ के
दर्शन करा देंगे। माँ का आशीर्वाद लेकर बाद में बलराम-मन्दिर
में जाना। वहाँ पर महाराज रहते हैं, हरि महाराज भी हैं। उनके
समीप जाकर मेरा नाम लेकर कहना कि उन्होंने मुझे आपके दर्शन
के लिए भेजा है। वे बहुत आशीर्वाद देंगे। महाराज हैं ठाकुर के
साक्षात् मानस-पुत्र। उनका आशीर्वाद पाने पर मन में समझना
कि ठाकुर का ही आशीर्वाद पाया है। ठाकुर की आध्यात्मिक
शक्ति इस समय उनके द्वारा जगत् पा रहा है। हरि महाराज
साक्षात् शुकदेव हैं — मूर्तिमान वेदान्तस्वरूप हैं — ब्रह्मज्ञ पुरुष
हैं। ये सब स्थूल शरीर में जब तक हैं, तब तक मनुष्य इनके
दर्शन, पवित्र सत्संग और आशीर्वाद पाकर धन्य होता जा रहा है।

इसके बाद ये सब ध्यानगम्य हो जायँगे। तब ध्यान-बल से अत्यन्त कठिनतापूर्वक इनके दर्शन प्राप्त हो सकेंगे। यह बड़ा शुभ अवसर है। पूर्ण श्रद्धा के साथ इन लोगों के दर्शन करना। यह जो इधर कुछ दिन मठ में रहे हो, ठाकुर के स्थान मे — गंगा-तट पर इतने साधु-महात्माओ का सग किया है, घर जाकर यह सब भूल न जाना, सदा स्मरण करते रहना। इससे चित्त शुद्ध होगा। तुम्हारा भाग्य अच्छा है।"

बेलुड़ मठ

बृहस्पतिवार, २८ अक्टूबर, १९२०

प्रातःकाल मठ के सभी साधुगण सदैव की भाँति धीरे-धीरे महापुरुष महाराज के कमरे में आ रहे हैं। आज वे मानो कुछ विशेष गम्भीर भाव से तन्मयचित्त होकर बैठे हैं। एक साधु मठ के एक शाखा-केन्द्र से आए हैं। वे अपनी मनोदशा महापुरुषजी से कहकर बोले, "महाराज, साधन-भजन जो कुछ बन पड़ता है, करता हूँ,—किन्तु उतना आनन्द तो नही आता। प्रायः ऐसा ही प्रतीत होता है मानो एक routine work (नित्य कर्म) के समान ही सब किए जाता हूँ। इससे न प्राणों मे तृप्ति होती है और न शान्ति मिलती है।"

महापुरुषजी ने अत्यन्त शान्त भाव से कहा, "देखो, बच्चा, शान्ति पाना इतना सरल काम नही है। यह रास्ता बड़ा ही कठिन है—बहुत ही thorny है (काँटों से भरा है)।

'क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया।
दुर्गं पथस्तत् कवयो वदन्ति॥'*

---

* कठोपनिषद् — १।३।१४

— 'छुरे की धार जैसी तेज और दुर्लंघ्य होती है, मनीषियों ने इस (आत्म-साक्षात्कार के) पथ को भी वैसा ही दुर्गम वतलाया है।' ये सव मन्त्रद्रष्टा ऋषियों के वचन हैं। यह बहुत ही दुर्गम पथ है। यह वाहर से जितना सीधा प्रतीत होता है, उतना है नहीं—बहुतसा झाड़-झंखाड़ जला डालना पड़ता है। किन्तु यह भी सत्य है कि यदि हृदय से उनको चाहा जाय, तो उनकी कृपा जरूर होती है।

"ठाकुर की जीवनी तो पढ़ी है न; उनको ही, देखो, कितनी कठोर साधना करनी पड़ी थी ! तभी तो उन्हें जगन्माता के दर्शन मिले। यह बात दूसरी है कि उन्होंने यह सब लोक-शिक्षा के लिए किया था; उनकी वात ही अलग है। उनके ऊपर अनुराग न होने से कुछ भी न होगा। आन्तरिक खिंचाव चाहिए। ठाकुर जैसा कहते थे, तीन प्रकार का प्रेमाकर्षण होने पर भगवान मिलते हैं—सती का पति की ओर, माँ का सन्तान की ओर और कंजूस का धन की ओर। इन तीनों प्रेमाकर्षणों के एक होने पर जितनी व्याकुलता पैदा होती है, उतनी ही व्याकुलता जब किसी के प्राणों में आ जाय, तभी उसे भगवान मिलते हैं और तभी ठीक-ठीक आनन्द और शान्ति मिलती है। पर यह सत्य है कि यह व्याकुलता एक दिन में पैदा नहीं होती और उनकी कृपा बिना भी नहीं होती। उसके लिए रोज अभ्यास करना पड़ता है—रो-रोकर प्राणों की आकुलता प्रकट करनी पड़ती है। 'प्रभु, दया करो, मैं साधारण मनुष्य हूँ, तुम दया करके यदि दर्शन न दोगे, तो भला मेरे वश की क्या बात जो मैं तुम्हारे दर्शन पा जाऊँ ! कृपा करो, प्रभु, इस दुर्बल पर कृपा करो' —इस प्रकार नित्य प्रार्थना करना। जितना उनके लिए रोओगे,

उतना ही मन का मैल धुल जायगा। और उस स्वच्छ मन में भगवत्प्रतीति हो उठेगी।

"तुम लोग साधु हुए हो, उनके नाम पर घर-द्वार छोड़कर आए हो—उनके ऊपर तो तुम्हारा अधिकार है। ठाकुर को खूब स्वजन समझकर उन पर अपना जोर दिखाना। तुम लोगों पर दया करने के लिए ही तो तुम्हें माँ-बाप की गोद से लाकर उन्होंने अपने आश्रय में रखा है, अपने संघ में स्थान दिया है। उनके द्वार पर शरणागत होकर पड़े रहो। पवहारी बाबा ने जैसे स्वामीजी* से कहा था, 'गुरु के द्वार में कुत्ते के माफिक पड़े रहो।' स्वामीजी ने यह बात हम लोगों से बहुत बार कही थी। कुत्ता जैसे मालिक के घर को कभी नहीं छोड़ता, उसे खाना दो या न दो, मारो या कुछ भी करो, वह कभी अपने मालिक का द्वार छोड़कर जैसे नहीं जाता, वैसे ही हमें भी प्रभु के द्वार पर एकनिष्ठ भाव से उनके शरणागत होकर पड़े रहना होगा। अच्छा भोजन मिले या बुरा, मीठा मिले या कड़ुआ, जैसे भी हो, जो अन्त तक उनके आश्रय में पड़ा रहेगा, उसका काम बन जायगा। तुम लोग ठाकुर के आश्रय में हो, उनके संघ में स्थान पाया है, तुम्हें सोच किस बात की है? ठाकुर कहा करते थे, 'बाप ने जिस बेटे का हाथ पकड़ रखा है, उसे गिरने का बिलकुल डर नहीं रहता।' इसी प्रकार जितने दिन इस संघ में उनके आश्रय में रहोगे, तब तक कोई डर नहीं, वे तुम लोगों का ठीक उद्धार करेंगे—यह निश्चय जानो। तुम लोगों ने ठाकुर को नहीं देखा, किन्तु हम लोगों को देखा है। हम लोग उनके पदाश्रित सेवक हैं; हमारे मुख से उनकी बात सुन पा रहे हो।

* स्वामी विवेकानन्दजी।

यही क्या कम सौभाग्य की बात है? तुम लोग खूब ही fortunate (भाग्यवान) हो। किन्तु इसके बाद की generation (बाद में यहाँ आनेवाले) तो हम लोगों को भी न देख पाएगी। इसी लिए स्वामीजी ने इस संघ की स्थापना की थी। इस संघ-शरीर के द्वारा ठाकुर अनेक शताब्दियों तक संसार के कल्याण के लिए वर्तमान रहेंगे। अब वे इस संघ-शक्ति के द्वारा अपना कार्य करेंगे। तुम सदा ध्यान रखना कि loyalty to the Sangha is loyalty to Thakur — संघ को मानना ही ठाकुर को मानना है। ठाकुर की इच्छा से ही स्वामीजी इस मठ की स्थापना कर गए हैं। और हम लोग जो कुछ कहते हैं, वह भी सब जगत् के कल्याण के लिए, तुम लोगों के कल्याण के लिए ही है। लोगों को कुछ ठगने तो हम लोग नहीं आए। जो ठीक है, वही हम लोग कहते हैं। यहाँ जो कोई भी है, उसकी दिन-प्रतिदिन उन्नति हो रही है। तुम्हारा भी कल्याण हो रहा है। यह विश्वास रखो कि हमारे ठाकुर बड़े ही आश्रितवत्सल हैं। शरीर, मन, वचन से जो उनका आश्रय लेते हैं, वे उनकी सब प्रकार से रक्षा करते हैं। तुम लोग विषयासक्ति छोड़कर यहाँ भगवत्प्राप्ति के लिए आए हो, शान्ति प्राप्त करने आए हो। उनके ऊपर सब छोड़कर उनका श्रीमुख जोहते हुए पड़े रहो। वे निश्चय ही तुम लोगों का कल्याण करेंगे, शान्ति देंगे। तुम लोगों का कर्तव्य है उनका आदेश पालन करना, उनके बताए पथ पर चलना। तुम लोग साधु हो; विशेषकर कामिनी और कांचन से सदा खूब दूर रहना। पवित्रता और सरलता ही तुम्हारा मूलमंत्र है। ठाकुर सब क्षमा करते हैं, लेकिन हृदय में कपट भाव वे कभी क्षमा नहीं करते। जिनका मन और मुख एक नहीं है अथवा जो किसी प्रकार की लुका-छिपी करते हैं,

ठाकुर उन्हे इस संघ में नहीं रखते, निकाल देते हैं। यहाँ सब सच्चे लोग ही रहेंगे।"

संन्यासी—"आप आशीर्वाद दीजिए, जिससे ठाकुर के आश्रय में पड़ा रह सकूँ। महाराज, मन में कभी-कभी अनेक प्रकार के विकार होते हैं, जिससे बहुत अशान्ति होती है। इसके लिए क्या करूँ? आप दया करके कुछ उपदेश दीजिए।"

महापुरुष महाराज सस्नेह बोले, "हाँ, हाँ, बच्चा, खूब आशीर्वाद देता हूँ—ठाकुर के आश्रय मे रहकर तुम्हारा मानव-जीवन धन्य हो जाय। मनोविकार की जो बात कहते हो, उस ओर अधिक ध्यान न देना। जानते हो, ठाकुर पवित्रता की ज्वलन्त मूर्ति हैं! उनके श्रीविग्रह का ध्यान करने पर और उनका पवित्र नाम जपने पर देखोगे, मन का समस्त विकार लज्जा से माथा नवा देगा और फिर जोर नही करेगा। ज्योंही कोई मनोविकार हो, त्योंही उनके समीप रोकर प्रार्थना करना, 'प्रभु, मैं तो दुर्बल हूँ, मेरी रक्षा करो। तुम न बचाओगे तो और कौन बचाएगा। मैं तो तुम्हारा ही आश्रित दास हूँ।' इस तरह उन्हें सब कुछ बतलाते जाना। तभी वे तुम्हारी प्रार्थना सुनेंगे। अच्छा, तुम खूब तड़के उठते हो तो? खूब तड़के ही उठा करो। रात को ३-४ बजे के बाद कभी न सोना। साधु क्या उस समय सोता है? रात में बहुत थोड़ा खाना। इससे देखोगे कि तीन-साढ़ेतीन बजे नींद खुल जायगी, और खूब refreshed (ताजा) अनुभव करोगे। ठाकुर कहते थे, 'रात का खाना तो जलपान करना है।' हम लोग तो रात में बहुत थोड़ा खाते हैं। ठाकुर के पास जब जाया करते थे, तभी से यह अभ्यास हो गया है।"

इसी समय मठ के भण्डारी महाराज महापुरुषजी को प्रणाम

करके बोले कि एक भक्त आए हैं और उन्होंने अपनी मृत स्त्री के निमित्त ठाकुर की विशेष पूजा और भोगादि के लिए कुछ रुपया दिया है। महापुरुष महाराज ने यह सुनकर कहा, "ठाकुर तो श्राद्ध आदि का अन्न ग्रहण नहीं किया करते थे। अतएव यह बात उस भक्त से कह देना। हम लोग जान-बूझकर उनके भोग में यह सब कैसे दे सकेंगे? ये तो खिलौने के ठाकुर नहीं हैं और न मन-गढ़न्त या काल्पनिक ठाकुर हैं। अरे बच्चा, ये तो जीवन्त ठाकुर हैं। किसी प्रकार की भूल-चूक होने पर वे उसी समय बता देते हैं।"

बेलुड़ मठ

शनिवार, २५ दिसम्बर, १९२०

आज पूर्णिमा है। कोलाहल शान्त है, भूतल पर धीरे-धीरे सन्ध्यादेवी का पदार्पण हो रहा है। दूरस्थ देवालयों में आरती के शंख-घंटे बजने लगे। मठ में भी मंगल-शंख ने आरती की सूचना दे दी। साधु-भक्तवृन्द भक्तिभाव से मन्दिर में आने लगे। महापुरुष महाराज भी सदा की भाँति मन्दिर में आए। ठाकुर को भक्तिपूर्वक प्रणाम कर वे मन्दिर के दक्षिण-पूर्व कोने में एक मृगचर्म पर बैठ गए — हाथ जोड़े हुए, अर्धनिमीलिताक्ष, ध्यान-मग्न। आरती प्रारम्भ हो गई। आरती के वाद्यों की प्रशान्त गम्भीर ध्वनि मन को एकाग्र कर दे रही है; विशेषकर महापुरुष महाराज की सौम्य मूर्ति प्रत्येक के चित्त को और भी अधिक अन्तर्मुख कर रही है। धीरे-धीरे आरती समाप्त हो गई। सब लोग अब श्रीश्रीठाकुर का गुण-गान गाने लगे। महापुरुष महाराज भी

सबके साथ स्वर मिलाकर तन्मयतापूर्वक मधुर कण्ठ से गान करने लगे। गान समाप्त हो गया। एक-एक करके अधिकांश लोग श्रीश्रीठाकुर को प्रणाम कर यथास्थान ध्यान आदि के लिए चले गए। महापुरुष महाराज पुनः नेत्र बन्द कर ध्यानमग्न हो गए। मुखमण्डल पर समाधि की पूर्ण शान्ति विराज रही है। इस प्रकार बहुत समय बीत गया।

लगभग ८॥ बजे महापुरुष महाराज अपने कमरे में लौट रहे हैं। अस्फुट स्वर में उनका गुनगुनाना हार्दिक आनन्द को व्यक्त कर रहा है। कण्ठ-स्वर अत्यन्त मधुर और प्रेमपूर्ण है। कुछ साधु तथा भक्तगण पहले से ही उनके दर्शन के लिए प्रतीक्षा कर रहे हैं। महापुरुषजी के अपने कमरे में आने पर सब क्रमशः उन्हें प्रणाम कर बैठ गए। कमरा एक प्रकार से निस्तब्ध है, कोई भी जैसे बातचीत नहीं करना चाहता है। धीरे-धीरे सामान्य बात-चीत हो रही है। बातचीत के सिलसिले में साधन-भजन का प्रसंग उठा। महापुरुष महाराज तन्मय-भाव से बोले, "रात ही साधना के लिए सर्वोत्कृष्ट समय है। ध्यान-जप नित्य ही खूब निष्ठापूर्वक करना चाहिए, उससे मन शुद्ध होता है। कुछ समय नित्यप्रति निष्ठापूर्वक ध्यान-जप करने से हृदय में सर्वदा एक भगवद्भाव जाग्रत् रहता है, और एक प्रकार के आनन्द की अनुभूति होती है। ध्यान करने के बाद तत्क्षण ही आसन नहीं छोड़ना चाहिए, इससे भाव दृढ़ नहीं हो पाता। ध्यान समाप्त होने पर अपने आसन पर बैठे-बैठे कुछ देर तक ध्यान के विषय में ही चिन्तन करना चाहिए। इसके बाद ध्यान के अनुकूल सुन्दर-सुन्दर स्तोत्र आदि पाठ करना चाहिए। उससे ध्यान का भाव एवं आनन्द और भी घनीभूत तथा दीर्घ काल स्थायी हो जाता है। आसन

छोड़ने के बाद भी कुछ समय तक किसी के साथ बातचीत न कर मन-ही-मन स्मरण-मनन करना चाहिए। उससे अनुभव होता है, मानो उसी ध्यान का नशा लगा हुआ है। इससे खूब आनन्द भी मिलता है और एक उच्च भाव का आश्रय लिए रहने में विशेष सहायता मिलती है।"

एक सन्यासी — "महाराज, हम लोगों को तपस्या के लिए बीच-बीच में बाहर भी तो जाना चाहिए? तीर्थ पर्यटन करना या परिव्राजक होकर भिन्न-भिन्न स्थानों में घूमना-फिरना— यह सब भी तो साधु-जीवन के अनुकूल है?"

महाराज — "देखो, बच्चा, कहावत है कि 'A rolling stone gathers no moss' (जो पत्थर हमेशा लुढ़कता रहता है, उस पर काई नहीं जमती)। केवल घूमने-फिरने से ही क्या धर्म होता है या भगवत्प्राप्ति होती है? फिर भी, अहंकार-अभिमान नष्ट करने के लिए अथवा श्रीभगवान पर पूर्ण निर्भरता प्राप्त करने के लिए कभी-कभी मधुकरी वृत्ति या निःसम्बल अवस्था में निर्जनवास या सामान्य यात्रा आदि करना अच्छा है। इससे आध्यात्मिक कल्याण होता है, इसमें सन्देह नहीं। पर वर्ष-प्रति-वर्ष ऐसा करते रहना निष्प्रयोजन है। लाटू महाराज* बीच-बीच में कहा करते थे, 'कहाँ घूमता फिरेगा? यदि तू श्रीरामकृष्ण की सन्तान है, तो एक स्थान पर बैठा रह।' यह ठीक बात है। जिसके लिए यहाँ है, उसके लिए वहाँ भी है। और कहाँ घूमते फिरोगे, और यह करोगे भी किसलिए? वे भीतर में ही जो हैं। इसी लिए तो ठाकुर अक्सर ही यह गाना गाते थे—

* भगवान श्रीरामकृष्ण देव के अन्तरंग शिष्य स्वामी अद्भुतानन्द।

'आपनाते आपनि थेको मन, जेओ नाको कारो घरे।
जा चावि ता बसे पाबि, खोजो निज अन्तःपुरे।।
परम धन सेई परसमणि, जा चाबि ताइ दिते पारे।
कतो मणि पड़े आछे, एइ चिन्तामणिर नाचदुयारे।।'" †

यह कहकर महापुरुष महाराज बार-बार मधुर कण्ठ से इस गान को गाने लगे। फिर कुछ देर तक चुप रहकर बोले, "गाने की अन्तिम कड़ी में ही तत्त्वोपदेश दिया गया है—'कतो मणि पड़े आछे, एइ चिन्तामणिर नाचदुयारे।' उनके द्वार पर सब कुछ पड़ा हुआ है—भुक्ति,. मुक्ति, यहाँ तक कि ब्रह्मज्ञान भी। लेकिन, बच्चा, खोजना पड़ेगा, व्याकुल होकर खोजना पड़ेगा। यह खोजना ही है साधन-भजन। आन्तरिक भाव से उनको चाहने पर वे कृपा करते हैं। और उनके कृपा करके द्वार थोड़ा खोल देने पर, कुल-कुण्डलिनी को जाग्रत् कर देने पर देखोगे कि सब कुछ भीतर में ही है। पर उनकी दया के द्वारा कुल-कुण्डलिनी के जागे बिना कुछ भी नहीं होगा।"

एक भक्त—"जी हाँ, महाराज (स्वामी ब्रह्मानन्द) भी यही कहते थे कि मूलाधार से सुषुम्ना के मार्ग में से होकर जब कुल-कुण्डलिनी जाग्रत् हो ऊपर उठती है, तभी ब्रह्मविद्या का द्वार खुल जाता है।"

महाराज—"हाँ, ठीक बात है। कुल-कुण्डलिनी जाग्रत् हुए बिना कुछ भी नहीं हो सकता। इसी लिए तो ठाकुर माँ के

† हे मन, तुम अपने आप में ही रहो, कहीं और न जाओ। अपने भीतर ही खोजो, मन, फिर जो चाहोगे सो बैठे ही मिलेगा। वह परम धन है, पारस-मणि है, जो चाहोगे वही दे सकता है। इस चिन्तामणि के प्रवेश-द्वार में कितने मणि पड़े हुए हैं!

पास इतना रो-रोकर प्रार्थना करते थे, 'माँ जागो, माँ जागो—जागो माँ कुल-कुण्डलिनी!'"

पहले पद को कहते-कहते ही महापुरुषजी स्वयं गाने लगे—

"जागो माँ कुल-कुण्डलिनी,
तुमि नित्यानन्द-स्वरूपिणी, तुमि ब्रह्मानन्द-स्वरूपिणी,
प्रसुप्तभुजगाकारा आधारपद्मवासिनी।
त्रिकोणे ज्वले कृशानु, तापित होइलो तनु,
मूलाधार त्यज शिवे स्वयम्भू-शिव-वेष्टिनी।
गच्छ सुषुम्नार पथ, स्वाधिष्ठाने होओ उदित,
मणिपुर अनाहत विशुद्धाज्ञा संचारिणी।
शिरसि सहस्रदले, परम शिवेते मिले,
क्रीड़ा करो कुतूहले सच्चिदानन्द-दायिनी॥"*

अहा! वह कैसी तन्मयता थी! वह शब्दों द्वारा व्यक्त नहीं की जा सकती। महापुरुषजी तीन बार यह गाना गाकर चुप हो गए। मधुर और शान्त भाव से उनका मुखमण्डल चमक रहा था। समस्त कमरे में मानो गान का भाव बिखरा पड़ रहा था। चारों ओर निस्तब्धता छाई हुई थी। इस प्रकार बहुत समय बीत गया। बाद में महापुरुषजी अत्यन्त करुण स्वर से बार-बार कहने

* ओ माँ, कुल-कुण्डलिनी, जागो! तुम नित्यानन्द-स्वरूपिणी हो, ब्रह्मानन्द-स्वरूपिणी हो; ऐ मूलाधार-पद्म में बसनेवाली माँ, तुम सर्प के समान सोई हुई हो। त्रिताररूपी अग्नि से, ओ माँ, मेरा तन-मन जला जा रहा है। ऐ स्वयम्भू शिव की सहचरी शिवे, मूलाधार को छोड़, स्वाधिष्ठान में उदित होकर सुषुम्ना के पथ से ऊपर उठो। फिर, माँ, मणिपुर, अनाहत, विशुद्ध और आज्ञा चक्रों में से होते हुए मस्तक में सहस्रार में पहुँचकर परमशिव के साथ युक्त हो जाओ और हे सच्चिदानन्ददायिनी, वहाँ पर आनन्द के साथ क्रीड़ा करो!

लगे, "माँ, माँ, जगज्जननी !" मानो मातृहीन बालक रो रहा हो। शनैः-शनैः कुछ प्रकृतिस्थ हो वे फिर धीरे-धीरे बोल रहे हैं, "अहा ! ठाकुर के श्रीमुख से कितने दिन इस गान को सुना है, इसकी कोई गणना नही। किसी-किसी दिन चामर लेकर माँ को व्यजन करते-करते यह गाना गाते थे। अहा, कितने तन्मय होकर वे इस गान को गाते थे ! हम लोग सब बिलकुल चकित हो जाते थे। उनका थोड़ा भी बाह्य ज्ञान नही रहता था। धीरे-धीरे चँवर डुल रहा है और ठाकुर मतवाले होकर गा रहे हैं ! कितना मधुर कण्ठ था उनका ! वह कैसा भाव था, वर्णन नही किया जा सकता। सबके प्राण द्रवित हो जाते थे। ऐसी व्याकुल पुकार से माँ क्या बिना जागे रह सकती है? और वे माँ ही हैं ब्रह्म-कुण्डलिनी। स्वामीजी कहा करते थे, 'जानते हो, इस बार ब्रह्म-कुण्डलिनी स्वयं जाग्रत् हुई हैं। जिनकी इच्छा से सृष्टि, स्थिति, लय सब कुछ हो रहा है, वे ही महामाया महाकुण्डलिनी इस बार ठाकुर के आह्वान से जगी हैं। Individual (व्यक्तिगत) कुण्डलिनी तो जाग्रत् होगी ही, इसमें आश्चर्य ही क्या है ?' इसी लिए तो समस्त जगत् में एक महाजागरण का स्वर जाग उठा है। और वे आद्याशक्ति ही जगत् के कल्याण के लिए ठाकुर की देह का आश्रय लेकर लीला कर रही हैं। इस बार अब चिन्ता किस बात की ?"

ढाका

१९२२

१९२२ ई० के पहले भाग में महापुरुष महा[illegible] ढाका गए थे। ढाका मठ में वहाँ के [illegible]

[illegible] दिन

सन्ध्या समय वे श्रीरामनाम-सम्मेलन में सम्मिलित हुए थे। महापुरुषजी के शुभागमन का समाचार पाने के पूर्व ही बहुत से भक्त स्त्री-पुरुष तथा मठ के साधु-ब्रह्मचारीगण वहाँ एकत्रित हो गए थे। सम्मिलन की प्रथा के अनुसार सर्वप्रथम एक भक्त ने एक भजन गाया, "रामकृष्ण चरणसरोजे मजरे मन मधुप मोर (ऐ मेरे मन-भ्रमर, रामकृष्ण-चरणकमल में मग्न हो जा)" इत्यादि। भजन के बाद 'श्रीरामकृष्णवचनामृत' के पाठ का कार्यक्रम था। फिर भी एकत्रित सभी लोगों ने महापुरुषजी का उपदेश सुनने का आग्रह प्रकट किया। किन्तु उन्होंने 'वचनामृत' का पाठ होने के लिए ही कहा। अब 'वचनामृत' पाठ होने लगा। एक स्थान पर ठाकुर सन्यास-जीवन के कठिन नियमों के सम्बन्ध में कह रहे हैं, "सन्यासियों के लिए कामिनी और कांचन त्याज्य हैं। स्त्रियों का चित्र भी देखना सन्यासी को निषिद्ध है।" इसी समय एक ब्रह्मचारी ने महापुरुषजी से प्रश्न किया, "महाराज, ठाकुर ने तो कहा है कि साधुओं को स्त्रियों का चित्र भी न देखना चाहिए; किन्तु हम लोगों को तो विविध कार्य-वश स्त्रियों से बातें भी करनी पड़ती हैं। ऐसी अवस्था में हम लोगों को क्या करना चाहिए?" महापुरुषजी क्षण भर चुप रहकर बोले, "देखो बच्चा! घर में जब थे, तब माँ-बहनें तो थीं? माँ-बहनों के साथ जिस प्रकार सरल हृदय से मिलते-जुलते थे, ठीक वैसा ही मन लेकर अब स्त्रियों से आवश्यकतानुसार वार्तालाप करना। मन में सोचना कि वे तुम्हारी माँ-बहनें हैं। पर विशेष प्रयोजन बिना भक्त स्त्रियों के साथ भी वार्तालाप करना ठीक नहीं — विशेषकर अकेले में। पाँच लोगों के सामने कार्योद्देश से वार्तालाप कर सकते हो। तुम लोग साधु होने

ए हो। अपने भाव को विशुद्ध रखो, अपने आदर्श की ओर ष्ट रखकर सर्वदा चलो। नारी-जाति को साक्षात् जगज्जननी ा अंश समझो। यही है साधना।"

ब्रह्मचारी—"किन्तु इतने पर भी यदि मन मे कुभाव त्पन्न हो, तो क्या करें, महाराज?"

महापुरुषजी उसके उत्तर में जरा दृढ़ स्वर से बोले, "जिनके न में स्त्रियो को देखने से ही कुभाव का उदय होता है, वे साधु ाने के उपयुक्त तो है ही नही, और-तो-और वे समाज में रहने ायक भी नहीं हैं। उन लोगों के लिए उचित है कि वे किसी से एकान्त स्थान में चले जायँ, जहाँ उन्हें स्त्रियों का मुख तक दखाई न दे; जहाँ स्त्रियों के साथ कोई सम्बन्ध न आए। और उस थान में दीर्घ काल तक कठोर भाव से जीवन व्यतीत कर, मन ी इन सभी पाशविक प्रवृत्तियों को समूल ध्वंस कर तब लोगों े बीच आना चाहिए। समाज का भी तो एक नियम है, एक ृंखला है।"

थोड़ी देर 'वचनामृत' का पाठ होने के बाद एक श्रोता ने श्न किया—"भगवत्प्राप्ति के लिए सबसे अच्छा मार्ग कौनसा है?"

महापुरुषजी—"शास्त्र में तो भगवत्प्राप्ति के उपाय के सम्बन्ध मे अनेक प्रकार के उपदेश हैं; किन्तु अन्तिम उपदेश हैं शरणागति—शरणागति। यदि कोई श्रीभगवान के चरणों में आत्मनिवेदन करके, सर्वतोभावेन उनका शरणागत होकर पड़ा रह सके, तो फिर उसे कोई चिन्ता नहीं। गीता मे भगवान अर्जुन को योग, कर्म, भक्ति, ज्ञान इत्यादि सब उपदेश देकर अन्त में कहते हैं—

'सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥'*

यही है समग्र गीता का सार। भगवान प्रतिज्ञापूर्वक कहते हैं, 'धर्म-अधर्म सब छोड़कर केवल मेरी शरण ले। ऐसा होने पर मैं तुझे सभी पापों से मुक्त कर दूँगा।' परन्तु भगवान में सर्वतोभावेन *आत्मनिवेदन और शरणागति एक दिन में नहीं आती।* यह बड़ी कठिन बात है। जितना पूजा-पाठ, जप-ध्यान, साधना आदि किया जाता है— वह सब एकमात्र 'शरणागति' पाने के लिए। और सर्वोपरि चाहिए *भगवत्कृपा। अनन्यमन से* उनका ध्यान, चिन्तन और प्रार्थना करते रहने पर वे कृपा करके वह दुर्लभ शरणागति प्रदान करते है।"

* * * *

किसी दूसरे समय ढाका मठ के एक सेवक ने अत्यन्त भारी हृदय से महापुरुषजी को बतलाया था, "राजा महाराज ने मुझे आदेश दिया था, 'तू और चाहे जो कुछ कर, पर सवेरे-शाम जप करना न भूलना।' किन्तु मेरा कार्य भजन और क्लास आदि करना है —इसके लिए सप्ताह में पाँच दिन मुझे सन्ध्या समय बाहर जाना पड़ता है। अतः सन्ध्याकाल में जप करने का समय नहीं मिल पाता। इससे मन में बड़ी अशान्ति रहती है।" उसके उत्तर में महापुरुषजी ने कहा था, "देखो, यह जो क्लास और भजन आदि करते हो, उसे *ठीक जप-ध्यान के समान साधन-ज्ञान से करो। श्रीभगवान का* भजन, उनके विषय में पाठ और चर्चा आदि—ये सब भजन-साधन के ही तो अंग हैं। और इस भाव को प्रत्येक क्षण जागरूक

* *गीता* — १८।६६

रखना कि तुम उन्हीं का कार्य कर रहे हो। 'उनकी सेवा करता हूँ' इस बुद्धि से कार्य करने पर तुम्हारा परम कल्याण होगा। क्लास इत्यादि करके आने पर जैसे ही समय पाओ, नियमित जप-ध्यान करने के लिए बैठ जाना — यहाँ तक कि सोने से पहले भी नियमित जप अवश्य ही करना चाहिए। महाराज का आदेश ठीक-ठीक पालन करना ही होगा।"

* * * *

एक भक्त ने महापुरुषजी से प्रश्न किया, "ठाकुर कहते थे कि वासना का लेश मात्र भी रहने पर भगवत्प्राप्ति नहीं होती — जैसे सूत में छोटी सी भी आँस निकली हो, तो वह सुई में नहीं घुस सकता। किन्तु हम लोगों के मन में तो असंख्य कामना-वासनाएँ भरी पड़ी हैं, हम लोगों का क्या उपाय है?" महापुरुषजी क्षण भर चुप रहकर बोले, "उपाय है — अवश्य है। चित्तरूपी सूत में भक्ति-विश्वासरूपी तेल और पानी लगाकर कामना-वासनारूपी आँस को अच्छी तरह रगड़ डालो, फिर चित्त अनायास ही श्रीभगवान के पादपद्मों में मग्न हो जायगा। खूब व्याकुल होकर उन्हें पुकारो — उनके निकट रो-रोकर प्राणों की पीड़ा निवेदित करो। वे बड़े आश्रितवत्सल हैं — शरणागत का परित्याग कभी भी नहीं करते।"

बेलुड़ मठ
१९२२

स्वामी ब्रह्मानन्दजी महाराज के देह-त्याग के चार-पाँच मास बाद एक दिन अपराह्न काल में एक उच्चपदस्थ राजकर्मचारी

महापुरुष महाराज के दर्शन करने के लिए मठ में आए। वे बड़े भक्ति-भाव से महापुरुषजी की पाद-वन्दना कर जमीन पर बैठ गए और अपना परिचय देते हुए कहा, "मैंने लगभग तीन वर्ष पहले राजा महाराज का प्रथम दर्शन किया था, और तब से सुविधा मिलते ही उनके निकट आता-जाता रहता था। वे मुझ पर अत्यन्त दया करते थे और अनेक प्रकार से उपदेश आदि देते थे। मैंने मन-ही-मन उन्हीं को अपना गुरु माना था, और एक दिन जब मैंने दीक्षा लेने की अभिलाषा प्रकट की, तो मुझे आश्वासन देते हुए उन्होंने कहा, 'दीक्षा हो जायगी — इतनी जल्दी करने की कोई आवश्यकता नहीं। अभी जिस प्रकार कहता हूँ, उसी प्रकार करते जाइए। पहले मन तैयार हो जाय — उसके बाद सब हो जायगा।' उस दिन उन्होंने साधन-भजन के सम्बन्ध में अनेक उपदेश दिए थे। तब से उनके निर्देशानुसार जप-ध्यान थोड़ा-थोड़ा करता था और बीच-बीच में उनके दर्शन भी कर जाता था। किन्तु मैं इतना अभागा हूँ कि मुझे उनसे दीक्षा लेने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ। अभी मेरी यह ऐकान्तिक अभिलाषा है कि आप कृपा कर मुझे दीक्षा दें। आप उनकी जगह पर हैं — उनके आसन पर विराजमान हैं। अब उनकी शक्ति आपके ही भीतर से काम कर रही है। आप कृपा कीजिए, मुझे विमुख न कीजिए।"

महापुरुषजी ने इन भक्त को पहले कभी नहीं देखा था; किन्तु तो भी वे उनसे अत्यन्त परिचित आत्मीय के समान सस्नेह बोले, "आप महाभाग्यशाली हैं, क्योंकि आपने महाराज का आशीर्वाद प्राप्त किया है और उन्होंने दया करके आपको अनेक आदि दिए हैं। उन्होंने जो कुछ कहा है, उसी को आप

मन्त्र समझें। उसी से आपका अभीष्ट सिद्ध होगा। फिर और दीक्षा लेने को कोई आवश्यकता है, यह तो मैं नहीं समझता। खूब कातर हृदय से पुकारिए, रोते-रोते प्रार्थना कीजिए—निश्चय ही उनके दर्शन पाएँगे और प्रयोजन होने पर वे आपको दीक्षा भी देंगे। उनकी कृपा अमोघ है। वे कोई अन्य साधारण सिद्ध गुरु तो हैं नहीं? वे हैं स्वयं भगवान के पार्षद। उनके कृपाकटाक्ष से जीव संसार-बन्धन से मुक्त हो जाता है—साधक सिद्ध बन जाता है। भगवान जब जीवों के कल्याण के लिए नर-देह धारण कर जगत् में अवतीर्ण होते हैं, तब वे श्रीभगवान के साथ आते हैं—युगधर्म का प्रचार करने के लिए, भगवान की नरलीला पूर्ण करने के लिए। अकेले वे अधिकतर नहीं आते। फिर वे गए भी कहाँ हैं? पांचभौतिक शरीर को ही तो छोड़ा है न? इस समय वे चिन्मय धाम में चिन्मय देह से ठाकुर के साथ रह रहे हैं और भक्तों का अनन्त कल्याण कर रहे हैं। मैं कहता हूँ—आप निश्चय ही उनके दर्शन पाएँगे।"

भक्त—"महाराज, आप जो कहते हैं, वह बिलकुल सत्य है। मैंने भी उसका प्रत्यक्ष प्रमाण पाया है। राजा महाराज के देह-त्याग के बाद मेरे प्राणों में बड़ा क्षोभ उत्पन्न हुआ था, यह सोचकर कि ऐसे सद्‌गुरु का संग पाकर भी उनकी कृपा प्राप्त करना मेरे भाग्य में नहीं था! मन बड़ा अशान्त हो गया था। ठाकुर के पास अत्यन्त कातर होकर प्रार्थना की थी, और उन्होंने मेरी प्रार्थना सुन ली। आज तीसरा दिन है स्वप्न में महाराज के दर्शन मिले थे और उन्होंने कृपा करके मुझे मन्त्र भी दिया था; किन्तु नींद खुलने के बाद वह मन्त्र पूरा-पूरा स्मरण नहीं रहा। बहुत प्रयत्न किया, किन्तु कुछ भी हो न सका। तब से मन

बहुत व्याकुल हो गया हूँ। और अन्त में निरुपाय होकर मैं आपके पास दौड़ा आया हूँ। आपको दया करके इसका कोई उपाय करना ही होगा। मुझे विश्वास है, वे आपके द्वारा ही मेरे इस अभाव की पूर्ति करेंगे।" यह कहते-कहते भक्त अत्यन्त व्याकुल होकर रोने लगे। महापुरुपजी बड़े धीर भाव से भक्त की सभी बातें सुन रहे थे। इस समय उनकी इस प्रकार की व्याकुलता देखकर उनका मुखमण्डल करुणा से दीप्त हो उठा। वे भक्त को फिर से आश्वासन देते हुए बोले, "महाराज ने जब आप पर इतनी दया की है, तब आपको कोई भय नहीं है। उनकी कृपा से सब ठीक हो जायगा। आप हताश मत होइए। जब समय होगा, वे फिर से आपको दर्शन देकर कृपा करेंगे। खूब कातर प्राणों से उन्हें पुकारते जाइए।" किन्तु इतने पर भी भक्त महापुरुपजी की आश्वासन-वाणी से शान्त न हुए और मन्त्र देने के लिए उनसे बारम्बार प्रार्थना करने लगे। अन्ततोगत्वा महापुरुष महाराज कुछ राजी-से हुए और भक्त से कुछ देर तक प्रतीक्षा करने के लिए कहकर वे महाराज के कमरे में गए और भीतर से दरवाजा बन्द कर लिया। (उस समय भी महाराज का मन्दिर नहीं बना था। महाराज मठ के जिस कमरे में रहते थे, उसी में उनके व्यवहार में आई हुई सब वस्तुएँ रखी थी और वहीं नित्य पूजा होती थी।) लगभग आध घंटे के बाद महापुरुपजी ने दरवाजा खोला और उन भक्त को महाराज के कमरे में आने के लिए संकेत से बुलाया। कमरे के अन्दर भक्त के आने के बाद उन्होंने फिर से दरवाजा बन्द कर लिया। कुछ देर बाद महापुरुपजी अकेले महाराज के कमरे से निकल आए और अपनी चौकी के ऊपर जाकर चुपचाप बैठ गए। घंटे भर के बाद भक्त भी महाराज

के कमरे से निकले और साष्टांग प्रणाम कर महापुरुषजी से बोले, "आज मेरा जीवन धन्य हो गया। स्वप्न में राजा महाराज ने जो मन्त्र दिया था, आपने भी ठीक वही मन्त्र मुझे दिया। इससे मुझे अत्यन्त आनन्द हो रहा है। वे आपके भीतर में रहते हैं, इसे मैंने प्रत्यक्ष देख लिया है। यही आशीर्वाद दीजिए, जिससे इस जीवन में इष्ट-दर्शन हो जाय।"

महापुरुषजी—"आप महाभाग्यवान हैं। आपके पूर्व-जन्मार्जित बहुत पुण्य हैं, इसी लिए महाराज ने आपके ऊपर इतनी दया की है—अनेक प्रकार से कृपा की है। अभी जो वस्तु आपने पाई है, उसे लेकर साधन-भजन में लीन हो जाइए। आपकी अभिलाषा सिद्ध होगी। वास्तविक भक्त सभी अवस्था में भगवान के ऊपर निर्भर रहकर बिल्ली के बच्चे के समान पड़ा रहता है; और रो-रोकर पुकारता है—उनके पास व्याकुल होकर प्रार्थना करता है। वे स्वयं जानते हैं, अपने भक्त को कब दर्शन देना होगा। उनके शरणागत होकर उनके द्वार पर पड़े रहिए, और शरीर-मन-वचन से पूर्ण भक्ति-विश्वास एवं प्रेम आदि की प्रार्थना कीजिए; वे आपके हृदय को पूर्ण कर देंगे।"

भक्त—"महाराज, ध्यान-जप किस प्रकार करूँ, इस सम्बन्ध में कृपया थोड़ा उपदेश दीजिए। संसार में नाना प्रकार के कार्यों में सर्वदा जकड़े रहना पड़ता है। उसके अतिरिक्त नौकरी का दायित्व भी भयंकर है। इन सब बन्धनों से मुक्त होकर जिससे भगवान को पुकार सकूँ, यही आशीर्वाद दीजिए।"

महापुरुषजी—"मेरा आशीर्वाद तो है ही। आपको भी थोड़ा नियन्त्रित होकर साधन-भजन में लगना होगा। आज जो मन्त्र आपको मिला है, उसका जप नियमित रूप से करते जाइए;

और जप के साथ साथ खूब कातर भाव से प्रार्थना कीजिए— 'प्रभु, तुम्हारा ध्यान जिससे कर सकूँ और तुम्हारे श्रीपाद-पद्मों में जिससे मन लीन हो, वैसा कर दो।' वे वैसा ही कर देंगे, निश्चय जानिए। वे ही सभी के हृदय के गुरु, पथ-प्रदर्शक, प्रभु, पिता, माता एवं सखा हैं। और वे ही जीव के सर्वस्व हैं। संसार में जिनके लिए अपना-अपना कहकर मनुष्य रोता है, वे सभी दो दिन के हैं— चिर सहचर एकमात्र वे ही हैं। आप एकाग्र मन से नाम-जप खूब किया करें, देखेंगे, धीरे-धीरे अपने आप ही ध्यान होने लगेगा। खूब प्रेम के साथ इष्ट-मन्त्र जपते-जपते हृदय में एक विमल आनन्द का अनुभव होता है। उस आनन्द का स्थायी होना भी एक प्रकार का ध्यान है। ध्यान के अनेक भेद हैं। खूब प्रेम के साथ प्रभु की ज्योतिर्मयी श्रीमूर्ति को हृदय में धारण कीजिए; और इस प्रकार की भावना कीजिए कि उनके श्रीअंग की ज्योति से आपकी हृदय-गुहा आलोकित हो गई है। इस प्रकार भावना करते-करते एक अपूर्व आनन्द से मन और प्राण परिपूर्ण हो उठेंगे। धीरे-धीरे वह मूर्ति भी लीन हो जायगी, फिर एकमात्र चैतन्यमय एक विशिष्ट आनन्द का अनुभव होगा— यह भी एक प्रकार का ध्यान है। और भी अनेक प्रकार के ध्यान हैं— एक के बाद एक करके आप स्वयं ही उन सबका अनुभव कर लेंगे। असली बात है आन्तरिक भाव से उनको पुकारना। उनको पुकारते-पुकारते, उनको पाने के लिए रोते-रोते मन का सब मैल धुल जायगा, मन शुद्ध हो जायगा। उस समय वही संस्कृत मन गुरु का कार्य करेगा। आपको किस समय क्या आवश्यकता होगी, किस भाव से ध्यान करना होगा, सो सब आप अपने भीतर से ही जान लेंगे। ठाकुर के 'वचनामृत' में पढ़ा है

तो? वे कहते हैं, 'कृपा-समीर तो बह ही रहा है, तू केवल पाल उठा दे।' पाल उठाने का अर्थ है— आन्तरिक अध्यवसाय के साथ साधन-भजन करना। वे सर्वदा कृपा करने के लिए बैठे हुए हैं—जैसे माता अपने अबोध शिशु को गोदी में उठाने के लिए हाथ पसारती है, उसी प्रकार। थोड़ा करके देखिए — तभी उनकी कितनी कृपा है, यह अनुभव कर सकेंगे।"

भक्त— "संसार मे किस प्रकार रहना होगा, यह प्रत्येक परिस्थिति मे ठीक-ठीक समझ नहीं पाता। सभी के मनोनुकूल चलना—यह एक अत्यन्त कठिन समस्या है।"

महापुरुषजी— "ठाकुर का 'वचनामृत' तो पढ़ा है न? अच्छी तरह पढ़े जाइए। इन सभी समस्याओं का अति सुन्दर समाधान ठाकुर की वाणी में ही मिल जायगा। यह संसार तो मेरा भी नही है, आपका भी नही। इस ससार की सृष्टि तो भगवान ने ही की है। जिनको आप 'मेरे हैं' समझते हैं, वे सभी भगवान के हैं—बस, इस भाव को लेकर संसार मे रहना होगा। स्त्री, पुत्र, कन्या, आत्मीय-स्वजन—सभी भगवान के जीव हैं। उनकी जो कुछ सेवा करें, सो नारायण-बुद्धि से ही करें—ऐसा होने पर फिर अधिक संलग्न नही होना पड़ेगा। फिर इसके साथ-साथ चाहिए—विचार। सत्-असत् विचार के द्वारा वैराग्य का उदय होता है। आप लोग गृहस्थाश्रम में रहते हैं—अच्छा ही है। परन्तु उसमें अत्यधिक संलग्न क्यों होना? सबके प्रति जितना कर्तव्य है, उसे अवश्य कीजिए—किन्तु केवल सेवा-बुद्धि से। आपके ऊपर तो भगवान की असीम अनुकम्पा है। कितने मनुष्य तो 'हा अन्न' 'हा अन्न' करते हुए पागलों के समान भटकते फिरते हैं—पेट की चिन्ता में ही व्याकुल रहते

है, भला भगवान को कब पुकारेंगे? किन्तु आपको तो खाने-पहनने की चिन्ता नहीं करनी पड़ती—यह क्या थोड़ी दया है? जो ठीक-ठीक भक्त है, उनके लिए भगवान सभी सुविधाएँ जुटा देते हैं। जब सभी सो जायँ, उस समय गंभीर रात्रि में उठकर, अनन्यमन से भगवान को पुकारिए—उनके साथ एक हो जाइए। खूब रोते-रोते उन्हें अपने प्राणों की वेदना बतलाइए। अर्धरात्रि भजन के लिए सर्वोत्तम समय है। आपके लक्षण अच्छे हैं—आपको (भगवद्दर्शन) होगा, इसी लिए इतना कह रहा हूँ। पहले थोड़ा अच्छी तरह परिश्रम कीजिए—देखेंगे, विमल आनन्द से मन और प्राण परिपूर्ण हो उठेंगे—आनन्दोल्लास में आप विभोर हो जायँगे। सांसारिक भोग में क्या आनन्द रखा है? भगवदानन्द का एक कण भी यदि किसी को मिल जाय, तो उसको *यह सांसारिक सुख बिलकुल सीठा*—निरस मालूम होगा।"

भक्त—"क्या संख्या का ध्यान रखते हुए जप करना होगा? कितना जप करूँ, किस प्रकार करूँ, यह दया करके बतलाइए।"

महापुरुषजी—"जप तीन प्रकार से किया जा सकता है। माला लेकर या हाथ के द्वारा अथवा मन-ही-मन। मन-ही-मन जप करना सर्वश्रेष्ठ जप है। तुलसीदास ने कहा है—'माला जपे साला, कर जपे भाई। मन मन जपे तो बलिहारी जाई।' मन-ही-मन जप करने का अभ्यास कर लेने पर चलते-फिरते, खाते-सोते सभी समय जप किया जा सकता है। कुछ समय तक इस प्रकार मानस-जप का अभ्यास कर लेने पर, फिर तो निद्रा के समय भी जप यथावत् चलता रहेगा, और सारे समय मन

मे एक आनन्द की धारा बहती रहेगी। परन्तु पहले-पहल संख्या-गणनापूर्वक जप करना ही ठीक है; और निष्ठा के साथ प्रतिदिन कम-से-कम दो बार आसन पर बैठकर निर्दिष्टसंख्यक जप कीजिए और प्रत्येक बार मे हजार से कम नहीं होना चाहिए—उससे अधिक जितना कर सके, उतना ही अच्छा। संख्या हाथ मे भी रखी जा सकती है और माला में भी। (ऐसा कहकर किस प्रकार हाथ मे जप किया जाता है, यह उन्होंने भक्त को दिखला दिया।)

"ठाकुर कहते थे, 'नाम नामी अभेद।' इष्टमन्त्र-जप के साथ-साथ इष्टमूर्ति का भी चिन्तन कीजिए—इस प्रकार जप और ध्यान दोनों एक ही साथ हो सकते है। भगवान अन्तर्यामी हैं—वे देखते हैं हृदय। वे संख्या भी नही देखते, समय भी नहीं देखते। ठीक-ठीक आन्तरिक भाव से एक बार भी यदि भगवान का नाम लिया जाय, तो वह चचल मन द्वारा किए हुए लाख जप की अपेक्षा अधिक फलदायक होगा। Intensity (तीव्रता) चाहिए, व्याकुलता चाहिए और चाहिए आन्तरिकता। प्राणो मे व्याकुलता आने पर शीघ्र ही हो जायगा। यह सब एक दिन में नही होता—दृढ़ता के साथ लग जाइए, क्रमश: सब होगा। और बीच-बीच में मठ में आते रहिए। यहाँ पर अनेक साधु रहते हैं—साधु-संग कीजिए। साधुओ के दर्शन करने से भी हृदय में भगवद्भाव का उद्दीपन होता है। साधन-भजन करते-करते यदि मन में किसी प्रकार का सन्देह उठे, तो मुझसे पूछ सकते हैं। ठाकुर ने इसी लिए तो हम लोगों को यहाँ रखा है। फिर भी, देखिए, sincerity (आन्तरिकता) रहने पर अधिक सन्देह नही होता—और हो भी, तो वे भीतर

हैं। सरलता, आन्तरिकता और पवित्रता — ये हैं धर्मजीवन की प्रधान भित्ति। पढ़ा है न, रत्नाकर दस्यु 'मरा मरा' जपकर सिद्ध हो गया। गुरुवाक्य में विश्वास — बालक के समान विश्वास चाहिए। जितने सन्देह हैं, वे सभी केवल बाहर में हैं; किन्तु मन जब अन्तर्मुखी होता है, क्रमशः जब अन्तरतम प्रदेश में चला जाता है, उस समय केवल आनन्द-ही-आनन्द रहता है। तब भगवत्प्रेम से हृदय परिपूर्ण हो जाता है। पर हाँ, यह सत्य है कि सभी सन्देहों का नाश भगवद्दर्शन हुए बिना नहीं होता।

'भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे॥' "*

बेलुड़ मठ

सोमवार, नवम्बर, १९२२

कार्तिक मास है, सन् १९२२ ई०। सारे देश में असहयोग-आन्दोलन मचा हुआ है। दल-के-दल लोग जेल जा रहे हैं। *समस्त भारत महात्मा गांधी के आह्वान से जग उठा है।* हजारों नर-नारी स्वातन्त्र्य-लाभ को जीवन का श्रेष्ठ व्रत मानकर मातृभूमि की बलि-वेदी पर आत्मोत्सर्ग के लिए प्रस्तुत हैं।

आज सोमवार है, सन्ध्या समय। पूजा-घर में आरती अभी ही समाप्त हुई है। चारों ओर निस्तब्धता छाई हुई है। दूर से मठ जनशून्य-सा जान पड़ रहा है। साधु-ब्रह्मचारीगण जप-ध्यान में मग्न हैं।

---

* मुण्डकोपनिषद् — २।२।८. कार्य और कारण रूपी उस ब्रह्म के दर्शन होने पर द्रष्टा की हृदयग्रन्थि विनष्ट हो जाती है, सभी संशय छिन्न हो जाते है और उसके समस्त कर्म नष्ट हो जाते हैं।

महापुरुष महाराज भी अपने कमरे में बिस्तर पर बैठे हुए हैं — ध्यानमग्न। क्षीण दीपक के आलोक में उनका शान्त मुखमण्डल और भी प्रशान्त और प्रदीप्त दिखाई दे रहा है। इस प्रकार बहुत समय बीत गया। महापुरुषजी अब धीरे-धीरे शिवमहिम्नस्तोत्र का सस्वर उच्चारण कर रहे हैं। उनका मन मानो उस समय भी आनन्द-सागर में लीन है। इसी समय एक कलकत्तानिवासी भक्त ने पूजा-घर से धीरे-धीरे आकर महापुरुषजी को भक्तिपूर्वक प्रणाम किया और नीचे जमीन पर बैठ गए। भक्त परिचित थे और उनका मठ के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध था। कुछ देर बाद महापुरुष महाराज स्वयं ही सस्नेह पूछने लगे, "कौन, का×× ? कब आए ?" भक्त ने श्रद्धापूर्वक उनकी चरणरज लेकर कहा, "जी, महाराज, अभी सन्ध्या-आरती के समय आया हूँ।"

"अभी तक क्या पूजा-घर में थे ?"

"जी महाराज।"

"अच्छा, तुम इतने उदास और उद्विग्न क्यों दिखते हो, बताओ तो ? घर पर सब कुशल है न ?"

"आप सबके आशीर्वाद से घर पर सब कुशल है, महाराज; किन्तु आज कई दिन से एक विषय मन को बहुत अशान्त बनाए है। आज मैं इसी विचार से मठ में आया हूँ कि आपके समीप अपना मन पूरी तरह खोल दूँगा। यदि आज्ञा हो, तो कहूँ।"

"ठीक है, कहो, कहो।"

तब भक्त विशेष आवेगपूर्ण स्वर से कहने लगे, "महाराज, इस समय समस्त देश महात्मा गांधी के असहयोग-आन्दोलन में

मग्न है। सैकड़ों नर-नारी जेल में पड़े हुए सड़ रहे हैं। कितने ही मनुष्य प्राणों की भी बाजी लगा चुके हैं। महात्माजी स्वयं भी इस विपद-सागर में कूद पड़े हैं। किन्तु देशव्यापी इतने बड़े कार्य में रामकृष्ण-मिशन क्यों चुप है? आप लोगों को क्या इसमें कुछ भी नही करना चाहिए? सम्पूर्ण देशवासी चकित हो सोच रहे हैं कि रामकृष्ण-मिशन कर क्या रहा है! देश के स्वाधीनता-संग्राम मे क्या इसका कोई कर्तव्य नहीं है?" अन्त में वे विनयपूर्वक बोले, "देश के लिए क्या आप लोगों का हृदय थोड़ा भी नहीं रोता? क्या आप लोगों की कुछ भी करने की सामर्थ्य नही?"

महापुरुषजी का प्रशान्त मुखमण्डल जैसे और भी गम्भीर हो उठा। कुछ देर तक चुप रहकर वे धीरे-धीरे कहने लगे, "देखो का××, युगावतार का कार्य साधारण मनुष्य-बुद्धि से नही जाना जाता। समस्त देशवासी या तुम्हीं लोग भगवान के कार्य की गति को कैसे समझ सकोगे, बताओ? जब श्रीभगवान मनुष्य-देह धारण करते हैं, तो वे किसी देशविशेष अथवा जातिविशेष के लिए नही आते, वे तो आते हैं समस्त जगत् के कल्याण के लिए। इस बार भगवान के महासात्त्विक भाव का विकास हुआ है। श्रीरामकृष्ण-अवतार सत्त्वगुण का पूर्ण विग्रह हैं। उनमें षड़ैश्वर्य होने पर भी इस बार वे शुद्ध सात्त्विक भाव का आश्रय लेकर ही नर-देह में आए थे। देखो न, वे किस प्रकार गंगा-तट पर एक देव-मन्दिर के प्रांगण में अपना सारा जीवन बिता गए। इस सबका जो गूढ़ अर्थ है, उसे तुम लोग किस प्रकार समझ सकोगे? स्वामीजी जैसे महान् शक्तिशाली आधार को वे अपने साथ अपने आध्यात्मिक भाव के प्रचार में सहायक-रूप से लाए थे। स्वामीजी

इच्छा करने पर क्या इस देश में एक महान् राजनीतिक विप्लव नहीं मचा सकते थे? उनके समान स्वदेश-प्रेमी और कौन है? उनके समान कितने लोगों के प्राण गरीब और दुखियों के लिए रोते हैं? किन्तु उन्होंने तो ऐसा नहीं किया। यदि उससे भारत का कुछ वास्तविक कल्याण होता, तो वे अवश्य ही वैसा करते। और स्वामीजी की बात छोड़ दो; हम लोगों के भीतर भी प्रभु की कृपा से इतनी शक्ति है कि हम समस्त देश में भारी आन्दोलन मचा सकते हैं; किन्तु ठाकुर तो हमें ऐसा नहीं करने देंगे। वे हम लोगों को अपने कार्य में सहायक-रूप से लाए हैं और हमारे द्वारा जिससे देश और जन का वास्तविक कल्याण हो, वही करा ले रहे हैं। और हम भी वही करते जा रहे हैं। जगत् के कल्याण की कामना छोड़कर हमारी और कोई इच्छा नहीं। जगत् के दुःख से हम लोगों का हृदय जिस व्यथा से भर उठता है, वह तुम लोगों को कहकर नहीं समझाया जा सकता। उसे एकमात्र अन्तर्यामी भगवान ही जानते हैं। ठाकुर नरलीला-संवरण के बाद अपनी सम्पूर्ण शक्ति और कार्य-भार स्वामीजी को सौंप गए। स्वामीजी ने भी सारी दुनिया में एक छोर से लेकर दूसरे तक पर्यटन करते हुए, अच्छी तरह देख-भाल कर, ठाकुर के निर्देशानुसार समस्त जगत् और विशेषतः भारत के कल्याण के लिए ही इस मठ-मिशन को स्थापित किया, और हम सबको भी एक-एक कर इस कार्य में लगा दिया। हम लोग क्या वन-पर्वतों में तपस्या करते हुए जीवन नहीं बिता सकते थे? और वही किया भी तो था। हम लोग प्रायः सभी साधन-भजन के लिए, जिसकी जहाँ इच्छा थी, निकल पड़े थे; किन्तु स्वामीजी ने ही धीरे-धीरे एक-एक को बुला-बुलाकर इन सब कामों में लगा दिया — उसी

नारायण-बुद्धि से जीवसेवा-रूप कार्य में। अब इस बुढ़ापे में भी हम लोग वही सब किए जा रहे हैं।"

भक्त—"तब क्या, महाराज, आपके मत में महात्मा गांधी आदि देश के नेतागण ठीक-ठीक देश का कार्य नहीं कर रहे हैं? उनका अपूर्व त्याग, सहिष्णुता और देशसेवा उपेक्षणीय तो नहीं है। उन लोगों ने देश के लिए कितना दुःख और अत्याचार सहन किया है!"

महाराज—"ऐसा कैसे कहूँगा? उन लोगों का त्याग, सहिष्णुता, देशसेवा आदि वास्तव में बहुत ही प्रशंसनीय है। उनका जीवन वास्तव में महान् और आदर्श है। वे देश के लिए काफी कार्य भी कर रहे हैं। किन्तु हम लोगों की कार्य-धारा भिन्न प्रकार की है। वे लोग जो अच्छा समझते हैं, जिसे देश के लिए कल्याण-प्रद समझते हैं, उसी को sincerely (सचाई के साथ) किए जा रहे हैं। हम लोगों की क्या धारणा है, जानते हो? ठाकुर और स्वामीजी के एक-एक भाव से अनुप्राणित होकर ही वे यह सब काम कर रहे हैं। और महात्मा गांधी वास्तव में महाशक्तिमान पुरुष हैं, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। उन्हीं आद्याशक्ति जगन्माता का एक विशेष प्रकाश उनमें भी हुआ है—यह भी ठीक है। गीता में श्रीभगवान अर्जुन से कहते हैं, 'यद् यद् विभूतिमत् सत्त्वम्' इत्यादि *—जहाँ भी विशेष शक्ति का प्रकाश हो, जिसे बहुत से लोग मानें, वहाँ भगवत्शक्ति का विशेष विकास हुआ है, यह बात ध्रुव सत्य है। श्रीश्रीठाकुर ने जगत्-कल्याण के लिए जगन्माता की जिस शक्ति को उद्बुद्ध किया है, वही शक्ति आधारविशेष का

* गीता—१०।४१

लम्बन कर अनेक प्रकार के कार्य कर रही है। स्वामीजी
ाक स्थानों पर यह बता गए है कि भारत का किस प्रकार
स्तविक कल्याण होगा। आज से कोई पचीस-तीस साल पहले
ा के कल्याण के लिए उन्होंने जो-जो बातें कही थी—छुआ-
ा निवारण, अनुन्नत जातियों की उन्नति, देश के छोटे-बड़े सबमें
क्षा-प्रसार इत्यादि-इत्यादि—इसी सबका तो आज महात्मा
धी भी प्रचार कर रहे है। इससे देश का वास्तविक कल्याण
श्चय होगा। हम लोग समाचार-पत्र आदि में बहुत
लते-चालते नहीं, वरन् व्यवहार मे करके दिखा रहे
। हाँ, पर राजनैतिक कार्य द्वारा नहीं; और महात्माजी
ह सब राजनैतिक कार्य द्वारा कर रहे हैं। हम लोग भारत का
सा कल्याण चाहते हैं, अन्यान्य देशों तथा जातियों का भी उसी
कार कल्याण चाहते है। भारत के कल्याण के लिए जिस प्रकार
म लोग इस देश में कार्य कर रहे हैं, अन्यान्य देशों के कल्याण
लिए उन सब देशों में भी हम लोग उसी प्रकार कार्य कर
हे हैं। किन्तु देश-काल-पात्र के भेद से हम लोगों की कार्य-धारा
ाभिन्न है। स्वामीजी यह जो मठ-मिशन स्थापित कर गए
, इसकी प्रत्येक त्यागी सन्तान 'आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च'
अपनी मुक्ति और जगत् के कल्याण के लिए) श्रीश्रीठाकुर और
वामीजी के आदर्श और निर्देशानुसार कार्य किए जा रही है।"

भक्त—"किन्तु, महाराज, महात्माजी इस असहयोग-
ान्दोलन के द्वारा समग्र देश में जो जागरण उत्पन्न कर रहे हैं,
ासके साथ यदि रामकृष्ण मठ-मिशन की सहयोगिता रहती, तो
ाश का कार्य बहुत आगे बढ़ जाता। यह केवल मेरी ही नहीं अन्य

देश के बड़े-बड़े चिन्तनशील लोगों की भी यही धारणा है। आप लोग महात्माजी के साथ एक होकर काम क्यों नहीं करते ?"

महाराज—"देखो, मैं तो तुमसे पहले ही कह चुका हूँ कि हम लोग अपने आदर्श के अनुसार कार्य किए जा रहे हैं और इस आदर्श को रख गए हैं दूरदर्शी ऋषि श्रीस्वामीजी स्वयं। केवल भारत का ही नहीं, वरन् समग्र विश्व के हजारों वर्ष के भविष्य का चित्र उनकी दिव्य-दृष्टि के सामने खिंच गया था और उन्होंने सब कुछ स्पष्ट देखकर और सोच-समझकर यह कार्य-धारा निर्णीत की थी। उनके द्वारा अँधेरे में पत्थर फेंका जाना तो सम्भव नहीं था। वे सुदूर भविष्य का दृश्य सब साफ-साफ देख सकते थे। और इस युग में श्रीरामकृष्ण-रूप में जिस भगवत्-शक्ति का आविर्भाव हुआ है, वैसा सैकड़ों वर्ष में नहीं हुआ। यह आध्यात्मिक तरंग दीर्घ काल तक समस्त जगत् में चलती रहेगी। इसका तो अभी प्रारम्भ मात्र है। जिस आध्यात्मिक सूर्य का भारताकाश में उदय हुआ है, उसकी निर्मल किरणों द्वारा समग्र जगत् उद्भासित हो जायगा। तभी तो स्वामीजी ने कहा था, 'इस बार केन्द्र है भारतवर्ष।' भारत को केन्द्र बनाकर इस आध्यात्मिक शक्ति का विकास होगा। इस ईश्वरीय शक्ति की गति कौन रोक सकता है! भारत का जागरण ध्रुव निश्चित है। शिक्षा, दीक्षा, शक्ति, सामर्थ्य, विद्या, बुद्धि—सब विषयों में भारत की इतनी उन्नति होगी कि सारा जगत् विस्मित हो जायगा। भारत का भविष्य इतना महिमान्वित होगा कि वह अतीत के गौरव को म्लान कर देगा। तब समझोगे कि श्रीश्रीठाकुर और स्वामीजी क्यों आए थे और भारत के लिए वे क्या कर गए हैं। क्षुद्रबुद्धि मानव उनका कार्य-कलाप क्या

समझेगा ? वे लोग भारत की जातीय कुण्डलिनी शक्ति को जाग्रत् कर गए हैं, यह भी क्या नहीं देख पाते ? ”

बेलुड़ मठ

मई, १९२३

आज सिन्धुप्रान्तवासी एक भक्त को दीक्षा हुई है। भक्त ने इससे पहले स्वप्न में मन्त्र पाया था; किन्तु उसका कुछ भी मर्म न समझ सकने के कारण उस समय से उनका मन अत्यन्त क्षुब्ध हो उठा था। उन्होंने महापुरुष महाराज की सेवा में एक पत्र द्वारा अपनी मानसिक अवस्था का परिचय दिया था और इस बात की भी इच्छा प्रकट की थी कि वे उनके दर्शन के निमित्त आने को बड़े लालायित हैं। अनुमति पाकर बड़े उल्लास से वे भक्त सुदूर सिन्धुप्रान्त से बेलुड़ मठ में महापुरुष महाराज के श्रीचरणों में आ उपस्थित हुए हैं।

गंगा-जल से हाथ-मुँह धोकर, नया वस्त्र धारण कर लगभग दस बजे के समय महापुरुषजी पूजा-घर में गए और यथाविधि श्रीश्रीठाकुर की पूजा आदि समाप्त कर उन सिन्धी भक्त को दीक्षा दी। दीक्षा आदि समाप्त कर, छत के ऊपर होकर पूजा-घर से जब वे अपने कमरे में आए, उस समय उनके समस्त मुखमण्डल से एक दिव्य आभा प्रस्फुटित हो रही थी। सदैव के समान कुर्सी पर न बैठकर, वे भावावेश में झूमते हुए ताली बजाकर गाने लगे—

“ सद्गुरु पावे भेद बतावे, ज्ञान करे उपदेश।
तब कोयला का मैला छूटे, जब आग करे परवेश।”

अहा! वह कैसी तन्मयता थी; भाषा द्वारा वर्णन नहीं किया जा सकता! आँखें अर्धनिमीलित हैं; मन जैसे किसी अतीन्द्रिय राज्य में विचरण कर रहा है; और वे तद्‌गत-चित्त होकर कमरे भर में टहलते हुए इन्ही दो पक्तियों को गा रहे हैं। मुखमण्डल रक्ताभ है,—ऐसा मालूम होता है, मानो जोर करके कभीकभी जरा आँखें खोलकर पश्चिम ओर की दीवाल पर टँगी ठाकुर की तस्वीर को एक-आध बार देख रहे हैं। बाह्य जगत् की कुछ भी चेतना नहीं है। उनका स्वाभाविक मधुर कण्ठ-स्वर हृदय के गंभीर प्रेम से सिक्त हो और भी मधुर सुनाई दे रहा है। मानो सुधा-वर्षण कर रहा हो! बहुतसा समय इसी भाव में बीत गया। अन्त में अस्त-व्यस्त भाव से अपनी कुर्सी पर आसीन होकर आँखों को मूँदे हुए बैठे रहे। बीच-बीच में हृदय के अन्तस्तल से "जय प्रभु! दीनशरण! करुणामय प्रभु! जय माँ!" अस्फुट स्वर से उच्चारण करते रहे।

दीक्षित भक्त महापुरुषजी के निर्देशानुसार अभीतक पूजा-घर के बरामदे में बैठकर ध्यान कर रहे थे। पूजा-घर से आकर भक्त ने अत्यन्त भक्तिभाव से महापुरुषजी को साष्टांग प्रणाम किया और उनके चरणों के पास बैठकर हाथ जोड़ अश्रुपूर्ण नयनों से कहा, "आपकी दया से आज मेरे प्राणों को शान्ति मिली है। स्वप्न में मन्त्र पाने के बाद से मन अत्यन्त व्याकुल हो उठा था, किसी भी तरह मुझे शान्ति नहीं मिलती थी। बिल्कुल पागल-सा हो गया था। आज आपके श्रीमुख से वही स्वप्न-प्राप्त मन्त्र पाकर मुझे दृढ़ विश्वास हुआ है कि स्वप्न में जो कुछ देखा था, सभी सत्य है और स्वप्न में जिन्होंने मुझ पर कृपा की थी, वे आप ही हैं।"

महापुरुषजी—"बच्चा, ठाकुर ने तुम्हें अपने श्रीचरणों में स्थान देने के लिए ही तुम पर स्वप्न में कृपा की थी। और आज भी ठाकुर ने ही तुम पर अन्य रूप से कृपा की है। वे कृपामय हैं—अहेतुक कृपासिन्धु हैं। जीवोद्धार के लिए ही इस युग में नर-देह धारण कर आए थे। मैं उनका चरणाश्रित दास मात्र हूँ। कृपा करने के अधिकारी वे ही हैं। केवल भगवान ही कृपा कर सकते हैं—मैं तो यही जानता हूँ। शास्त्र में भी है कि जब सद्गुरु शिष्य को दीक्षा देते हैं, उस समय भगवान स्वयं उन गुरु के हृदय में आविर्भूत हो शिष्य के प्राणों में शक्ति का सचार करते हैं। स्वयं भगवान ही गुरु हैं। मनुष्य कभी भी गुरु नहीं हो सकता। तुमने अपने पूर्वजन्मार्जित बहुत सुकृतियों के फल-स्वरूप पतितपावन, परम दयालु श्रीरामकृष्ण के चरणों में आश्रय प्राप्त किया है। आज मैंने तुम्हें उनके श्रीचरणों में समर्पित कर दिया हैं—उनके पादपद्मों में उत्सर्ग कर दिया है। आज से ठाकुर ने तुम्हारे इहकाल और परकाल के समस्त भार को ग्रहण कर लिया है।"

भक्त—"मै तो, महाराज, ठाकुर को देख नही पाता। मै जानता हूँ कि आपने ही कृपा की है।"

महापुरुषजी—"ऐसा तुम सोच सकते हो; किन्तु मैं जानता हूँ कि ठाकुर ने ही तुम पर कृपा की है। आज से तुम उनके हो गए। अब ठाकुर को और भी दृढ़ भाव से पकड़ लो। अन्तर और बाहर में उन्हे देखने की चेष्टा करो। उन्हें खूब अपना समझना। यह संसार तो दो दिन का है। पिता, माता, स्त्री, पुत्र, कन्या, आत्मीय-स्वजन—ये सब सम्बन्ध ही मायिक है—दो दिन के हें। किन्तु उनके साथ हम लोगो का जो सम्बन्ध है, वह चिरकालिक

है, देह के नाश से उस सम्बन्ध का नाश नहीं होता। आज जो अमोघ बीज तुम्हारे हृदय में बोया गया है, वह प्रेम-भक्तिरूपी वारि से सिंचित हो दिन-पर-दिन बढ़ता हुआ क्रमशः महान् अमृत-वृक्ष के रूप में परिणत होगा और तुम्हारे जीवन में चतुर्वर्ग * फल देकर तुम्हारा समग्र जीवन मधुमय कर देगा, तुम पूर्णकाम हो जाओगे।"

भक्त — "मैं तो मायामुग्ध संसारी जीव हूँ। अनेकविध बन्धनों से जकड़ा हुआ हूँ। संसार-चक्र में फँसकर आपके श्रीचरणों को न भूल जाऊँ, यही आशीर्वाद कृपया दीजिए। संसार में किस प्रकार रहना होगा — जिससे बिलकुल ही डूब न जाऊँ, इस विषय में कुछ उपदेश कीजिए। जिस प्रकार भी हो, इस अधम की रक्षा करनी ही होगी।"

यह कहकर अश्रुपूर्ण नयनों से भक्त ने महापुरुषजी के युगल-चरणों को पकड़ लिया। भक्त की व्याकुलता देखकर उनका प्रदीप्त मुखमण्डल करुणा से सिक्त हो उठा। वे कम्पित कण्ठ से स्नेहपूर्वक बोले, "बच्चा, तुमसे कह तो दिया है कि आज मैंने तुमको ठाकुर के श्रीचरणों में समर्पित कर दिया है, और उन्होंने तुम्हें स्वीकार कर लिया है तथा तुम्हारे समस्त भार को ग्रहण कर लिया है। तुम्हें ग्रहण करने के लिए ही तो तुम्हारे प्राणों में दिव्य प्रेरणा देकर तुम्हें यहाँ ले आए हैं। आज तुम्हें नव-जीवन मिला है। ठाकुर यदि सत्य हैं, तो मैं जो कहता हूँ, वह भी सत्य है। तुम तन-मन-वचन से उनके शरणापन्न हो जाओ, अपना समस्त भार उनके ऊपर डालकर कातर प्राणों से उन्हें पुकारते जाओ। बस, और कुछ नहीं करना होगा। वे सभी

* धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष।

अवस्थाओं में तुम्हें देखेंगे। और संसार में किस प्रकार रहना चाहिए यह जो तुम्हारी जिज्ञासा है, इसका तो उत्तर ठाकुर के 'वचनामृत' में ही है। संसार के सभी काम करना, किन्तु मन रखना ईश्वर में। जैसे बड़े लोगों के घर की दासी,—सब काम तो करती है, किन्तु उसका सारा मन लगा रहता है देश मे स्थित अपने घर में। इसी प्रकार संसार में रहना होगा—अनासक्त होकर। स्त्री-पुत्र, आत्मीय-स्वजन सभी की सेवा करना, किन्तु हृदय से जानना कि श्रीभगवान ही तुम्हारे एकमात्र आत्मीय हैं। उनको छोड़कर और कोई अपना नही है। इसका अर्थ यह नही कि स्त्री-पुत्र की अवहेलना कर दोगे। वरन् वे सब भगवत्प्रेरित जीव हैं, भगवान के अंश हैं, इस ज्ञान से यथाशक्ति उनकी सेवा करना। उनके साथ भगवत् सम्बन्धी बातचीत करना, और उनका मन भी भगवन्मुखी हो, इस बात की चेष्टा करना। संसार में रहना, किन्तु ऐसे रहना, जिससे संसार में मन आबद्ध न हो जाय। और ठाकुर कहा करते थे—'विचार करना खूब आवश्यक है। संसार अनित्य है, ईश्वर ही एकमात्र नित्य और सत्य वस्तु हैं। रुपयों से क्या होता है? भात होता है, दाल होती है, कपड़ा होता है, रहने की जगह होती है—इतना ही तो। किन्तु उससे भगवत्प्राप्ति तो नहीं होती। इसलिए रुपया कभी भी जीवन का उद्देश्य नहीं हो सकता। इसका नाम है विचार।' अत्यधिक worldly ambition (सांसारिक उच्चाकांक्षा) को मन में स्थान नहीं जमाने देना। साधारणतया जीवन-निर्वाह का बन्दोबस्त तो तुमने कर ही लिया है; उसी में सन्तुष्ट रहना। मन की स्वाभाविक गति ही निम्न दिशा की ओर है—काम-कांचन और मान-यश की ओर है। उस निम्नगामी मन को पकड़कर श्रीभगवान के

पादपद्मों में लीन करना होगा। जीवन में सबसे बड़ी ambition (उच्चाकांक्षा) है भगवान-लाभ। उसी ambition को मन में सर्वदा बनाए रखना, और उस लक्ष्य तक जिससे पहुँच सको, तज्जन्य प्राणपण चेष्टा करना।"

इसी समय प्रसाद पाने का घण्टा बजा। महापुरुषजी ने भक्त को आदेश दिया कि वह भी प्रसाद पाने के लिए जाय। कुछ देर बाद एक सेवक श्रीश्रीठाकुर का प्रसाद महापुरुषजी के आहारार्थ ले आया। वे भोजन के आसन पर बैठे; किन्तु आज दीक्षा देकर पूजा-घर से आने के बाद से ही उनका खूब अन्तर्मुखी भाव है — मानो नशे की एक खुमारी-सी है। चक्षु निमीलितप्राय हैं। आहार की ओर मन बिलकुल नहीं है — अभ्यासवशतः निःशब्द होकर धीरे-धीरे सामान्य रूप से कुछ खा रहे हैं। कुछ बातचीत चलाने पर शायद उनका मन भोजन की ओर आ जाय — यह सोचकर निस्तब्धता को भंग करते हुए कोई प्रसंग उठाने के उद्देश से सेवक ने कहा, "महाराज, आज दीक्षा-कार्य में पूजा-घर में बहुत देर तक रहना पड़ा था।" महापुरुषजी मानो सोए से जगे के समान चौंककर बोले, "हाँ। अहा, आदमी बड़ा भक्तिमान है! उसके ऊपर ठाकुर की विशेष अनुकम्पा है, नहीं तो इतनी भक्ति हो नहीं सकती। किसका कैसा आधार है, दीक्षा देने के समय अच्छी तरह समझा जा सकता है। जिसका आधार खूब अच्छा होता है, वह मन्त्र पाते ही उल्लसित हो उठता है — अश्रु, पुलक, कम्पन ये सब होने लगते हैं, साथ-साथ कुण्डलिनी जाग्रत् हो उठती है, और सहज ही ध्यानस्थ हो जाता है। इस भक्त को भी देखा वैसा ही। मन्त्र सुनते ही सर्वांग में कम्पन और थोड़ी देर बाद पुलक होने लगा और क्रमशः

ध्यानस्थ हो गया। और क्या प्रेमाश्रु ! दोनों नेत्रों के कोण से धारा वह निकली। यह देखकर मुझे भी अत्यन्त आनन्द हुआ। ठीक-ठीक भक्त को मन्त्र देने पर अत्यन्त आनन्द होता है—मन्त्र देना सार्थक होता है। मन्त्र पाने का जिसका ठीक समय होता है, उसका हृत्पद्म मानो मन्त्र पाने के लिए विकसित और उन्मुख रहता है, और मन्त्र पाते ही वह मानो उसे पकड़ लेता है। मेरे मन में केवल ठाकुर की दया की बात ही आ रही थी। अहा ! वे कितने भाव से कितने लोगों के ऊपर कृपा कर रहे हैं। देश-विदेश के कितने लोग उनकी कृपा प्राप्त कर रहे हैं, इसकी कोई गणना नहीं। धन्य प्रभु ! "

सेवक—"दीक्षामन्त्र पाने के साथ-साथ सभी को तो, महाराज, इतना उद्दीपन नहीं होता। जिसका इतना उच्च आधार नहीं है, आप लोगों की कृपा प्राप्त करने पर क्या उसका कोई कल्याण न होगा ? "

महापुरुषजी—"क्यों नहीं होगा? उसका भी होगा, परन्तु थोड़ी देरी से। सिद्ध गुरु की ऐसी शक्ति होती है कि वे शिष्य के मन को उपयुक्त कर ले सकते हैं और अत्यल्प दिनों में ही उसके जीवन की गति को आध्यात्मिकता की ओर नियन्त्रित कर सकते हैं। सिद्धमन्त्र की शक्ति अमोघ है, विशेषकर वह सिद्धमन्त्र-शक्ति यदि आत्मज्ञ गुरु के भीतर से होकर संक्रामित हो। ठाकुर कहते थे—सद्‌गुरु की कृपा होने पर जीव का अहंकार शीघ्र ही दूर हो जाता है। और गुरु यदि स्वयं असिद्ध है, तो शिष्य का संसार-बन्धन नहीं कटता, शिष्य मुक्त नहीं होता। "

बेलुड़ मठ

शनिवार, १ सितम्बर, १९२३

महापुरुष महाराज अपने कमरे में बैठे हुए हैं। मुख भावोद्दीप्त है और नेत्रों से स्नेह-स्रोत मानो उमड़ रहा है। कमरे में पूर्ण शान्ति विराज रही है। शनिवार होने के कारण कलकत्ते से कई भक्त दर्शन करने आए हैं। इनमें से प्रायः सभी युवक हैं, दफ्तरों में काम करते हैं। अवकाश मिलते ही महापुरुष महाराज के पास आते हैं और उनकी अमूल्य अमृत-वाणी एवं उपदेशों को सुनकर अनुप्रेरित होते हैं। आज साधन-भजन की बात उठी। एक ने पूछा, " महाराज, किसी-किसी दिन जप-ध्यान करना बहुत अच्छा लगता है; पर कभी-कभी वैसा आनन्द नही मिलता। ऐसा क्यों होता है ? "

महाराज— "हाँ, ऐसा ही होता है, कुछ दिन बहुत अच्छा लगता है और कभी-कभी अच्छा नहीं लगता। पहली अवस्था में प्रायः सभी को ऐसा होता है। किन्तु इस कारण जप-ध्यान बन्द नहीं कर देना चाहिए। क्या ठाकुर खानदानी किसान की बात नही कहा करते थे ? बस उसी के समान लगे रहना चाहिए और खूब प्रार्थना करनी चाहिए। कहो, 'प्रभु, हम साधनहीन और भजनहीन हैं, संसार में रहते हैं; हम लोग दुर्बल हैं, हमारी वैसी शक्ति और उतना समय नही है, तुम कृपा करके मन ठीक कर दो, जिससे हम तुम्हें भलीभाँति पुकार सकें। तुम्हें छोड़कर हमारा और कोई नहीं। हम बहुत दुर्बल हैं, तुम यदि शक्ति नही दोगे, तो तुम्हें हम लोग कैसे पुकार सकेंगे ?' बच्चा, इस प्रकार खूब प्रार्थना करते जाओ। प्रार्थना, प्रार्थना, उनके निकट

केवल कातरभाव से प्रार्थना करते जाओ। उनको पुकारते-पुकारते रोओ; तभी तो उनकी दया होगी। देखो न, श्रीश्री-ठाकुर किस तरह जगन्माता को पुकारते थे। 'एक दिन चला गया; माँ, तूने अब भी दर्शन नहीं दिए,' और यह कह-कहकर जमीन में मुँह घिसते हुए रोते थे। श्रीगौरांग महाप्रभु कितने व्याकुल भाव से प्रार्थना करते थे। 'प्रभु, तुम्हारे नाम में रुचि नहीं हुई' कहकर घास में मुख घिसते और रोते थे। इसी प्रकार व्याकुल भाव से उनका नाम-जप करना चाहिए। नाम ही सार है, बच्चा, नाम ही सार है। उनका नाम-जप करते-करते हृदय में शक्ति आती है। सदा उनका नाम-जप और प्रार्थना करना मत भूलो।"

भक्त — "महाराज, उनका नाम क्या प्रत्येक समय लिया जा सकता है? जैसे चलते-चलते भी ?"

महाराज— "अवश्य, अवश्य। जप का कोई समय-असमय नहीं है। जब कभी समय मिले, तभी उनका नाम-जप करना। चलते-चलते उनका नाम मन-ही-मन स्मरण करना। उस समय हाथ या माला द्वारा जप तो सम्भव नहीं है, क्योंकि लोग देख लेंगे। भगवान का नाम-जप खूब छिपाकर करना चाहिए, जिससे किसी को मालूम तक न हो। उनका स्मरण-मनन प्रतिक्षण करते रहना। एक अभ्यास जमा लो। चलते-फिरते, खाते-सोते, यहाँ तक कि सब काम-काज करते हुए भी उनका स्मरण-मनन निरन्तर करते रहना — मानो एक under-current (अन्तःस्रोत) बह रहा हो। इस प्रकार कुछ दिन अभ्यास करने पर देखोगे कि तुम्हारे बिना जाने भी, यहाँ तक कि नींद में भी जप चल रहा है — स्मरण-मनन भीतर-ही-भीतर चल रहा है।"

भक्त —"परन्तु, महाराज, मन किसी भी तरह स्थिर नहीं

होना चाहता। जैसे, जप कर रहा हूँ — हाथ में माला है, मुख से नामोच्चारण हो रहा है, किन्तु मन में अनेक प्रकार की चिन्ताएँ चल रही हैं। ऐसी चिन्ताएँ आती हैं, जो कभी जीवन में सोची तक नहीं।"

महाराज — "हाँ, यह मन ही सब गड़बड़ करता है। इस मन को ही वश में लाना पड़ता है, नहीं तो यह इधर-उधर बहुत घुमाता फिरता है। पर आन्तरिक चेष्टा होने पर फिर यही मन वश में भी आ जाता है — यह दुष्ट मन ही बाद में ठीक होकर गुरु का कार्य करने लगता है, भीतर-ही-भीतर प्रभु का नाम जपता रहता है, मनुष्य को सत्पथ पर चलाता है और सत्कर्म में प्रेरणा करता है। बारम्बार अभ्यास करना पड़ता है और व्याकुल होकर उनके निकट प्रार्थना करनी पड़ती है, सदसत् का विचार करना पड़ता है। पर, बच्चा, यह एक दिन का काम तो नहीं है। तभी तो गीता में श्रीभगवान ने कहा है —

'असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते॥'*

— 'हे वीर, इस चंचल मन को वश में करना अत्यन्त कठिन है, इसमें सन्देह नहीं; किन्तु, हे कौन्तेय, अभ्यास और वैराग्य द्वारा उसको वश में लाया जा सकता है।' अभ्यास — निरन्तर अभ्यास और विचार की आवश्यकता है। एकमात्र भगवान ही सत् वस्तु हैं, नित्य वस्तु हैं, यही बात हृदय में अच्छी तरह धारण किए रहनी चाहिए।"

बातचीत करते-करते महापुरुषजी का मन क्रमशः अन्तर्मुख हो रहा है। वे ध्यानमग्न हो नेत्र बन्द किए मौन बैठे हैं। भक्त लोग

* गीता — ६।३५

छ देर प्रतीक्षा कर कोई मन्दिर में और कोई गंगा-तट पर
ले गए।

बेलुड़ मठ

शनिवार, ८ सितम्बर, १९२१

सवेरे का समय है। महापुरुष महाराज अभी ही पूजा-
ार से लौटे हैं। इस समय भी अपने भाव में तन्मय हैं।
ुछ गुनगुना रहे हैं। मृगचर्म का आसन बगल में लिए
त के ऊपर से होकर पूजा-घर से आते समय दक्षिणेश्वर
ी ओर मुँह कर उन्होंने हाथ जोड़कर प्रणाम किया,
ौर बाद में गंगाजी को प्रणाम कर अपने कमरे में पधारे
ैं। मठ के संन्यासी और ब्रह्मचारीगण ध्यान-जप आदि
समाप्त कर, एक-एक करके उनको प्रणाम कर चले जा रहे
ैं। वे अभी भी किसी के साथ किसी प्रकार की बात-
चीत नहीं कर रहे हैं। वे आत्मस्थ हैं; चुपचाप बैठे हुए हैं। कुछ
देर बाद एक वृद्ध संन्यासी ने आकर महापुरुष महाराज को
प्रणाम कर कुशल-प्रश्न आदि पूछा। ये संन्यासी मठ का काम-
काज देखा करते हैं। महापुरुषजी के साथ मठ के कार्य-कलाप के
सम्बन्ध में सामान्य वार्तालाप करने के बाद दक्षिणेश्वर की बात-
चीत चलाकर उन्होंने पूछा, "अच्छा, महाराज, यह जो दक्षिणे-
श्वर मन्दिर आदि सब रिसीवर के हाथ में चला गया, इससे
क्या अच्छा होगा?"

महापुरुषजी —"मालूम होता है कि अच्छा ही होगा।
अभी माता की सेवा-पूजा आदि में अत्यधिक विशृंखलता आ गई

है। इससे जान पड़ता है कि माता की इच्छा से ही ऐसी व्यवस्था हुई है। दक्षिणेश्वर क्या कोई छोटा स्थान है? स्वयं भगवान जीवों के कल्याण के लिए नर-देह धारण कर इस स्थान में कठोर तपस्या कर गए हैं। और ऐसी साधना तो जगत् के इतिहास में कभी हुई ही नहीं— भविष्य में भी जान पड़ता है न होगी। दक्षिणेश्वर में सभी तीर्थों का समावेश है; उस स्थान का प्रत्येक रजकण पवित्र है। हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, फिर शैव, शाक्त, वैष्णव आदि सब धर्मों के सभी मत के साधकों के लिए यह महातीर्थ-स्थान है। जगत् में जो अन्य सब तीर्थ-स्थान हैं, उनमें या तो कहीं पर एक-आध साधक किसी एक भाव से साधना करके सिद्ध हो गए हैं, या कोई एक सिद्ध पुरुष शरीर-त्याग कर गए हैं—बस, इसी प्रकार के वे सब हैं। किन्तु दक्षिणेश्वर, स्वयं भगवान का साधना-पीठ है। उस स्थान में कितने प्रकार के आध्यात्मिक भावों का विकास हुआ है, इसकी कौन गणना कर सकता है? समय आने पर लोग इस स्थान का माहात्म्य समझेंगे; उस समय इस स्थान के रजकणों के लिए झपटा-झपटी होगी। इस स्थान का घनीभूत *आध्यात्मिक वातावरण नष्ट होने का नहीं।* जब से सुना है कि दक्षिणेश्वर में माता की सेवा-पूजा और भोग आदि की ठीक-ठीक व्यवस्था नहीं हो रही है, तब से *नित्यप्रति माता का* यहीं आह्वान कर, मन-ही-मन उनकी पूजा और भोग आदि यहीं पर निवेदित करता हूँ। माँ से कहता हूँ—'माँ, तुम खाना-पीना यहीं पर करो। हम लोगों की ही सेवा ग्रहण करो।' वहाँ के मन्दिर में सेवा-पूजा की सुव्यवस्था हो जाय, तो निश्चिन्त होऊँ।

"स्वामीजी ने कहा था कि समय आने पर शायद दक्षिणेश्वर की सारी जगह मठ के अधीन हो जायगी। महापुरुषों की इच्छा कभी विफल नहीं होती। मथुर बाबू तो अपने हृदय से ठाकुर को सब दे ही चुके थे; किन्तु ठाकुर ने उस समय उसे स्वीकार नही किया था। अब तो उनका कार्य भिन्न-भिन्न स्थानों में भिन्न-भिन्न रूप से हो रहा है—विशेषकर अब इस स्थान की रक्षा नितान्त आवश्यक हो उठी है। माता की जब इच्छा होगी, तब देखोगे कि सब कुछ मठ के अधीन आ जायगा।"

सन्यासी—"किन्तु, महाराज, इन सब रुपये-पैसों को सँभालना भी तो बड़ा कठिन काम है। इतना ही नही, इसके साथ-साथ जमीदारी भी है, इन सब चीजों की देख-भाल करना कितना मुश्किल काम है। सासारिक व्यापार और ऐश्वर्य के साथ बँध जाने के कारण बड़े-बड़े धर्मसम्प्रदाय धीरे-धीरे आदर्शच्युत होकर पतन के गर्त में चले गए है—इतिहास में इसके अनेक दृष्टान्त है।"

महापुरुषजी—"तुम जो कहते हो, वह एक तरह से ठीक ही है। लेकिन मेरी धारणा क्या है, जानते हो? जिन सब धर्म-संघों का पतन हुआ है, उसके मूल में था साधन-भजन और त्याग-तपस्या आदि का अभाव। ठाकुर के इस संघ में भी जब तक त्याग-वैराग्य प्रज्वलित रहेगा, संघ का प्रत्येक अंग जब तक भगवान-लाभ को ही जीवन का मुख्य उद्देश्य मानकर भजन-साधन और तपस्या आदि में रत रहेगा, तब तक किसी भी प्रकार का भय नहीं—सब अच्छी तरह चलेगा। साधुओं की ठीक-ठीक दृष्टि कैसी होनी चाहिए, इस सम्बन्ध मे महाराज एक बड़ी सुन्दर बात कहते थे। वे कहते थे कि सन्यासी जब अट्टालिका

में वास करे, उस समय भी सोचे कि 'मैं वृक्ष के नीचे हूँ;' और जब सोलहों पकवान खाए, तब भी मन में यही सोचे कि 'मैं पवित्र भिक्षान्न खा रहा हूँ।' इसका अभिप्राय यह है कि सभी अवस्थाओं में निर्लिप्त रहकर अन्तर में तपस्या का भाव जगाकर रखे। भाव शुद्ध रहने पर फिर कोई भय नहीं रहता। भाव को लेकर ही सब है। और तुम लोग जो कुछ काम-काज करते हो, सो सब तो श्रीभगवान का ही कार्य है—तुम लोग अपने लिए तो कुछ भी नहीं करते? कार्य भी तो तुम्हारे लिए साधना का अंग है। उनकी सेवा समझकर उनका कार्य करने पर निश्चय ही उसके द्वारा मन का सब मैल दूर हो जायगा। पर इतना आवश्यक है कि साथ-साथ भजन-साधन खूब जोरों के साथ जारी रखना होगा। भजन-साधन में कमी आने पर ही सब कुछ गड़बड़ हो जाता है। अनासक्त होकर उनका कार्य करना होगा। इस बात को सर्वदा अपने मन में रखो कि 'ठाकुर का कार्य कर रहा हूँ।' इस भाव से जो कोई उनका कार्य करेगा, उसका कभी भी किसी प्रकार का अकल्याण न होगा। वे उसकी सर्वदा रक्षा करते रहेंगे। किन्तु अहंकार और अभिमान के आते ही वह नष्ट हो जायगा। ठाकुर कहते थे—देखना, कहीं मन में कपट भाव न आए। 'उनका कार्य और उनकी सेवा करते हुए धन्य होता [illegible] रहा हूँ,' इस भाव का आश्रय लेकर रहने पर कोई भय नहीं है और अपने मन के ऊपर सतर्क दृष्टि रखकर प्रत्येक कार्य में अप[illegible] मन का विश्लेषण करना चाहिए। जब कभी भी मालूम हो [illegible] मन की गति थोड़ीसी भी बदल रही है, तो उसी समय उनके पास कातर हो प्रार्थना करना, और भजन-साधन में और भी जोर [illegible]

डूब जाना। काम दिन-रात तो करते न रहोगे ? और काम-काज के बीच भी समुचित रूप से उनका स्मरण-मनन करते रहना होगा।"

सन्यासी—"जीवन्त आदर्श आँखों के सामने देखते न रहने पर सारे समय जीवन की गति को आदर्श की ओर नियन्त्रित रखना बहुत कठिन है। आप जब तक हैं, तब तक सब ठीक चलेगा। उसके बाद क्या होगा, ठाकुर ही जाने !"

महापुरुषजी—"सो क्यों? यह अच्छी तरह जान लो कि ठाकुर ही थे जीवन्त आदर्श। और फिर हम लोग तो मौजूद हैं ही। देह के नाश के साथ-साथ ही तो अन्य सब कुछ नष्ट नहीं हो जाता? साधन-भजन के द्वारा जब मन शुद्ध हो जाता है, उस समय उस मन में भगवान की दिव्य जीवन्त अनुभूति होती है। वही अनुभूति है वास्तविक अनुभूति, और उसका प्रभाव समस्त जीवनव्यापी होता है। फिर तुम लोग भी क्या कोई कम हो? अपनी आँखों के सामने ही ठाकुर की सन्तानों का आदर्श जीवन देखा है, उनका संग-लाभ प्राप्त किया है—यह भी बहुत सुकृति के फल से होता है। तुम लोगों के लिए चिन्ता की कोई बात नहीं। जिनके भीतर ठीक-ठीक त्याग-वैराग्य विद्यमान है, उन्हें कभी भी कोई भय नहीं। श्रीभगवान उनके हृदय में प्रकटित होंगे—दर्शन देकर उनका जीवन धन्य कर देंगे। यथार्थ वस्तु तो है त्याग-वैराग्य—पवित्रता और भगवत्प्राप्ति की आन्तरिक इच्छा। अभी अत्यन्त शुभ मुहूर्त है—इस समय अल्प साधन-भजन से ही जीव को चैतन्य लाभ होगा। ठाकुर के आगमन से भगवत्प्राप्ति का पथ अत्यन्त सुगम हो गया है। और जो आध्यात्मिक स्रोत अभी

आया है, वह अनेक शताब्दियों तक बहता रहेगा, इसमें कोई सन्देह नहीं। स्वामीजी ने अपने देह-त्याग से कुछ दिन पूर्व इस प्रांगण में खड़े होकर कहा था—जो स्रोत आ रहा है, वह अबाध गति से सात-आठ शताब्दियों तक चलता रहेगा—कोई भी उसकी गति का रोध न कर सकेगा। यह युग-प्रवाह अपनी शक्ति से चलेगा—इसे किसी की सहायता की अपेक्षा नहीं। यह सब ईश्वरीय शक्ति का व्यापार है—बेचारा मनुष्य भला क्या करेगा? इस युग-प्रयोजन के साधन में जो सहायक होगा, वह स्वयं धन्य हो जायगा। ठाकुर जिस आध्यात्मिक शक्ति को लेकर जगत् में आए थे और जिस शक्ति को वे उद्बुद्ध कर गए हैं, उस ईश्वरीय शक्ति को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए ही तो ठाकुर के इशारे पर स्वामीजी इस धर्मसंघ का निर्माण कर गए हैं और इस मठ को प्रधान केन्द्र कर इस महान् कार्य की सूचना दी है। यह मठ ही है आध्यात्मिक शक्ति का उत्पत्ति-केन्द्र (Power House); इस स्थान से ही आध्यात्मिक शक्ति का स्रोत प्रवाहित होकर समस्त जगत् को प्लावित कर देगा। इसी लिए तो उन्होंने *अपने सिर पर ठाकुर को लेकर यहाँ बैठाया* था। ठाकुर ने स्वामीजी से कहा था, 'तू मुझे सिर पर उठाकर जहाँ भी ले जाकर रखेगा, वहीं पर मैं रहूँगा।' यह मठ जिस दिन प्रतिष्ठित हुआ, उस दिन स्वामीजी 'आत्माराम'* को अपने सिर पर उठाकर ले आए और इस मठ में स्थापित कर दिया। उस दिन पूजा, होम, भोग आदि खूब हुआ था। मैंने ठाकुर के भोग के लिए खीर पकाई थी। ठाकुर को मठ में

* भगवान श्रीरामकृष्ण देव की अस्थियाँ जिस पात्र में रखी गई थीं, उसे स्वामी विवेकानन्द 'आत्माराम का पात्र' कहा करते थे।

प्रतिष्ठित कर स्वामीजी ने कहा था, 'आज मेरे सिर पर से जीवन का सबसे महान् उत्तरदायित्व उतर गया। अब मेरा शरीर-पात भी हो जाय, तो कोई हर्ज नहीं।' उसके बाद से सब भजन-साधन यहीं हुआ है—आत्माराम को केन्द्रस्थ करके। स्वामीजी, महाराज, बाबूराम महाराज* इन सबों ने यहाँ पर कितना साधन-भजन किया था! वे सभी थे अवतारकल्प महापुरुष—भगवान के पार्षद। अवतार का संग छोड़कर ये सब अधिकतर नहीं आते। ये सब महापुरुष इस मठ में कितना साधन-भजन कर गए हैं! सोचकर देखो, यह मठ कैसा स्थान है! स्वयं माँ जगज्जननी‡ यहाँ आई थीं। मैंने सुना है कि इस मठ की स्थापना के पूर्व ही एक समय जब माँ गंगा में नौका करके जा रही थीं, तब उन्होंने इस स्थान पर ठाकुर के दर्शन किए थे। इस मठ के स्थापित होने के बाद भी हम लोग पहाड़, जंगल आदि में तपस्या करने के लिए चले अवश्य गए थे, परन्तु फिर भी हम लोगों का मन पड़ा रहता था मठ में आत्माराम के समीप। अभी तो एक-एक करके ठाकुर के सभी पार्षद उनके पास पहुँच गए हैं। अब तुम लोगों की पारी है। त्याग, तपस्या और भजन-साधन के द्वारा इस मठ के आध्यात्मिक प्रभाव को अक्षुण्ण बनाए रखना होगा। ऐसा आदर्श जीवन गढ़ना होगा, जिससे लोग तुम सबों की संगति करने पर मन में ऐसा सोचें कि वे साक्षात् ठाकुर एवं उनके पार्षदों की ही संगति कर रहे हैं। ठाकुर का भाव एक वाक्य में कहा जा सकता है—

* स्वामी प्रेमानन्द।

‡ भगवान श्रीरामकृष्ण देव की धर्मपत्नी।

भगवान का लाभ ही जीवन का उद्देश्य है और त्याग, *तपस्या एवं सर्वधर्मसमन्वय ही वास्तविक जीवन है।"*

एक संन्यासी दक्षिण भारत के एक शाखा-केन्द्र में ठाकुर के भाव का प्रचार करने के लिए जा रहे हैं। वे प्रणाम करके आशीर्वाद माँगते हुए महापुरुषजी से बोले, "महाराज, आशीर्वाद दीजिए, जिससे जीवन में भगवान का लाभ हो। इतने दिनों तक आपके पास था, अब आपको छोड़कर जाना पड़ रहा है सुदूर मद्रास में—इसलिए मन में अत्यधिक कष्ट हो रहा है! अब तो इच्छा होते ही आपके दर्शन प्राप्त न हो सकेंगे। अब तो आप ध्यान का विषय हो जायेंगे। उस प्रदेश में जाकर किस प्रकार रहना होगा, इस विषय में कृपया कुछ उपदेश दीजिए।"

महापुरुषजी संन्यासी को अनेक आशीर्वाद देते हुए स्नेहार्द्र होकर बोले, "बच्चा, तुम लोगों ने ठाकुर के श्रीपादपद्मों में आश्रय लिया है, वे सर्वदा तुम लोगों की रक्षा करेंगे। जहाँ कहीं भी रहो, इस बात को अच्छी तरह मन में रखो कि ठाकुर तुम्हारे साथ-साथ रहते हैं। तुम लोग उनके परम प्रिय हो। तुम लोग पढ़े-लिखे हो, पवित्र हो, उनको प्राप्त करने के लिए ही सर्वस्व त्यागकर आए हो, वे क्या यह सब नहीं जानते? अहा! मैं कभी-कभी सोचता हूँ, स्वामीजी यदि स्थूल शरीर में इस समय होते, तो वे इन सब बच्चों को देखकर कितने आनन्दित होते! तुम जहाँ जा रहे हो, वहाँ पर भी ठाकुर के बहुत भक्त हैं। जो तुमने देखा है, जो हम लोगों के पास सीखा है, वही उनसे कहना। यथार्थ बात यही है कि त्याग-तपस्यापूर्ण आदर्श संन्यासी का जीवन बिताना होगा। ठाकुर

का जीवन त्याग की ज्वलन्त मूर्ति है। तुम लोग उन्ही के पवित्र संघ के संन्यासी हो—उन्ही के भाव का प्रचार करने के लिए जा रहे हो। सबसे महान् प्रचार तो है अपना आदर्श जीवन दिखलाना—ताकि तुम लोगो का जीवन देखकर लोग ठाकुर की धारणा करने और उन्हें समझने का सुयोग प्राप्त कर सके। अतएव ठाकुर और स्वामीजी के जीवनादर्श में अपने जीवन को जितना अधिक गढ़ सकोगे, उतना ही तुम्हारे द्वारा उनके भाव का प्रचार होगा। जिस समय अपने को दिग्भ्रान्त समझो, उसी समय उनके निकट खूब कातर प्राणों से प्रार्थना करना—वे तो तुम्हारी अन्तरात्मा है—भीतर में ही रहते हैं। वे भीतर से आलोक दिखला देगे—क्या कर्तव्य है, सो ठीक-ठीक समझा देगे। तुम कुछ प्रचार करने जा रहे हो—इस भाव को मन में कभी न आने देना। ठाकुर स्वयं ही अपने भावों का प्रचार करते हैं। तुम और हम भला उनका क्या प्रचार करेंगे? उनको कौन समझ सकता है? ठाकुर है अनन्त भावमय—उनकी 'इति' करना क्या सम्भव है? यहाँ तक कि स्वामीजी ने स्वयं कहा है, 'ठाकुर क्या हैं, सो कुछ भी नही समझ सका,' फिर दूसरों की तो बात ही क्या। उनके श्रीपादपद्मों में भक्ति-विश्वास लाभ करना ही जीवन का उद्देश्य है। तुम यहाँ पर जिस प्रकार भजन-साधन, पठन-श्रवण, सत्चर्चा आदि करते थे, उसी प्रकार वहाँ पर भी करना—बल्कि वहाँ तो और भी अधिक करना। उससे तुम्हारा अपना ही कल्याण होगा। अभी तुम लोगो का साधन-भजन करने का समय है—उसी ओर अधिक जोर देना। मैं खूब प्रार्थना करता हूँ—

भक्ति, विश्वास, प्रेम, पवित्रता से तुम्हारा हृदय परिपूर्ण हो जाय, तुम्हारा यह मानव-जीवन धन्य हो जाय।"

बेलुड़ मठ

मंगलवार, ११ सितम्बर, १९२३

प्रातःकाल का समय है, लगभग ७॥ बजे होंगे। महापुरुष महाराज अभी-अभी पूजा-घर से होकर आए हैं। आजकल सबेरे वे बहुत देर तक बैठकर ध्यान करते हैं। उषाकाल में श्रीश्रीठाकुर की मंगलारती के समय ही वे एक मृगचर्म लेकर पूजा-घर में जाते हैं और ध्यान करने बैठ जाते हैं। वहाँ से आते-आते किसी-किसी दिन बहुत देर भी हो जाती है। आज पूजा-घर से आकर वे अपने कमरे में कुर्सी पर बैठे हुए हैं, अब भी ध्यान की तन्मयता नहीं गई है, खूब तन्मय भाव है। मठ के साधु-ब्रह्मचारी और बाहर के भक्त लोगों में से कोई-कोई प्रणाम करके जा रहे हैं। महापुरुषजी अत्यन्त संक्षेप रूप से कुशल-प्रश्न पूछ रहे हैं। बातचीत करने योग्य मनोदशा अभी भी नहीं आई है। कल मठ के एक संन्यासी रामेश्वर, द्वारका आदि तीर्थ पर्यटन कर लौटे हैं। वे साधु महापुरुषजी के कमरे में आए और उन्हें प्रणाम किया। उन्हें देखते ही महापुरुषजी ने हाथ जोड़कर 'जय बाबा रामेश्वर, जय द्वारकानाथजी' कहते हुए प्रणाम किया और उन साधु को लक्ष्य कर कहने लगे, "इस सब विषय का ध्यान करना। जिनके दर्शन करके आए हो, उन सबको ध्यान में लाने का प्रयत्न करना। तीर्थ आदि दर्शन करने का यही तो उद्देश्य है। देश-भ्रमण के समान सिर्फ तीर्थ

घूम आने से कुछ नहीं होता। जो लोग ठीक-ठीक भक्त हैं, वे इन सबके ध्यान के द्वारा अपनी चित्तशुद्धि करते हैं। वे ही तो सब हैं, तीर्थ आदि उन्हीं का ऐश्वर्य है। उनके चिन्तन के साथ-साथ उनके ऐश्वर्य का भी चिन्तन करना चाहिए। तीर्थ आदि में उनका विशेष प्रकाश है। वे केवल हमारे पूजा-घर में ही बैठे हों, सो नहीं; वे तो जगन्नाथ और सर्वव्यापी हैं, सर्वत्र विद्यमान हैं। फिर भी तीर्थ आदि में और साधु-सन्तों में उनका विशेष प्रकाश है।"

संन्यासी—"इस बार कुछ समय तक यात्रा करने से यह धारणा खूब जम गई है कि तीर्थ आदि में उनका विशेष प्रादुर्भाव है। और उन्होंने हाथ पकड़कर जो मेरी पग-पग पर रक्षा की है, यह भी ठीक-ठीक समझ सका हूँ। कन्याकुमारी में तीन दिन रहा; बहुत अच्छा लगा। ध्यान-जप, पूजा-पाठ आदि में बहुत समय बीत जाता था। स्थान भी इतना सुन्दर है कि छोड़कर आने को हृदय चाहता ही न था। ठाकुर की कृपा से रहने-ठहरने का बन्दोबस्त भी अच्छा हो गया था—और वह भी असम्भाव्य उपाय द्वारा।"

महाराज—"बीच-बीच में निःसहाय अवस्था में बाहर जाना अच्छा है। तभी भगवान के ऊपर ठीक-ठीक निर्भरता आती है। यदि श्रीभगवान के ऊपर निर्भरता न आई, तो सब धूल के समान है। इतना साधन-भजन जो कुछ किया जाता है, वह सब निर्भरता लाने के लिए ही तो है। और अनन्य मन से जो उनके शरणागत होता है, उसका समस्त भार वे अपने ऊपर ले लेते हैं, उसकी सब प्रकार से रक्षा करते हैं। तभी तो श्रीभगवान ने गीता में प्रतिज्ञा की है—

'अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥'†

—'जो मेरे ऊपर ही अनन्य भाव से निर्भर रहकर मेरा चिन्तन और उपासना करते हैं, सदा मुझमें ही आसक्तचित्त हैं, उन सब व्यक्तियों के योग-क्षेम (अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति और प्राप्त वस्तु की रक्षा) का भार मैं अपने ऊपर ले लेता हूँ।' एकनिष्ठ होकर जो उनका भजन करते हैं, उनकी शरण लेते हैं, उस भक्त का समस्त भार वे स्वयं ग्रहण करते हैं।"

धीरे-धीरे संन्यासाश्रम और सन्यासी-जीवन की बात चली। एक नवदीक्षित सन्यासी ने पूछा, "महाराज, सन्यासी-जीवन में कौन-कौनसे नियम पालन करने पड़ते हैं? परमहंस उपनिषद् और नारायण उपनिषद् में संन्यासी के लिए जो सब नियम-विधि हैं, इस काम-काज के बीच वह सब मानकर चलना तो हमारे लिए सर्वदा सम्भव नहीं। सुधीर महाराज (स्वामी शुद्धानन्द) के साथ भी कल रात को यही बातचीत हुई थी।"

महाराज—"हाँ, संन्यासी के लिए अनेक नियम हैं, किन्तु तुम्हें ये सब नियम मानने की आवश्यकता नहीं। तुम लोग कर्मयोगी संन्यासी हो। तुम लोगों के लिए स्वामीजी नया आदर्श रख गए हैं। तुम लोगों को साधन-भजन करना होगा और साथ-ही-साथ अनासक्त होकर साधन-भजन के अनुकूल कर्म भी करना होगा। कारण, तुम लोगों के लिए इन सब नियमों को अक्षर-प्रत्यक्षर मानकर चलना सम्भव नहीं। ये सब नियम केवल ज्ञानमार्गी संन्यासियों के लिए हैं—जो कर्म नहीं करते, केवल ज्ञानानुशीलन और ज्ञान-विचार लेकर ही रहते हैं।

† गीता—९।२२

फिर भी, बच्चा, एक बात है, दो-एक मूल बातें ठीक रख लेने से अन्य सब कुछ धीरे-धीरे ठीक हो जाता है।"

सन्यासी—"मूल बात क्या है, महाराज ?"

महाराज—"मूल बात है काम-कांचन-त्याग। यथार्थ काम-काचन-त्यागी होने से ही सब कुछ हो जाता है। केवल बाह्य त्याग नहीं, काम-काचनासक्ति भी छोड़नी पड़ती है। तुमने जो यह सब आहुति दी है, पुत्रैपणा, वित्तैपणा इत्यादि, इन समस्त कामनाओ के मूल मे है—काम और काचन। काम-काचन का सब प्रकार से त्याग करना—यही है सन्यासी के लिए एकमात्र विशेष रूप से मानने का नियम। उनके पास ठीक-ठीक शरणागत होकर पड़े रहना पड़ेगा। वे तो भगवान है, वे ही कृपा करके सब बता देंगे, समझा देंगे।"

सन्यासी—"किन्तु, महाराज, जितने दिन देह है, उतने ़न देह-रक्षा के लिए कुछ-न-कुछ कामनाएँ तो रखनी ही पड़ती ?"

महाराज—"हाँ, सो तो ठीक है। शास्त्र मे भी वैसी । विधि है। बृहदारण्यकोपनिषद् में ही कहा है। 'एतं वै मात्मानं विदित्वा ब्राह्मणाः पुत्रैपणायाश्च वित्तैपणायाश्च लोकै-णायाश्च व्युत्थायाथ भिक्षाचर्यं चरन्ति,'†—'ब्राह्मणगण इस ़ात्मा को जानकर पुत्रैपणा, वित्तैपणा और लोकैपणा से ़ुत्थित होकर अर्थात् पुत्रवित्तादि विषयों मे कामना का त्याग कर ़क्षाचर्या अवलम्बन करते है।' केवल शरीर-धारण के लिए जतनी आवश्यकता है, उतनी ही कामना रखनी चाहिए। ़ौर भिक्षादि भी प्रयोजन के अनुसार ही अतिसामान्य करनी

† बृहदारण्यक उपनिषद्—३।५।१

चाहिए। किन्तु ऐसा आदेश कहीं नहीं है कि सोलहों पकवान खाना चाहिए अथवा आराम में रहना चाहिए। साथ ही शरीर-धारण का उद्देश्य भी यही रहना चाहिए—उनको हृदय से पुकारना और उनकी सेवा आदि कार्य करना, इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं।"

संन्यासी—"अच्छा, महाराज, द्वैतवादियों के लिए संन्यास-पालन किस प्रकार सम्भव है?"

महाराज—"क्यों नहीं होगा? संन्यास का सार अर्थ है कामना-त्रयों का सम्यक् रूप से नाश। ठीक-ठीक द्वैतवादी अन्य सब कामनाओं को त्यागकर केवल भगवान को ही चाहता है, अन्य कुछ नहीं। भगवान ही तो एकमात्र काम्य वस्तु हैं। उनको पाने की जो कामना है, वह कामना थोड़े ही है।"

बेलुड़ मठ

शनिवार, अक्टूबर, १९२३

सुधीर महाराज (स्वामी शुद्धानन्द) काशीजी जा रहे हैं। उसी सिलसिले में श्रीकाशीवास विषयक बातचीत के प्रसंग में महापुरुष महाराज बोले, "मुझे भी × बाबू ने काशी जाने के लिए बहुत लिखा है। दीनू बूढ़े (स्वामी सच्चिदानन्द) ने तो खूब डर-डरके लिखा है, 'सुना है, आपका स्वास्थ्य बहुत गिर रहा है, आप काशी चले आइए। आप लोगों ने तो बहुत काम-काज किया है, अब ये सब लड़के लोग काम-काज करें। आप इस बार काशी में आकर रहिए।' दीनू बूढ़े की धारणा है कि मेरा यह शरीर अब और अधिक दिन नहीं चलेगा।

इसलिए अन्तिम समय में काशीवास कराना चाहता है। हम लोगों के लिए तो, बच्चा, सभी जगह काशी है; कहीं भी और किसी भी अवस्था में शरीर क्यों न छूटे, सर्वत्र काशी-प्राप्ति है। ठाकुर जितने दिन जीवित रखना चाहते हैं, (हँसते-हँसते) उतने दिन कोई मार नहीं सकता। 'जाको राखे साइँया मारि सके नहिं कोय।' और जब ठाकुर बुलाएँगे, तो कोई भी रोक न सकेगा। हम लोग तो ready (प्रस्तुत) होकर बैठे हैं। अन्तकाल में काशीवास करूँ, जिससे काशी-प्राप्ति हो, ऐसा तो साधारण संसारी जीव कहते हैं। हम लोग तो संसारी जीव नहीं हैं! ठाकुर ने कृपा करके हम लोगों को सब कुछ दे दिया है। उनके भक्त कहीं भी देह-त्याग यों न करें, उससे कुछ बनता-बिगड़ता नहीं। सर्वत्र काशी-प्राप्ति है। देखो, सारदा (स्वामी त्रिगुणातीतानन्द) ने तो सॅन फ्रान्सिस्को में देह छोड़ी है, पर शरीर-त्याग के बाद वह उन्हीं के समीप गया है। जिसके हृदय में उन विश्वनाथ ठाकुर का निवास है, उसका हृदय ही काशी है, तब फिर उसे भय किस बात का?"

बेलुड़ मठ

रविवार, अक्टूबर, १९२१

आज रविवार है। महापुरुष महाराज अपने कमरे में बिस्तर पर बैठे हैं। लगभग नौ बजे हैं। अनेक भक्त लोग आए हैं; अनेक प्रकार की बातचीत हो रही है। एक भक्त ने

कुछ उत्सुकतावश महापुरुषजी से पूछा, "महाराज, आपकी आयु क्या होगी ?"

महाराज—"इस देह की आयु पूछ रहे हो ? वह ठीक नहीं बता सकता। फिर भी जान पड़ता है ७०-७२ वर्ष होगी।"

भक्त—"तब तो हम लोगों की आयु से लगभग तीन गुनी हुई।"

महाराज—"सो होगी। तीन गुनी—तीन गुनी ही क्यों, मैं तो अनादि काल से ही हूँ, अनादि, अनन्त, नित्य, अजर, अमर आत्मा। सभी के अन्दर वे ही शुद्ध-बुद्ध-मुक्त-स्वभाव चैतन्यस्वरूप विद्यमान हैं। और ये जो दस, बीस, पचास, सौ, दो-सौ है—यह तो सब मायिक है। वे तो चिरकाल से वर्तमान हैं, एक ही भाव से—सत्यस्वरूप, सनातन पुरुष। यह जगत् तो मायामय है, और इस मायामय अनित्य जगत् को सत्य मानने से ही यह सब गड़बड़ी है। मरुमरीचिका में वास्तविक जल मानकर मृगयूथ सट-सट छलाँगें भरता जाता है। दूर से वह स्थान ऐसा मालूम पड़ता है मानो अनन्त जलराशि है और उसके वक्ष पर तरंगे खेल रही हैं। इसी लिए जल-प्राप्ति की आशा से हरिण उसमे छलाँगे भरकर कूद पड़ते हैं और प्राण खो बैठते हैं। इसी प्रकार इस मायामय अनित्य जगत् को सत्य मानकर मनुष्य उसमें जल-भुनकर मरा जा रहा है। एक दिन यह संसार छोड़कर जाना है, यह एक बार भूलकर भी नही सोचता। सब पक्का बन्दोबस्त करना चाहता है—पक्का मकान, पक्का घर-द्वार, सब पक्का। अरे बच्चा, कितना ही पक्का क्यों न बनाओ, पर कितने दिन के लिए ?"

वहाँ एक वृद्ध सज्जन उपस्थित थे, उन्हे लक्ष्य कर बोले, "जाइए, गंगाजी में हाथ-मुँह धोकर पूजा-गृह में बैठिए। पूजा-गृह को हमने कैलास बनाकर रखा है, वैकुण्ठ बनाकर रखा है। वहाँ ठाकुर हैं, माँ हैं, स्वामीजी, महाराज, बाबूराम महाराज, योगीन्द्र महाराज* —सभी हैं। मैं तो जभी पूजा-घर में जाता हूँ, मन में जान पड़ता है, मानो कैलास पर आ गया। बीच-बीच में वहाँ जाकर बैठता हूँ और बस आनन्द ही आनन्द! आनन्द से हृदय भर जाता है।" पास ही बैठे एक संन्यासी से पूछा, "तुम पूजा-घर में कब जाते हो?"

संन्यासी—"प्रातःकाल ९-१० बजे और सन्ध्या समय।"

महाराज—"तड़के ही नहीं जाते?"

संन्यासी—"नही महाराज, तड़के तो बिस्तर पर ही बैठकर ध्यान करता हूँ।"

महाराज—"बिस्तर पर बैठकर क्यों? सबेरे उठकर हाथ-मुँह धोकर, पूजा-घर में जाकर ध्यान किया करो। बिस्तर पर क्यों बैठना? यह अच्छा नहीं। हाँ, यदि अन्यत्र कहीं बैठने की जगह न हो, तो बात दूसरी है, तब भले ही बिछौने पर बैठो। बिस्तर पर बैठते ही आलस आता है और नींद आने लगती है। इसका हमें खूब experience (अभिज्ञता) है। बिस्तर और तकिया मानो खीचकर सुला देते हैं। साधारणतया मैं तो बिस्तर पर बैठता ही नही। तड़के यदि देखता हूँ कि अभी पूजा-घर खुला नहीं है, तो थोड़ी देर बिस्तर पर बैठ जाता हूँ; बाद में पूजा-घर खुलते ही वहाँ चला जाता हूँ। कैसा आनन्द आता है! यही तो ध्यान-जप का सर्वोत्तम समय

* स्वामी योगानन्द।

होता है। चारों ओर नीरव, निस्तब्ध, समस्त प्रकृति शान्त रहती है, थोड़ी ही देर में मन ध्यानस्थ हो जाता है। मेरी तो तीन बजे ही नींद टूट जाती है, रात में चाहे कभी भी क्यों न सोऊँ। ठाकुर को देखा है, रात के तीन बजते ही फिर किसी तरह नहीं सो सकते थे। वैसे भी वे बहुत कम सोते थे, एक-दो घण्टा हुआ तो बहुत। उठते ही भगवान का नाम लेना शुरू कर देते थे। कभी ॐकार ध्वनि, तो कभी हाथ से ताली बजाकर माँ का नाम अथवा टहल-टहलकर हरिनाम करते थे। उनके कमरे में हम लोगों में से जो भी रहता, सबको पुकार-कर उठा देते थे। कहते, 'अरे, तुम लोग उठे ? उठो, एक बार उठकर भगवान का नाम लो।' यह कहकर प्रत्येक के पास जा-जाकर उसे उठा देते थे। और उनका तो नाम-गान चलता ही रहता था। कैसा मतवाला भाव रहता था ! कभी-कभी नामोच्चारण करते-करते पास के बरामदे में निकल पड़ते—बालक के समान दिगम्बर होकर; बाहर का कोई ज्ञान नहीं रहता था। कभी-कभी फिर कीर्तन करना शुरू कर देते, और साथ में खोल-करताल बजता था। हम लोग भी उसमें योग देते थे। वे प्रायः नाम-कीर्तन ही अधिक करते थे और बीच-बीच में स्वयं ही टेक लगाते थे, फिर कभी भावावेश में नाचते थे। अहा ! कैसा मनोहर नृत्य ! उस समय मानो बिलकुल ही भिन्न व्यक्ति हों—वे पहचाने ही नहीं जाते थे। अहा ! वह कैसा भाव था !—यह कहकर समझाया नहीं जा सकता। उनका कण्ठ भी बहुत मधुर था—ऐसा मधुर कण्ठ और किसी का नहीं सुना। इस प्रकार सबेरे तक यह चलता रहता। सभी

मतवाले हो जाते थे। केवल नाम और नाम—मानो वैकुण्ठ-धाम हो। हम लोग उनके पास कितने आनन्द में थे!"

ठाकुर की बातें याद कर महापुरुषजी भावमग्न हो गए, अब और बात जैसे बोल ही न पा रहे हों।

बेलुड़ मठ

मंगलवार, १ जनवरी, १९२४

आज पहली जनवरी है। कांकुड़गाछी योगोद्यान में श्रीश्रीठाकुर का 'कल्पतरु' उत्सव है। मठ में भी ठाकुर की विशेष पूजा और भोग आदि का आयोजन हुआ है। प्रातःकाल से ही भक्तों का आना प्रारम्भ हो गया है, विशेषतः छुट्टी का दिन है इसलिए। वे लोग ठाकुर के दर्शन करके महापुरुष महाराज के कमरे में एकत्रित हो रहे हैं। महापुरुषजी भी आनन्दपूर्वक सभी से अनेक प्रकार का वार्तालाप कर रहे हैं। एक भक्त महापुरुषजी को भक्ति-भाव से प्रणाम करके बैठे और बोले, "Happy New Year" (शुभ नव वर्ष)। महापुरुषजी ने हँसते-हँसते कहा, "Happy English New Year (शुभ अंग्रेजी नव वर्ष)। हम लोगों का शुभ नव वर्ष तो प्रथम वैशाख है। आज तो अंग्रेजों का शुभ नव वर्ष है। यह देखो न, डेढ़ सौ वर्ष की अंग्रेजी शिक्षा-दीक्षा के प्रभाव से हम लोगों की मनोवृत्ति कैसी हो गई है। हम लोग अपना वैशिष्ट्य और जातीयत्व खो बैठे हैं। हम लोगों की यह अवस्था केवल पराधीनता के कारण हुई है, ऐसी बात नहीं। वैसे तो हम लोग बहुत समय से पराधीन हैं। मुसलमान लोग आठ-नौ शताब्दियों

तक हम लोगों को अपने अधीन रखकर भी हम लोगों का जातीय वैशिष्टय और संस्कृति नष्ट नहीं कर सके; किन्तु पाश्चात्य सभ्यता की ऐसी संमोहिनी शक्ति है, और उन लोगों ने ऐसी कुशलता से अपनी भाव-धारा का हमारे भीतर प्रचार किया कि हम लोग यह समझ ही न पाए कि हम लोगों की संस्कृति एवं धर्म-विश्वास को जड़ से उखाड़ देना ही उनका उद्देश्य रहा है! और कैसा आश्चर्य कि उसके फलस्वरूप इतने थोड़े दिनों में ही इतनी बड़ी जाति सभी विषयों में अत्यधिक पाश्चात्य भावापन्न हो गई! धीरे-धीरे हम लोगों की विचार-धारा भी आमूल परिवर्तित हो गई है। और सबसे अधिक अनर्थ तो यह हुआ कि समग्र हिन्दू जाति शनैः-शनैः वैदिक धर्म में आस्थाशून्य होती जा रही है। साधारण लोगों की मनोवृत्ति यहाँ तक परिवर्तित हो गई है कि उनके लिए सनातन हिन्दू धर्म में जो कुछ है, वह सभी मिथ्या और काल्पनिक है तथा ईसाई धर्म के पताकाधारी जो कुछ कहते हैं, वह सब ध्रुव सत्य है। उन लोगों का अभिप्राय था क्रमशः समस्त हिन्दू जाति को ईसाई बना डालना; किन्तु भगवदिच्छा से वैसा नहीं हो सका। इस सनातन वैदिक धर्म के नष्ट हो जाने पर समग्र जगत् की आध्यात्मिकता ही नष्ट हो जायगी — इसी लिए तो इस सनातन धर्म की रक्षा करने के लिए भगवान रामकृष्ण-रूप में अवतीर्ण हुए। और भगवान की जिस साकार-उपासना को ईसाई धर्मावलम्बी एवं पाश्चात्य शिक्षित समाज पौत्तलिकता कहकर उपहास करते आ रहे थे, उसी मूर्तिपूजा को लेकर ठाकुर ने अपनी साधना प्रारम्भ की। उनकी सभी भावों की साधना एवं सिद्धि समग्र जगत् को चकित कर रही है — और इसके फल-

स्वरूप आज पाश्चात्य देशों के बड़े-बड़े मनीषी भी भारतीय वैदिक धर्म के प्राधान्य और वैशिष्ट्य को नतमस्तक हो स्वीकार करने लगे हैं। इसकी प्रतिक्रिया यह हुई है कि अन्धानुकरण-प्रिय भारतवासियों की भी दृष्टि ठाकुर के जीवन पर और साथ-साथ अपने धर्म पर पड़ी है। ठाकुर के आने के बाद से ही देश का वातावरण परिवर्तित होने लगा है। भारतवासी जिस आत्मविश्वास को खो चुके थे, वह फिर क्रमशः उनको प्राप्त होने लगा है। ठाकुर की अलौकिक साधना के फलस्वरूप भारत की आत्मशक्ति जाग उठी है। और अब देखना, भारत की दिन-पर-दिन सभी विषयों में अभूतपूर्व उन्नति होगी। स्वामीजी ने कहा है कि धर्म ही भारत का मेरुदण्ड है। यह मेरुदण्ड ही भग्न हो गया था; इसी लिए भारत सब विषयों में बल और ज्ञान रहित हो गया था। ठाकुर ने आकर उस मेरुदण्ड को एक बार पुनः स्वस्थ एवं सबल बना दिया है; अब भारत केवल धर्म में ही नहीं, वरन् सभी विषयों में समग्र जगत् को चकित कर देगा।

"जिस शक्ति के प्रभाव से यह विश्व-ब्रह्माण्ड नियन्त्रित हो रहा है, ठाकुर ने उसी ब्रह्मशक्ति को जागरित कर दिया है। वे जगत् के लिए क्या कर गए हैं—यह बात जगत् के लोग धीरे-धीरे समझेंगे। अहा! हम लोगों का परम सौभाग्य था कि इन साक्षात् भगवत्स्वरूप के साथ हम लोग थे—उनके दर्शन, स्पर्श और सेवा आदि कर पाए! उनके स्पर्श से हम लोगों का जीवन धन्य हो गया है। जिन्हें उनके दर्शन का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ है परन्तु जो उनके भाव का आश्रय कर अपना जीवन गठन कर रहे हैं—उन्हीं को अपने जीवन का

स्या कर जाते थे; किन्तु उनकी सेवा का सम्पूर्ण भार हम
ों ने ही उठाया था। और उनकी सेवा के साथ-साथ चलता
खूब साधन-भजन। ठाकुर भी उस विषय में हम लोगों को
उत्साह देते थे। प्रत्येक को अलग-अलग बुलाकर साधन-
न के सम्बन्ध में उपदेश देते थे, और किसको किस प्रकार
ध्यान और दर्शन आदि होता है, उस सबकी पूछ-ताछ करते
। रात को स्वामीजी धूनी जलाकर, हम लोगों को साथ
कर जप-ध्यान करते थे—कभी-कभी खूब भजन-कीर्तन भी
ता था। पारी बाँधकर ठाकुर की सेवा और जप-ध्यान आदि
सारी रात अत्यन्त आनन्द में कट जाती थी। रात को
ागना पड़ता था, इसलिए दोपहर को भोजन के बाद हम लोग
ुछ देर सो जाते थे। उस दिन भी, खाने-पीने के बाद हम
ोग नीचे बड़े कमरे के पास की छोटी कोठरी में सो रहे थे।
उसी दिन शाम के समय ठाकुर बगीचे में घूमने के लिए पहले-
पहल नीचे उतरे। छुट्टी का दिन था, इसलिए बहुत से भक्त
उस समय बगीचे में उपस्थित थे। ठाकुर को नीचे आते हुए
देखकर भक्त लोग भी आनन्दातिरेक से उनके साथ-साथ चलने
लगे। ठाकुर धीरे-धीरे बगीचे के फाटक की ओर जा रहे थे।
इसी समय गिरीश बाबू ठाकुर के चरणों में गिरकर साष्टांग
प्रणाम कर हाथ जोड़ उनकी स्तुति करने लगे। गिरीश बाबू
की अद्भुत भक्ति-विश्वास भरी वाणी सुनते-सुनते ठाकुर खड़े-
ही-खड़े समाधिस्थ हो गए। भक्तगण उस समय ठाकुर के इस
दिव्य भावावेश को देखकर आनन्द से विभोर हो उच्च स्वर से
'जय रामकृष्ण, जय रामकृष्ण' उच्चारण करने लगे और
ठाकुर को वारम्वार प्रणाम करने लगे। धीरे-धीरे ठाकुर का

मन अर्द्धबाह्य दशा में लौट आया। तब वे कृपादृष्टि से भक्तों की ओर देखते हुए बोले, 'और क्या कहूँ! तुम सबों को चैतन्य हो!' इस वाक्य के कहने के साथ ही भक्तों के प्राणों में एक अनिर्वचनीय आनन्द का स्रोत प्रवाहित होने लगा। वे लोग अत्यन्त उच्च स्वर से 'जय रामकृष्ण, जय रामकृष्ण' कहते हुए ठाकुर को पुनः बारम्बार प्रणाम करने लगे। वे भी इसी अवस्था में एक-एक करके लगभग सभी को 'चैतन्य हो' कहकर स्पर्श करने लगे और इस प्रकार सभी को चैतन्य कर दिया। उनके इस दिव्य स्पर्श से प्रत्येक भक्त को अपने आभ्यन्तर में अद्भुत अनुभूति होने लगी। उस समय कोई-कोई तो ध्यानस्थ हो गए, कोई आनन्द के मारे नृत्य करने लगे, कोई रोने लगे और कोई उन्मत्त के समान जय-नाद करने लगे। वह एक अद्भुत घटना थी। और ठाकुर खड़े होकर आनन्द से वह सब देख रहे थे। इस शोर-गुल से हम लोगों की नींद खुल गई। हम लोग दौड़कर आए तो देखते हैं कि भक्त लोग ठाकुर को घेरकर उन्मत्त के समान व्यवहार कर रहे हैं; और ठाकुर मधुर स्मितमुख से स्नेहपूर्वक भक्तों की ओर देख रहे हैं। जब हम लोग वहाँ पर पहुँचे, उस समय ठाकुर का मन सहज अवस्था में लौट आया था; किन्तु भक्तगण उस समय भी उस आनन्द के नशे में बेसुध थे। बाद में भक्तों से पूछने पर सब घटना मालूम हुई। सबों ने कहा कि ठाकुर के स्पर्श से उन लोगों को एक अपूर्व आध्यात्मिक अनुभूति हुई और उस भाव का प्रभाव दीर्घ काल तक स्थायी रहा। उनके स्पर्श से भला क्यों नहीं होगा? वे स्वयं भगवान जो थे। किन्तु उस दिन ठाकुर ने दो व्यक्तियों का स्पर्श नहीं किया था। उन्होंने कहा

था, 'अभी नहीं, बाद में होगा।' इसी से ज्ञात होता है कि समय आए बिना कुछ भी नही होता। समय के लिए अपेक्षा करनी पड़ती है।"

भक्त—"वे तो, महाराज, इच्छामात्र से ही जीव के मन को भगवन्मुखी कर दे सकते हैं, हृदय को पवित्र कर दे सकते हैं; पर वैसा क्यों नहीं करते? यदि उनकी कृपा साधन-भजन-सापेक्ष है, तो फिर वे अहेतुक कृपासिन्धु कैसे हुए?"

महापुरुषजी—"हाँ, तुम जो कहते हो, ठीक ही है। ऐसा कहना पड़ता है—इसलिए कहा जाता है। किन्तु वास्तविक रूप से वे भजन साधन द्वारा लभ्य नही है। फिर उन्हें 'लभ्य' कहना भी ठीक नहीं, क्योंकि वे तो प्रत्येक जीव का स्वरूप ही है—समस्त प्राणियों की अन्तरात्मा हैं। जो सब आवरण जीव की अन्तर्दृष्टि रुद्ध कर देते है, भजन-साधन केवल उन आवरणों को दूर भर कर देता है। तब जीव अपने स्वरूप को जान लेता है और अन्तरात्मा के साथ एक हो जाता है। वे कृपा करके जीव को अज्ञान-आवरण से मुक्त कर दे रहे है, और तभी तो जीव के प्राणों मे उन्हें पाने की आकांक्षा होती है। यही उनकी कृपा है। फिर भी सब कुछ नियम और क्रमानुसार ही होता है। जिस प्रकार एक शिशु को क्षण मात्र में बड़ा कर देना अस्वाभाविक और व्यर्थ जोर लगाने की चेष्टा मात्र है, ठीक इसी प्रकार यह भी है। देह और मन का क्रमिक विकास होते-होते जिस प्रकार शिशु धीरे-धीरे शैशव, युवा, प्रौढ़ और वृद्ध अवस्थाओं में पहुँचता है, उसी प्रकार जीव के मन में भगवद्भाव के स्फुरण का भी स्तर है, क्रम है। सहज और स्वाभाविक रूप से जो विकास होता है, वही ठीक

है और उसी का फल अच्छा होता है। यह सत्य है कि श्रीभगवान इच्छा मात्र से एक ही दिन में सभी जीवों को मुक्त कर दे सकते हैं, क्योंकि वे सर्वशक्तिमान हैं; पर वे वैसा करते नहीं। एक ही नियम से वे समग्र विश्व-ब्रह्माण्ड को चला रहे हैं, और विशेष कारण न होने से वे नियम का व्यतिक्रम नहीं होने देते। अवश्य ही वे अहेतुक कृपासिन्धु हैं; इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। अपने सृष्ट जीवों के प्रति उनकी कितनी कृपा है, कितनी दया है, यह यदि तुम जरा सा भी जान पाते, तो फिर वे कृपासिन्धु हैं या नहीं यह प्रश्न ही तुम्हारे मन में न आता। यह जो जीवों के दुःख से कातर हो उनके उद्धार के लिए वे स्थूल देह धारण कर जगत् में अवतीर्ण होते हैं—यही तो बड़ा प्रमाण है कि वे कृपासिन्धु हैं। वे तो सर्वदा पूर्ण हैं, उनके लिए पाने या चाहने के लिए कुछ भी नहीं है। फिर भी, वे कृपा के वशीभूत हो जीवोद्धाररूप कर्म में प्रवृत्त होते हैं। उनके हृदय में एकमात्र वृत्ति है कृपा—प्रेम। वे कितने कृपालु हैं यह क्या शब्द द्वारा समझाया जा सकता है? यह तो अनुभव की वस्तु है। मनुष्य तो खेल में मग्न है—उनकी कृपा को कहाँ जानना चाहता है? ठाकुर कहते थे, 'जीव भगवान की ओर यदि एक पग आगे बढ़ने की चेष्टा करे, तो भगवान उसकी ओर दस पग आगे आ जाते हैं।' इतनी अधिक है उनकी दया! उनकी कृपालुता में सन्देह मत करो—उस भाव को मन में आने तक न दो। उन्हें पुकारते जाओ प्रेम के साथ; उनकी कृपा से प्राण और मन भरपूर हो जायँगे। यह सब उपलब्धि क्या एक दिन में होती है या एकदम हो जाती है? क्रमशः सब कुछ होगा, सब कुछ प्राप्त करोगे। हम लोग भी यदि ठाकुर को नहीं देखते, तो

क्या समझ सकते थे कि भगवान की जीवों के ऊपर कितनी जबरदस्त कृपा है? वे कृपा करने के लिए छटपटाते थे—रोते थे। पर उनकी कृपा को आन्तरिक भाव से कौन चाहता है? मनुष्य तो वैषयिक आनन्द में मत्त हो रहा है। जो भगवदानन्द चाहता है, वह पाता भी है।"

बेलुड़ मठ

रविवार, २३ मार्च, १९२४

आज शाम को महापुरुष महाराज के कमरे में बहुत से भक्त लोग आकर बैठे हुए हैं। महापुरुषजी किसी से कुशल-प्रश्न पूछ रहे हैं, तो किसी को प्रश्नोत्तर दे रहे हैं, किन्तु मन जैसे सर्वदा अन्तर्मुख है। लगभग तीन बजे कुछ लोग दक्षिणेश्वर से आकर महापुरुष महाराज के कमरे में आए।

उन्हें देखकर महापुरुष महाराज सानन्द बोल उठे, "अरे आओ, आओ, तुम लोग कहाँ से आ रहे हो?"

भक्तिभाव से प्रणाम कर वे लोग बैठ गए। एक भक्त ने कहा, "हम लोग आज दक्षिणेश्वर गए थे। वहाँ दर्शन आदि कर माँ का प्रसाद पाया। खूब मजे में दिन बीता। ठाकुर का कमरा, पंचवटी, बेल-तला आदि स्थानों को देखकर मन में यही आता रहा कि इन्हीं सब स्थानों में तो ठाकुर ने कितनी साधना की थी।"

महाराज—"सो तो है ही। ठाकुर कोई तीस वर्ष तक वहाँ रहे। उस अवधि में कितने प्रकार के साधन-भजन, कितना भाव, कितना महाभाव वहाँ हुआ है! और जो ठाकुर

का कमरा है, वह क्या किसी से कम है? मेरे मन में आता है जैसे दक्षिणेश्वर ही काशी हो—और अन्यथा कुछ नहीं मालूम पड़ता। इसी लिए बीच-बीच में वहाँ जाता हूँ। सदा जा नहीं पाता—यहाँ से ही रोज प्रणाम कर लेता हूँ। ऐसा स्थान भला क्या और कहीं है? काशी जिस प्रकार इस संसार की नहीं है, उसी प्रकार दक्षिणेश्वर भी।"

भक्त—"महाराज, आप लोग काशीपुर कब आए और किस प्रकार स्वामीजी महाराज ने मठ बनाया, यह सब प्रसंग आपके श्रीमुख से सुनने की बड़ी इच्छा है।"

महापुरुष महाराज थोड़ी देर चुप रहे—मानो मन को धीरे-धीरे बाह्य जगत् की ओर खींच रहे हों। फिर धीरे-धीरे बोले, "जब ठाकुर के गले का रोग बहुत बढ़ गया, तो उनकी चिकित्सा और सेवा आदि में सुविधा की दृष्टि से उन्हें काशीपुर के बगीचे में ले आया गया। हम सब भी उनकी सेवा के लिए वहाँ आ गए। बाद में वहीं ठाकुर ने देह-त्याग किया।"

भक्त—"आप लोग क्या जान सके थे कि ठाकुर ने देह-त्याग कर दिया है?"

महाराज—"नहीं, पहले तो हम लोगों में से कोई भी नहीं समझ पाया। हम लोगों ने समझा कि ठाकुर को समाधि लग गई है, क्योंकि कभी-कभी उनकी ऐसी गंभीर समाधि होती थी कि दो-तीन दिन तक वे उसी अवस्था में पड़े रहते थे। इसी लिए हम लोगों ने इसे भी ठाकुर की समाधि समझ खूब नाम-कीर्तन प्रारम्भ कर दिया। इस प्रकार सारी रात बीत गई, किन्तु अवस्था में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। दूसरे दिन सबेरे ही डाक्टर (महेन्द्र) सरकार को खबर दी गई। उन्होंने

आकर अनेक प्रकार की परीक्षा कर कह दिया कि ठाकुर ने देह छोड़ दी है—जीवन का कोई भी चिह्न नही मिलता। फिर उन्ही ने हमारे ठाकुर का फोटो लेने को कहा। हमने वैसा किया। उसके बाद लगभग २-२॥ बजे काशीपुर श्मशान में उनके शरीर का अन्तिम संस्कार सम्पन्न हुआ।"

भक्त—"जान पड़ता है, उस समय आप लोगों के दिन बड़े strain (श्रम) और कष्ट से बीते होंगे।"

महाराज—"क्यों, strain या कष्ट तो हमें कुछ भी अनुभव नहीं होता था। हम लोग एक भाव में सारा दिन बिता देते थे। ठाकुर की सेवा, ध्यान, जप और तपस्या आदि में इतने मस्त रहते थे कि कभी तो दिन-रात कब बीत गई, इसका होश ही नहीं रहता था। वह भी एक समय बीत गया। ठाकुर के देह-त्याग के बाद प्रायः सभी एक-एक करके घर चले गए, किन्तु मैं और लाटू नही गए। स्वामीजी भी घर चले गए, किन्तु सदा आते-जाते और हाल-चाल लेते रहते थे। श्रीश्रीठाकुर की भस्म आदि रख ली गई थी, उसी की हम लोग रोज पूजा करते थे। हम लोग उस समय भी काशीपुर के बगीचे मे ही थे, क्योंकि महीने का भाड़ा चुकने में कुछ दिन शेष थे। तब स्वामीजी आदि हम सब लोगों ने परामर्श किया कि गंगा-तट पर किसी स्थान पर अस्थियाँ समाहित करनी चाहिए, क्योंकि ठाकुर की ऐसी ही इच्छा थी। किन्तु कोई स्थान न ढूँढ़ा जा सका। इधर राम बाबू ये सब अस्थियाँ काँकुड़गाछी ले जाने की चेष्टा करने लगे। इससे हम सब लोगों के मन मे बहुत दुःख होने लगा, विशेषतः यह सोचकर कि ऐसा होने से ठाकुर की इच्छा पूर्ण नहीं होगी। हमने बलराम बाबू को खबर दी कि वे मिट्टी की

एक कलसी लेकर आएँ। खबर पाते ही वे आ गए। हम लोगों ने उसी रात भस्म में से सब अस्थियाँ अलग कर, उन्हें मिट्टी की कलसी में भर दिया और कलसी के मुँह को मिट्टी से बन्द कर उसे बलराम बाबू के घर भेज दिया। उनके यहाँ नित्य ठाकुर-सेवा होती थी, उसी के साथ ठाकुर की अस्थियाँ भी पूजी जाने लगी। राम बाबू इसी बीच जो शेष भस्म थी, उसे काँकुड़गाछी ले गए। अस्थियाँ बाहर निकालने की बात हमने उनसे कुछ नहीं कही, और उन्हें भी उस समय कुछ पता नहीं चला। उन्हीं अस्थियों की इस समय मठ में नित्य पूजा होती है। स्वामीजी स्वयं अस्थियों के पात्र को अपने सिर पर रखकर मठ में लाए थे। ठाकुर के उस अस्थियोंवाले पात्र को स्वामीजी आत्माराम का पात्र कहते थे। हम भी वही कहते हैं।"

भक्त—"ठाकुर के देह-त्याग के बाद क्या आप लोगों को उनके दर्शन कभी हुए थे?"

महाराज—"श्रीश्रीमाँ ने वृन्दावन जाने के बाद ठाकुर के दर्शन किए थे। जो हो, इसी बीच में भी वृन्दावन चला गया। केवल लाटू और अन्य एक व्यक्ति काशीपुर में थे। स्वामीजी नित्य बलराम बाबू के यहाँ जाते थे और इसी विषय पर विचार-विनिमय हुआ करता था कि हम सब लोगों को संघबद्ध करने के लिए क्या आयोजन किया जाय। एक दिन हठात् सुरेश बाबू आकर स्वामीजी से बोले, 'भाई नरेन,† कल रात में ठाकुर ने मुझे दर्शन दिए और कहा, "सुरेश, मेरे लड़के इधर-उधर *घूमते फिर रहे हैं, तूने उनके लिए क्या किया?" ठाकुर की यह*

† नरेन्द्रनाथ—स्वामी विवेकानन्दजी का पूर्व नाम।

बात सुनकर मेरा चित्त बहुत अशान्त है। तुम सोच-विचारकर कोई एक उपाय करो। तुम जो करोगे, मैं उसी मे राजी हूँ।' स्वामीजी अपनी इच्छा को इस आश्चर्य रूप से पूर्ण होती देखकर बड़े प्रसन्न होकर बोले, 'मैं भी इस विषय पर कुछ दिनों से सोच रहा हूँ। बहुत अच्छा हुआ। अच्छा, पहले एक मकान ठीक कर लिया जाय तो अच्छा हो। इसमे आपकी क्या राय है?' सुरेश बाबू ने कहा कि वे पूर्ण रूप से सहमत हैं। फिर मकान ढूँढ़ा जाने लगा। बराहनगर में दस रुपए महीने पर एक दुमंजिला मकान मिल गया। मकान बहुत पुराना था। मुहल्ले के आदमी उसे 'भूतों का मकान' कहते थे—डर से उस ओर कोई पैर तक न रखता था। हाँ, तो काशीपुर छोड़कर सब लोग यहीं आ गए। मैं भी वृन्दावन से वापस आ गया। स्वामीजी मुझे देखकर बोले, 'तारक‡ दादा, आप आ गए, यह बहुत अच्छा हुआ। मैं आपकी ही बात सोच रहा था। बराहनगर में मकान किराए पर मिल गया है, चलिए वहीं चलें।' हम सब वहीं रहने लगे। उस समय सबके हृदय में तीव्र वैराग्य था। साधन-भजन, पूजा-पाठ खूब चलता था। दिन-रात समान रूप से बीत जाते थे। भूख-प्यास का ज्ञान भी नहीं रहता था। खूब भजन-कीर्तन भी होता था। कभी-कभी तो ऐसा नृत्य होता था कि नीचे जो दरवान रहता था, उसे डर लगता कि कहीं छत गिर न पड़े। खूब आनन्द में हम लोगों के दिन बीत रहे थे। इसी तरह साधन-भजन, त्याग-तपस्या आदि के भीतर से हमारे संघ की नीव पड़ी।"

---

‡ स्वामी शिवानन्दजी का पूर्व नाम।

वेलुड़ मठ

अगस्त, १९२५

रात के लगभग ८॥ बजे हैं। महापुरुष महाराज अपने कमरे में खाट पर बैठे हुए हैं और जामताड़ा आश्रम के एक संन्यासी से बातचीत कर रहे हैं। बोले, "आज ×× की एक चिट्ठी आई है। उसमें उसने अपने विषय में ही अधिक लिखा है। तुमको एक दिन रात में स्टेशन पर पहुँचाने आया था न, फिर रात को दस बजे आश्रम लौटकर दैनिक नियमित जप किए बिना ही खा-पीकर सो रहा। कुछ रात बीत जाने के बाद हठात् उसकी नींद टूट गई और ख्याल आया—अरे, आज जप तो नहीं किया, जप करना तो भूल ही गया; और तब तो उसके मन में बड़ा खेद होने लगा। आश्रम के अन्य साधुओं से उसने पूछा कि जप करना भूल गया, तो इसके लिए क्या करना चाहिए? पर उसे कोई कुछ न बता सका। इससे उसके मन में बहुत अशान्ति है और तीव्र अनुताप हो रहा है। इसी लिए मुझे लिखा है कि क्या करना चाहिए। कोई एक प्रायश्चित्त बताने के लिए कहा है। ठीक है, मैं इसका उत्तर भेज दूँगा।"

एक ब्रह्मचारी—"महाराज, इसका क्या प्रायश्चित्त होगा?"

महाराज—"प्रायश्चित्त और क्या होगा? एक दिन उपवास करना पड़ेगा। सारा दिन उपवास कर जितना हो सकेगा जप करेगा। ऐसा नहीं कि बिलकुल निर्जला व्रत करना होगा; एक-दो पैसे का चना-चबेना खा लेगा। रात में जब

तक हो सकेगा जप करेगा, ताकि कम-से-कम दस हजार हो जाय। इस प्रकार की निष्ठा रहना बहुत अच्छा है।"

एक संन्यासी—"मुझसे भी महाराज (स्वामी ब्रह्मानन्द) ने कहा था, 'तू रोज दस हजार जप कर, अच्छा होगा। कम-से-कम एक साल ऐसा कर।' किन्तु मैं लगातार इस प्रकार जप नहीं कर पाया। आजकल तो आश्रम के काम-काज में इतना व्यस्त रहता हूँ कि जप-ध्यान के लिए थोड़ा भी समय नहीं मिलता।"

महाराज—"ऐसा कभी-कभी होता है कि काम-काज अधिक होने के कारण जप-ध्यान कम हो जाता है। फिर भी, बिलकुल न करना अच्छा नहीं। यह ठीक है कि काम-काज भी उन्हीं का है, उससे भी उनका ही स्मरण-मनन होता है, किन्तु इसी कारण से जप आदि बिल्कुल न करना भी ठीक नहीं। काम-काज भला कितने दिन है? ऐसा समय आएगा, जब और अधिक काम-काज करने की शक्ति नहीं रह जायगी। तब क्या लेकर रहोगे, बताओ? फिर, यदि जप-ध्यान, साधन-भजन साथ-साथ न चलता रहा, तो काम-काज में भाव ही नहीं रहेगा। तब श्रीभगवान के कार्य की जगह अपना काम जान पड़ता है, अहंकार-अभिमान आ जाता है और कार्य से चित्त शुद्ध होने के बजाय अशुद्ध होने लगता है। जीवन का उद्देश्य केवल काम करना ही तो नहीं है। असल में भगवत्प्राप्ति ही जीवन का एकमात्र लक्ष्य है। जो काम उनको भुला दे, वह तो महान् अकर्म हुआ। सौ कामों के बीच भी नियमपूर्वक जप-ध्यान आदि करना पड़ेगा और उसी से ठीक-ठीक चित्त की

प्रसन्नता होगी। तभी मनुष्य कर्म करने का ठीक-ठीक अधिकारी हो सकेगा।"

देवघर
१९२६

विद्यापीठ की नई भूमि में गृह-प्रतिष्ठा के उपलक्ष्य में महापुरुष महाराज बेलुड़मठ से अनेक साधु-ब्रह्मचारियों के साथ देवघर आए। उनके शुभागमन के कारण वहाँ पर नित्य आनन्दोत्सव हुआ करता था। महापुरुषजी के पवित्र सत्संग से सब लोग अपने-अपने प्राणों में एक आध्यात्मिक प्रेरणा का अनुभव कर धन्य हो रहे थे। वे भी इस पवित्र तीर्थ में बड़े आनन्द में थे। एक दिन जब अनेक साधु-ब्रह्मचारी उनके निकट एकत्रित हुए थे, ऐसे अवसर पर एक संन्यासी ने उनसे कहा, "महाराज, अपना भ्रमण-वृत्तान्त कुछ कहने की दया कीजिए, सुनने की बड़ी इच्छा है।" महापुरुषजी मुस्कराते हुए बोले, "उन पुरानी खबरों को सुनकर क्या करोगे? एक समय वह खूब किया गया है; इस समय तो ठाकुर हम लोगों को इस कर्म-वृत्तान्त में खींच लाए हैं। उनके युगधर्म के प्रचार के लिए इसी की आवश्यकता हुई है। इसी लिए अभी इस वृद्धावस्था में भी ठाकुर हमारे द्वारा अपना कुछ-कुछ कार्य करा ले रहे हैं। हम लोगों ने तो सोचा था कि तपस्या करके जीवन बिता देंगे — किया भी था उसी तरह; किन्तु ठाकुर ने वैसा कहाँ करने दिया? देखो न, इतना परिश्रम करने के कारण स्वामीजी का शरीर कितनी अल्प अवस्था में चला गया। वे

तो हिमालय में तपस्या करने कितनी बार गए थे, किन्तु न जाने कौन उन्हें खीचकर हिमालय की गोद से नीचे ले आया। उसके बाद वे राजपूताना आदि अनेक स्थानों में भ्रमण करने लगे, कितने ही राजाओं और महाराजाओं के साथ उन्हें कार्य था। भ्रमण करते-करते वे पोरबन्दर आए, उस समय उस स्टेट का कोई राजा नही था—राज्य में अनेक प्रकार की अव्यवस्थाएँ थी। इसलिए गवर्नमेण्ट ने श्री शकर पांडुरग पण्डित को administrator (कार्य-निर्वाहक) बनाया था। शंकररावजी वड़े विद्वान्, बुद्धिमान, विचक्षण और अत्यन्त सज्जन व्यक्ति थे। उन्होने यूरोप के अनेक स्थानो मे भ्रमण किया था और फ्रेंच, जर्मन आदि भापाओं की भी उन्हे अच्छी जानकारी थी। उनके घर में उनका निजी एक बहुत बड़ा पुस्तकालय था; वे स्वयं भी खूब पढ़ा-लिखा करते थे। उनके पुस्तकालय को देख-कर स्वामीजी आकर्पित हो गए। वार्तालाप के प्रसग में स्वामीजी ने शकररावजी से अपनी इच्छा प्रकट की, जिसे सुनकर वे वड़ी प्रसन्नतापूर्वक बोले, 'आप जब तक चाहे, यहाँ रहकर पढ़े।' तब स्वामीजी कुछ दिन वहाँ रह गए। शंकररावजी संस्कृत बड़ी अच्छी तरह जानते थे। एक दिन उन्होंने स्वामीजी से कहा, 'देखिए, स्वामीजी, पहले शास्त्र आदि पढ़कर मन में होता था कि इनके भीतर कुछ भी सत्य नही हैं, ये सब शास्त्रकारों के मस्तिप्क की कोरी कल्पनाएँ हैं—जिन्हें जैसी इच्छा हुई, वे वैसा ही लिख गए। किन्तु अभी आपको देखकर और आपका संग कर मेरी वह धारणा बदल गई है; इस समय तो मन में यही हो रहा है कि हमारे धर्मग्रन्थ आदि सभी ठीक हैं। मैने पाश्चात्य देशों में दे— है कि उन देशों के

चिन्तनशील व्यक्ति हम लोगों के हिन्दू दर्शन और शास्त्र आदि के सम्बन्ध में जानने के लिए विशेष उत्सुक हैं। किन्तु उन लोगों को अभी तक ऐसा कोई व्यक्ति नहीं मिला, जो इन शास्त्रों की ठीक-ठीक व्याख्या कर उन्हें समझा सके। आप यदि उस देश में जाकर उन लोगों को हमारे वैदिक धर्म की व्याख्या करके समझावें, तो बहुत बड़ा कार्य होगा।' यह देखो, किस प्रकार उनके (ठाकुर के) कार्य की सूचना होती हैं। यह सुनकर स्वामीजी बोले, 'यह तो अच्छा है! मैं ठहरा सन्यासी, मेरे लिए यह देश और वह देश क्या? आवश्यकता पड़ने पर जाऊँगा।' तब शंकररावजी ने कहा, 'उस देश में अभिजात सम्प्रदाय के साथ मेल-जोल करने के लिए फरासीसी भाषा जानने की आवश्यकता है। आप फरासीसी सीखिए—मैं आपको सिखला दूँगा।' तब स्वामीजी ने अच्छी तरह फरासीसी भाषा सीख ली। मैं उस समय आलमबाजार मठ में रहता था। स्वामीजी का उसके पहले लगभग दो वर्ष तक कोई पता न था। वे कहाँ हैं, यह कोई नहीं जानता था—वे आलमबाजार मठ को भी इस बीच कभी देख नहीं गए। अचानक एक दिन चार पन्नों की एक लम्बी चिट्ठी आई। किस भाषा में चिट्ठी लिखी हुई थी, यह हम लोग कुछ भी न समझ सके। शशी महाराज (स्वामी रामकृष्णानन्द) और सारदा (स्वामी त्रिगुणातीतानन्द) साधारण फरासीसी जानते थे। वे दोनों उसे बहुत देर तक उलट-पुलट कर बोले, 'यह तो नरेन्द्र की चिट्ठी मालूम होती है—फरासीसी भाषा में लिखी है।' तब उस चिट्ठी को लेकर कलकत्ता में अघोर चटर्जी के पास जाना पड़ा। वे हैदराबाद स्टेट कालेज के प्रिन्सिपल थे—खूब अच्छी फरासीसी

जानते थे। उन्होंने उस पत्र को पढ़कर हम लोगों को बँगला में समझा दिया। तब स्वामीजी की खबर मिली, और यह भी मालूम हुआ कि उन्होंने फरासीसी भाषा सीखी है। हाँ, तो मैं कह रहा था कि स्वामीजी ने जप-ध्यान और तपस्या आदि में जीवन बिता देने का निश्चय किया था; किन्तु जो महाशक्ति रामकृष्ण-रूप में अवतीर्ण हुई थी, उन्होंने उनको वैसा करने नहीं दिया—उनको जगत् के उद्धार के लिए युगधर्म-प्रचाररूप कार्य में नियोजित किया। वे तो थे योगिराज, इच्छा करते ही समाधिस्थ होकर बैठे रह सकते थे; किन्तु ठाकुर ने उनको तीव्र कर्म के भीतर लाकर डाल दिया। तुम सब लोगों को भी उन्होंने अपने युगधर्म की प्रतिष्ठा के सहायक-रूप में नियोजित किया है। जिसको-जिसको वे लाए हैं, वे सब धन्य हैं।"

एक संन्यासी—"महाराज, तपस्या और साधन-भजन का भी तो प्रयोजन है? आप लोगों ने कितना किया है!"

महापुरुषजी—"हाँ, भजन-साधन की तो अत्यन्त आवश्यकता है—तपस्या भी चाहिए। जीवन की गति को भगवन्मुखी करके रखने का एकमात्र उपाय है भजन-साधन; किन्तु उस भजन-साधन और तपस्या का क्या एक ही प्रकार है? यह जो तुम लोग इतना कष्ट सहन करके, कितनी प्रतिकूल अवस्थाओं के साथ संग्राम करके भगवान का कार्य कर रहे हो, यह भी तो एक प्रकार की तपस्या है। सतत इस भाव को अपने मन में जागरित रखो कि जो कुछ कार्य करते हो, सब उन्हीं का है, सब उन्हीं की सेवा है—तुम लोगों का कुछ भी नहीं है। यह भी एक प्रकार की साधना है। उन्होंने कृपा करके तुम लोगों को अपने कार्य का यन्त्रस्वरूप बनाया है। इससे तुम लोगों का

जीवन धन्य हो गया है। यह अच्छी तरह जान लेना कि उनके युगधर्म-संस्थापन का कार्य किसी व्यक्तिविशेष के लिए रुका नहीं रहेगा। जिसका भाग्य अच्छा है, वही उनका कार्य कर सकता है। बहुत से लोगों को देखा है, जिनमें बहुत से गुण थे; किन्तु ठाकुर ने उन्हें ग्रहण नहीं किया। और किसी-किसी व्यक्ति को ऊपरी तौर से देखने पर मन में होता है, यह तो अकर्मण्य है, किसी योग्य नहीं, किन्तु ठाकुर उसके द्वारा अद्भुत रूप से कितने ही कार्य करा लेते हैं। जो उनका कार्य करने का सुयोग पाता है, वह धन्य हो जाता है। इसी लिए तो स्वामीजी कहते थे कि वे (ठाकुर) इच्छा करते ही लाखों विवेकानन्द तैयार कर सकते हैं। इस भाव को मन में प्रतिक्षण बनाए रखना होगा कि उनका कार्य करके हम लोगों का जीवन सार्थक हो गया। भगवान का कार्य करने पर कर्मियों को भक्ति, विश्वास क्रमशः होगा ही — यह निश्चय समझो। जो पहाड़ और जंगलों में घूम-घूमकर मधुकरी करके साधन-भजन करते हैं, उनकी तपस्या की अपेक्षा तुम लोग जो कर रहे हो, वह किसी अंश में कम नहीं है। 'आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च' यही युगधर्म है।"

एक संन्यासी —"काम-काज करते-करते कभी-कभी खूब अहंकार, अभिमान आदि आ जाता है।"

महापुरुषजी —"जब तक यह भाव बना रहेगा कि तुम भगवान का कार्य कर रहे हो, तब तक अहंकार आदि नहीं आ सकता। भाव ठीक रहने पर कोई भय नहीं। काम-काज के साथ-साथ नियमित जप-ध्यान भी करना चाहिए — उससे साम्यभाव ठीक बना रहता है। यदि थोड़ा-बहुत अहंकार-अभिमान

आ भी जाय, तो कोई क्षति नहीं—वे पुनः घटना-चक्र में डालकर वह सब दूर कर देंगे। अहंकार-अभिमान की जो बात कर रहे हो, वह तो जो तपस्या करते हैं, उनको भी हो सकता है कि मैं एक बहुत बड़ा तपस्वी हूँ। वास्तविक बात क्या है, जानते हो? भाव शुद्ध होना चाहिए। मन में यदि कपट भाव आ जाय, तो न ठीक-ठीक तपस्या होगी, न ठीक-ठीक कार्य। मन और मुख को एक करके चाहे कार्य करो, चाहे तपस्या, किसी भी अवस्था में अहंकार, अभिमान नहीं आ सकेगा। उद्देश्य की ओर सतत दृष्टि रखनी चाहिए, ताकि जीवन का लक्ष्य विस्मृत न होने पाए।"

उटकमंड
१९२६

पूज्यपाद महापुरुष महाराज मद्रास से ४ जून को नीलगिरि पर्वत पर आए और वहाँ दक्षिण के प्रसिद्ध तीर्थ बालाजी (तिरुपति) के महन्त के ग्रीष्म-निवास 'श्रीहातिरामजी मठ' नामक भवन में ठहरे। उटकमंड की जलवायु अत्यन्त सुन्दर है और उसका प्राकृतिक दृश्य भी बड़ा ही मनोहर है। उसकी ऊँचाई समुद्र से लगभग आठ हजार फुट है। वहाँ मद्रास के गवर्नर का ग्रीष्म-निवास है। इसके पूर्व सन् १९२४ में, मई महीने के प्रथम भाग में महापुरुषजी एक बार और नीलगिरि पर्वत पर आए थे और उटकमंड से दस-बारह मील नीचे कुनूर नामक स्थान में कुछ महीने रहे थे। उस अवसर पर उन्होंने उटकमंड में श्रीरामकृष्ण आश्रम का शिलान्यास किया था।

उत्तराखंड में आने के बाद से महापुरुषजी अधिकांश समय एकाकी अपने भाव में मग्न रहते थे—लोगों का संग बहुधा पसन्द नहीं करते थे। परन्तु स्थानीय भक्तगण रोज अपराह्न काल में उनके पास आते और विभिन्न धर्मप्रसंगादि श्रवण कर तथा उनका पवित्र आशीर्वाद प्राप्त कर तृप्त हृदय से लौट जाते। उनके भगवद्भाव से आकृष्ट होकर भक्त-संख्या धीरे-धीरे बढ़ने लगी। भक्त-संग के समय को छोड़कर अन्य समय वे आत्माराम होकर मानो 'चिदानन्द सिन्धुनीर' में डूबे रहते थे। बहिर्जगत् पर से उनका मन दिन-पर-दिन हटता जा रहा था और शनैः-शनैः वे अधिक गम्भीर तथा अन्तर्मुख होते जा रहे थे। साधारण रूप से बातचीत या मिलना-जुलना जो कुछ होता था, सो केवल सरलमति पहाड़ी बालक-बालिकाओं के साथ। नित्य सायं प्रातः जब वे अकेले टहलने के लिए जाते, तो अपने साथ कुछ पैसे और कुछ खाने की चीज लेते जाते। रास्ते में पैसों तथा उन सब चीजों को वे उन छोटे-छोटे पहाड़ी बालक-बालिकाओं के बीच बाँटते जाते, और उन बच्चों के साथ इस प्रकार सरल भाव से घुल-मिल जाते, मानो वे उनके समवयस्क हों।

'श्रीहातिरामजी मठ' में अपने कमरे में जब वे एकाकी बैठे रहते, तब वे अधिकांश समय मुद्रितनयन अथवा शून्यदृष्टि से देखते रहते थे, मानो किसी अतीन्द्रिय राज्य में उनका मन विचरण कर रहा हो। उस समय उनके पास जाने में भय लगता था। कभी-कभी वे यह भी कहा करते थे कि समग्र मठ और मिशन के अध्यक्ष आदि का दायित्व छोड़-छाड़कर इस नीलगिरि पर्वत की गम्भीर नीरवता के बीच ही अपने जीवन के

अवशिष्ट दिन काट देंगे। ऐसा प्रतीत होता था मानो किसी से कोई सम्बन्ध ही न हो, सर्वत्र निर्लिप्त भाव।

एक दिन सवेरे टहलकर लौटने के बाद वे अपने कमरे में चुपचाप बैठे हुए थे। काँच से घिरी हुई एक विशाल खिड़की की ओर उनका मुख था—मानो उनकी दृष्टि तरंगाकार नील पर्वतमाला पर बँधी हुई हो। एक सेवक ने कमरे में प्रवेश करते ही, उनको अत्यन्त उदास-से बैठे देखकर सशंकित हो पूछा, "आपका शरीर स्वस्थ तो है, महाराज ?" ऐसा मालूम हुआ कि सेवक के प्रश्न से उनकी विचार-धारा को बाधा पहुँचने पर भी वह प्रश्न उनके कानों तक नहीं पहुँच सका। वे अपनी उस विचार-धारा को ही भाषा द्वारा कुछ प्रकट करते हुए बोले, "देखो, इस स्थान का आध्यात्मिक वातावरण अत्यन्त सुन्दर है। मन अपने आप ही असीम की ओर खिंचता चला जाता है। यहाँ पर इतना उच्च आध्यात्मिक भाव होगा, ऐसी धारणा मुझे थी ही नहीं। अभी जैसे-जैसे दिन बीतते जा रहे हैं, उतनी ही अधिकाधिक आश्चर्यमयी घटनाएँ देखकर मैं मुग्ध होता जा रहा हूँ; और सोच रहा हूँ ठाकुर की दया की बात। वे कृपा करके मुझे इन सभी दिव्य अनुभूतियों का आनन्द देनेवाले थे, इसी लिए शायद वे मुझे यहाँ ले आए हैं। बहुत वर्ष पहले जब मैं हिमालय में था, उस समय ठीक इसी प्रकार का अनुभव होता था। मन की सहज गति ध्यान की ओर ही रहती है। अपने आप ही मन स्थिर और शान्त हो जाता है। जोर लगाकर मन को नीचे लाना पड़ता है। इस स्थान पर प्राचीन काल में अवश्य ही अनेक ऋषि-मुनियों ने तपस्या की थी। इसी लिए तो इस समय भी यहाँ पर भाव घनीभूत होकर विद्यमान है। यह स्थान

तपस्या के लिए अत्यन्त अनुकूल है। उस दिन चि×× ने कहा भी था कि यहाँ के जंगल में अनेक प्रकार के कन्द-मूल तथा फल हैं। मालूम होता है ऋषि-मुनि लोग इन्ही सब कन्द-मूल-फलों को खाकर यहाँ तपस्या किया करते थे।"

थोड़ी देर चुप रहकर उन्होंने फिर कहा, "उस दिन इसी प्रकार इस नील पर्वतश्रेणी की ओर देखता हुआ चुपचाप बैठा था; देखता हूँ कि इस शरीर से एक व्यक्ति बाहर निकलकर धीरे-धीरे समस्त विश्व मे व्याप्त हो गया।" और इतना कहकर वे बिलकुल चुप हो गए। बहुत देर के बाद दीर्घ नि.श्वास छोड़ते हुए बोले, "ठाकुर ही मेरे परमात्मा हैं, वे ही इस विराट् विश्व-ब्रह्माण्ड में व्याप्त होकर रहते हैं—'पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि।'"*

चुपचाप थोड़ी देर तक मुग्ध होकर प्रतीक्षा करके सेवक ने हाथ जोड़कर कहा, "हम लोगों को क्या यह सब अनुभूति नहीं होगी, महाराज? यहाँ के आध्यात्मिक वातावरण की क्या विशेषता है, सो तो महाराज, मैं कुछ भी नहीं समझ पा रहा हूँ।"

महापुरुषजी—"देखो बच्चा, अनुभूति करा देने के मालिक एकमात्र वे ही हैं। उनका आश्रय लेकर रहो, उनके पास रो-रोकर प्रार्थना करो, जब जो आवश्यकता होगी, वे ही कृपा करके सब पूर्ण कर देंगे। मन के प्रभु तो वे ही परमात्मारूपी ठाकुर हैं। वे यदि दया करके मन की गति को थोड़ी सी घुमा दें, तो बस मदोन्मत्त हाथी के समान अशान्त मन भी शान्त एवं समाधिस्थ हो जाता है—बिलकुल निर्विषय हो जाता है। मन जब तक

* ऋग्वेद—१०।९०

अत्यन्त सूक्ष्म नहीं हो जाता, तब तक आध्यात्मिक भाव का अनुभव भला कैसे होगा? और एक ही दिन मे क्या मन निर्विषय हो जाता है? बहुत साधन-भजन की आवश्यकता होती है। मन जब अत्यन्त सूक्ष्म हो जाता है और उच्च भूमि पर आरूढ़ होता है, तभी इन सब सूक्ष्म विषयों की अनुभूति होना सम्भव है। मन के शुद्ध होने पर ही उसमें आध्यात्मिक भाव स्पन्दित होगा। मन जितना ही उच्च भूमि में आरूढ़ होगा, उतना ही उस मन मे उच्च-उच्च आध्यात्मिक भाव प्रकटित होंगे। सार बात है— उनके पादपद्मों में भक्ति-विश्वास का लाभ करना। यह यदि मिला, तो जानो सब कुछ मिल गया।"

उटकमंड में महापुरुषजी के पधारने का सवाद चारो ओर धीरे-धीरे फैल गया और मद्रास प्रान्त के अनेक स्थानो से अनेक भक्त उनका पवित्र सत्संग तथा कृपा प्राप्त करने के उद्देश्य से वहाँ उपस्थित होने लगे। और सभी नव आध्यात्मिक प्रेरणा और आलोक पाकर परिपूर्ण हृदय से लौटने लगे। मलाबार से जो भक्तों का दल महापुरुष महाराज की कृपा का लाभ कर कृतार्थ हुआ था, उसमें से एक ने विदा लेते हुए महापुरुष महाराज से आशीर्वाद मांगते हुए कहा," ठाकुर के दर्शन का सौभाग्य तो मुझे मिला नही, आप ही मेरे लिए ठाकुर हैं—आप ही मेरी परमगति हैं।" महापुरुषजी यह सुनकर स्नेहपूर्वक बोले, "यह तुम क्या कहते हो? सबों की परमगति वे ही हैं—वे ही प्रभु हैं। ठाकुर का 'वचनामृत' तो पढ़ा है न? वे कहते थे—समुद्र की ही तरगें हैं, तरगों का समुद्र नही। मै तो केवल उनका चरणाश्रित दास हूँ। गीता मे श्रीभगवान ने कहा है—

गतिर्भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत् ।
प्रभवः प्रलयः स्थानं निधानं बीजमव्ययम् ॥*

अर्थात् श्रीभगवान ही सबों की एकमात्र गति हैं, भर्ता हैं, प्रभु साक्षी हैं, आश्रय हैं, रक्षक और सुहृत् हैं; वे सृष्टि, स्थिति अ लय के कर्ता हैं, सबों के आधार एवं संसार के अव्यय मूल है सब कुछ वे भगवान ही हैं। तुमने अपने पूर्वजन्मार्जित अने सुकृतियों के फलस्वरूप युगावतार श्रीरामकृष्ण का आश्रय प्राप्त किया है। और उनके एक नगण्य सेवक ने उनके श्रीचरणों तुम्हें समर्पित कर दिया है। भगवान के श्रीचरणों में समर्पि नव-जीवन लाभ कर तुम धन्य हो गए हो। आचार्य शंक ने कहा है—

दुर्लभं त्रयमेवैतद्देवानुग्रहहेतुकम् ।
मनुष्यत्वं मुमुक्षुत्वं महापुरुषसंश्रयः ॥†

तीन चीजें सचमुच ही दुर्लभ हैं, भगवान की कृपा से ही वे प्राप्त होती हैं। जैसे—मनुष्य-जन्म, मुक्ति के लिए तीव्र आकांक्षा और महापुरुष का अर्थात् ब्रह्मविद् गुरु का आश्रय-लाभ। दैवकृपा से तुम इन तीनों दुर्लभ संपत्तियों के अधिकारी हुए हो; अब उनके प्रेम के सागर में निमग्न हो जाओ; अमर हो जाओगे। वैष्णव ग्रन्थ में एक अत्यन्त सुन्दर पद है—

'गुरु कृष्ण वैष्णव तीनों की दया हुई ।
एक की दया बिना जीव की दुर्दशा हुई ॥'

भगवान की कृपा हुई, गुरु की कृपा हुई और वैष्णव अर्थात् जो विष्णु को जानते हैं, वैसे परम भक्त की भी कृपा हुई; किन्तु

* गीता—९।१८
† विवेकचूडामणि — ३

एक की दया अर्थात् अपनी स्वयं की चेष्टा बिना सभी कुछ वृथा हो गया—जीव मुक्त नहीं हो सका। तुम्हारे जीवन में भी सभी प्रकार की सुविधाएँ प्राप्त हुई हैं। अभी जो तुमने प्राप्त किया है, उसे लेकर साधन-भजन में निमग्न हो जाओ। अमृतत्व का लाभ करो—अमर हो जाओ। इस जन्म-मृत्यु की पहेली में फिर नहीं उलझना होगा।"

भक्त—"आप आशीर्वाद दीजिए, जिससे साधन-भजन में निमग्न हो सकूँ और इस संसार-जाल में बद्ध न हो जाऊँ।"

महापुरुषजी—"आशीर्वाद देता हूँ, इसी लिए तो तुमसे इतना कह रहा हूँ। हृदय खोलकर आशीर्वाद देता हूँ—तुम्हारा समग्र मन-प्राण श्रीगुरु महाराज ‡ के चरणों में ध्यान-मग्न हो जाय। मेरे पास आशीर्वाद छोड़कर और कुछ भी नहीं है, बच्चा! कोई यदि भगवान-लाभ करना चाहता है, यहाँ तक कि उस ओर बढ़ने की चेष्टा भी करता है, तो इतना देखने से ही मेरे प्राणों में कितना आनन्द होता है, कैसे बतलाऊँ? जो लोग भव-बन्धन से मुक्त होना चाहते हैं और उसके लिए प्राणपण से चेष्टा करते हैं, वे हम लोगों के परम प्रिय हैं। ठाकुर आए थे जीवों को मुक्ति देने के लिए। हम लोग भी उनके चरणाश्रित दास हैं, युग-युग से उन्हीं के भृत्य हैं। जीवों को भगवन्मुखी करना, उनकी ओर बढ़ने में सहायता करना, यही हम लोगों के जीवन का एकमात्र व्रत है। इसी लिए तो ठाकुर हम लोगों को अपने साथ लाए हैं और अभी भी जगत् में रखा है। जीवन की अन्तिम घड़ी तक हम लोग भी लोगों को यही सिखलाते रहेंगे—किस प्रकार भगवान मिलते हैं।

‡ भगवान श्रीरामकृष्ण देव।

"यह संसार अनित्य है, दो दिन का है। कैसी विडम
है! तो भी इस क्षणभंगुर जीवन को लेकर, इस अनित्य सं
के क्षणिक सुख में मत्त होकर मनुष्य जीवन का लक्ष्य विल
भूल जाता है! यही है भुवनमोहिनी माया की लीला!
बच्चा, तुम अभी भी युवक हो, प्रभु की कृपा से तुम्हारे
पर अभी भी संसार की छाप नहीं पड़ी है। तुम्हें सार
बतलाता हूँ, जो हम लोगों के हृदय की बात है। त्याग
बिना कुछ भी नहीं होने का। इसी लिए तो उपनिषद् क
है—'त्यागेनैकेऽमृतत्वमानशुः।' * एकमात्र त्याग के द्वारा
अमृतत्व लाभ होता है। योग और भोग एक साथ नहीं
सकता। सांसारिक भोग-सुख छोड़े बिना उस ब्रह्मानन्द
आस्वाद पाना असम्भव है। और यह संसार क्या है, सो
ठाकुर अत्यन्त सरल वाणी में कह गए हैं—कामिनी औ
काचन—बस यही हुआ संसार। केवल बाह्य त्याग करने
नहीं होगा; मन में से कामिनी-कांचन-भोग की आसक्ति
भी त्याग करना होगा। तुलसीदास ने भी कहा है—'ज
काम तहँ राम नहिं।'—जहाँ पर काम है, वहाँ पर राम नहीं
अर्थात् भगवान को पाने के लिए समस्त सांसारिक भोग
वासनाओं को छोड़ देना होगा।"

श्रीरामकृष्ण आश्रम, बम्बई

मंगलवार, १५ जनवरी, १९२७

स्थानीय साधु-भक्तों के आग्रह से आज कई दिन हुए

* नारायण उपनिषद्—२।१२

महापुरुष महाराज मद्रास से बम्बई आए हैं। अपने बीच उन्हे पाकर सभी बड़े प्रसन्न हैं। नित्यप्रति खूब ईश्वर-प्रसंग और भजन-कीर्तन आदि होता है, मानो आनन्द का समुद्र उमड़ा हो। इसके पहले एक बार सन् १९२४ में भी महापुरुष महाराज बम्बई आए थे। उस समय आश्रम किराए के मकान में था। उसी वर्ष उन्होने श्रीश्रीठाकुर का नाम लेकर नई जमीन में आश्रम की नींव रखी थी। तीन वर्ष में ही ठाकुर का मन्दिर और गृह आदि बन गए। इस समय महापुरुष महाराज इसी आश्रम में निवास कर रहे हैं।

माघ का महीना है। सर्दी पड़ रही है। कुछ देर बाद धूप निकलने पर महापुरुष महाराज घूमने निकल जाते हैं और समुद्र की ओर जुहू आदि स्थानों से घूम आते हैं। किसी दिन समुद्र के किनारे माझियों द्वारा प्रतिष्ठित शिवमन्दिर का भी दर्शन करने चले जाते हैं। माझीटोला के आबालवृद्धवनिता सभी 'बूढ़े' बाबा को पाकर बड़े प्रसन्न होते हैं। उन लोगों की कितनी भक्ति है!

आज प्रातःकाल महापुरुष महाराज अपने कमरे में बैठे हुए हैं। इसी समय आश्रम के एक सन्यासी आए और उन्हें प्रणाम कर वहाँ बैठ गए। महापुरुषजी उन्हे लक्ष्य कर बाहर की दो-एक संस्थाओं के बारे में प्रसग चलने पर बोले, "बच्चा, ये सब बातें होना बहुत स्वाभाविक है। यह सब देख-सुनकर ही तो लोग खरे सत्य को जान पाएँगे। जो लोग ठीक-ठीक सत्यान्वेषी हैं, वे सत्य का आश्रय लेकर ही रहेंगे। 'सत्यमेव जयति नानृतम्' *(सदा सत्य की ही जीत होती है, असत्य की नही)।

* मुण्डकोपनिषद् — ३।१।६

सत्य की ही जय होगी। और जो असत्य या कृत्रिम अथव बनावटी या जाली है, वह सत्य की हवा से ही उड़ जायगा। य निश्चय जान लो कि जो यथार्थतः सत्य वस्तु प्राप्त करना चाह हैं, उन्हें भगवान ठीक सत्य पथ पर ले जावेंगे। उन्हें कोई भ नही।" इसके बाद श्रीश्रीठाकुर का प्रसंग चलने पर एक संन्यासं ने पूछा, "अच्छा महाराज, आप जब उन्हें देखते थे, तो वे आपक क्या जान पड़ते थे?"

महाराज—"हम लोग जब उनके पास जाते थे, तब वे अवतार हैं या नहीं, यह सब विचार ही कभी मन में नहीं उठत था। अथवा वे समग्र जगत् में ऐसा कोई एक अलौकिक कार्य कर जाएँगे, यह भी कभी मन में नहीं उठा। उस समय भला यह कौन जानता था कि इस साढ़े तीन हाथ के मनुष्य को लेकर सारी दुनिया में इतनी धूमधाम मच जायगी? वे हम लोगों से स्नेह करते थे। और उस स्नेह के आकर्षण से ही हम लोग उनके पास जाते थे। ठाकुर के स्नेह की बात भला कैसे कहूँ? वह एक अनिर्वचनीय स्नेह था। बचपन में तो केवल माँ-बाप के वात्सल्य-प्रेम को ही जाना था, और उससे बढ़कर भी कोई स्नेह हो सकता है, यह धारणा तक न थी। किन्तु ठाकुर के पास आकर जब उनका स्नेह मिला, तो माँ-बाप का स्नेह अत्यन्त तुच्छ और अकिं-चन जान पड़ा। उनके पास आकर जान पड़ता था, मानो ठीक अपनी जगह आ पहुँचा हूँ—इतने दिन मानो इधर-उधर घूमता-फिरता ही रहा। ठाकुर के पास आकर मुझे तो ऐसा ही जान पड़ता था। दूसरों को कैसा अनुभव होता था, यह नहीं कह सकता। ठाकुर ने भी प्रथम दर्शन से ही मुझे खूब अपना बनाकर ले लिया था। एक दिन वे बोले, 'देख, यहाँ कितने ही लोग आते

है, किन्तु तुम्हारा मकान कहाँ है, किसके लड़के हो, ये बातें मैं किसी से कभी नहीं पूछता, कभी जानने की इच्छा भी नहीं होती। पर तुझको पहले-पहल देखने पर ही मुझे ऐसा लगा कि तू यहीं का है; और तेरा घर कहाँ है, तेरे बाप का नाम क्या है—यह सब जानने की भी इच्छा हो रही है। बता तो भला, ऐसा क्यों हो रहा है? अच्छा, तेरा घर कहाँ पर है? और तेरे बाप का क्या नाम है?' मैंने कहा, 'मेरा घर बारासात में है और पिताजी का नाम रामकन्हाई घोषाल है।' यह सुनकर ठाकुर बोले, 'अरे, तू रामकन्हाई घोषाल का लड़का है? तभी तो सोचता हूँ, माँ ने तेरे घर की बात पूछने की इच्छा क्यों उत्पन्न की। तेरे बाप को तो मैं खूब जानता हूँ। वे तो रानी रासमणि के घर के मुख्तार हैं। वे लोग उनकी खूब खातिर और आदर करते हैं। उनके यहाँ आने पर अलग रहने, खाने-पीने, नौकर-चाकर आदि का सब बन्दोबस्त कर देते हैं। वे तो बड़े साधक भी हैं। यहाँ आकर गंगास्नान कर, लाल रेशम का कपड़ा पहनकर माँ के मन्दिर में आते थे। उस समय जान पड़ता था मानो साक्षात् भैरव हों—वैसा ही लम्बा-चौड़ा चेहरा, वैसा ही गौरवर्ण—वक्षस्थल मानो सदा लाल ही हुआ रहता था। माँ के मन्दिर में बैठकर खूब ध्यान करते थे। उनके साथ एक गायक भी रहता था। वह पीछे बैठकर देह-तत्त्व और श्यामाविषयक अनेक गाने गाता और तेरे पिता ध्यानमग्न हो जाते—नेत्रों से अविरल अश्रुधारा बहा करती। जब ध्यान कर मन्दिर से बाहर आते, तो सारा मुख लाल हो जाता था, उनके सामने आने में लोगों को डर लगता था। मेरा तो उस समय खूब गात्र-दाह होता था—सारे शरीर में असह्य ज्वाला-सी होती थी। उनको देखकर मैंने एक दिन

७

पूछा, "क्यों जी, तुम तो माँ को पुकारते हो और मैं भी पुकारता हूँ। थोड़ा ध्यान भी होता है। किन्तु मेरा शरीर ऐसा जलता क्यों है, इसका क्या कारण है, बता सकोगे? देखो, (शरीर दिखाकर) ऐसा गात्र-दाह है कि रोंगटे भी जल गए हैं। कभी-कभी बड़ा असह्य होता है।" तब तेरे पिताजी ने मुझसे इष्ट-कवच धारण करने के लिए कहा। आश्चर्य, इस कवच को धारण करने पर गात्र-दाह एकदम कम हो गया! उनसे एक बार आने को कहना तो।' मैं उस समय कलकत्ते में ही रहता था, बीच-बीच में घर चला जाता था। पिताजी से ठाकुर की बात कहने पर वे बड़े प्रसन्न हुए और एक बार आकर दर्शन भी कर गए थे। ठाकुर ने एक बार और भी कहा था, 'तेरे पिता का साधन सकाम था। उस साधन के कारण ही उन्हें इतना रुपया मिला था और उन्होंने इतना सद्व्यय भी किया था।'"*

* बाद में वे जब श्रीश्रीठाकुर के दर्शनार्थ आए, तो ठाकुर उन्हें देखकर बहुत आनन्दित हुए और भावमग्न होकर उन्होंने एक पैर उनके शरीर पर रख दिया। उसी अवस्था में शायद घोपालजी ने पूर्ववत् आर्थिक स्थिति होने की प्रार्थना की। ठाकुर इस पर बोले, 'माँ की इच्छा हुई, तो ऐसा ही होगा।'

साधुजन की सेवा, दु:खी और असहाय की अकातर भाव से सहायता और सर्वोपरि निर्धन छात्रों का भरण-पोषण तथा पठन-पाठन की व्यवस्था करके घोपालजी अपने उपार्जित धन का सदुपयोग करते थे। कभी-कभी वे २०-२५ छात्रों को अपने घर पर रखकर उनके भोजन आदि की व्यवस्था करके उनके स्कूल में अध्ययन का पूरा प्रबन्ध करते थे। बाद में डिप्टी कलक्टर के पद पर नियुक्त होने से उनकी आय कम हो गई। तब वे पहले के समान खुले हाथ दान नहीं कर पाते थे। इस कारण वे विशेष दु:ख अनुभव करते थे। बाद में वे कूचविहार स्टेट के सहायक दीवान पद पर नियुक्त हुए थे।

महापुरुष महाराज अपने बाल्यकाल की बातें चलने पर (क)हने लगे, "मैं उस समय बहुत छोटा था। विशेष कुछ स्मरण (न)हीं है। फिर भी इतना याद आता है कि पिताजी बहुत से (ल)ोगों को खिलाते-पिलाते थे। मेरी माँ स्वयं अपने हाथों से (भ)ोजन बनाकर सबको खिलाती थी। उन्हे लोगों को खिलाना-(प)िलाना अच्छा लगता था। उस समय पिताजी सहज ही दो-(च)ार रसोइए, नौकर-चाकर आदि रख सकते थे; किन्तु माँ (उ)न्हें ऐसा नही करने देती थीं। वे स्वय ही सारा काम करती (थ)ी। माँ साक्षात् लक्ष्मी थीं—खूब सीधा-साधा जीवन बिताती (थ)ीं। माँ को इतना अधिक परिश्रम करते देखकर पिताजी (क)भी-कभी बहुत दु:खी होते, तो माँ कहती, 'इन सबको खिलाना (त)ो मेरे परम सौभाग्य की बात है। ये सब मेरे बच्चे है।' (म)ेरी अवस्था जब नौ वर्ष की थी, तभी मेरी माँ की मृत्यु हो (ग)ई। वे खूब मोटी चौड़े लाल किनारे की साड़ी पहनती थी। इससे अधिक और कुछ याद नही आता। चाचा कहा करते (थ)े कि माँ कभी कुछ माँगती नही थी, यहां तक कि नित्य व्यव-हार में आनेवाले कपड़े-लत्ते भी।

"इधर ठाकुर के पास आते-जाते जब धीरे-धीरे संसार के सब सम्बन्ध छोड़ देने का मैंने संकल्प कर लिया, तो पिताजी के पास अन्तिम बिदा लेने गया। पिताजी को अपना मन्तव्य बताने पर वे एकदम रो उठे। आँखों से आँसू की धारा बहने लगी। हमारे घर में पूजा का कमरा था। उन्होंने मुझसे इष्टदेव को प्रणाम करके आने के लिए कहा। बाद में मेरे सिर पर हाथ रखकर मुझे आशीर्वाद देते हुए बोले, 'तुम्हें भगव-त्प्राप्ति हो। मैंने स्वयं उसके लिए अनेक चेष्टा की है, संसार-

त्याग की भी चेष्टा की है; किन्तु सफल न हो सका। इसी लिए तुमको आशीर्वाद देता हूँ कि तुम्हें भगवान मिलें।' मैंने यह बात आकर ठाकुर से कही। वे बहुत प्रसन्न हुए और बोले, 'बहुत अच्छा हुआ।'"

संन्यासी—"आजकल ऐसा पिता मिलना बहुत कठिन है—असम्भव कहना भी अतिशयोक्ति न होगी।"

महाराज—"हाँ, सच है। मेरे पिता स्वयं एक साधक थे न, इसी लिए। स्वयं चेष्टा करने पर भी भगवत्प्राप्ति न कर सके, फिर भी हृदय में भगवत्प्राप्ति के लिए सच्ची आकांक्षा थी। फिर इधर संसार की अनेक प्रकार की बातों का भी यथेष्ट ज्ञान था। इसी लिए वे इतनी सरलता से मुझे विदा दे सके।"

महापुरुष महाराज रात में भोजन करने बैठे हैं। इसी समय, श्रीश्रीठाकुर के आहार आदि का प्रसंग चलने पर एक संन्यासी ने पूछा, "महाराज, ठाकुर का हाथ क्या बहुत कोमल था—इतना कोमल कि पूरी तोड़ते हुए उनका हाथ कट गया था?"

महाराज—"हाँ, उनका हाथ बहुत ही कोमल था। हाथ ही क्यों, उनका सारा शरीर बहुत कोमल था। एक प्रकार की बहुत कड़ी पूरी होती है न? एक दिन वैसी ही पूरी तोड़ते उनका हाथ कट गया था।"

श्रीश्रीठाकुर रात में कितना आहार करते थे, यह पूछने पर महापुरुष महाराज ने अपनी थाली में रखी प्रसाद की पूरी को दिखाकर कहा, "ऐसी एक, या बहुत हुआ तो दो—बस इतना ही उनका रात का आहार था। उसके साथ थोड़ीसी

सूजी की खीर। उन्हें खालिस दूध हजम नहीं होता था, इसलिए दूध के साथ पानी और थोड़ीसी सूजी मिलाकर उसे आग पर चढ़ाकर खीर-जैसा बना दिया जाता था। उसी को वे ले लेते थे—बिलकुल थोड़ी सी। छीके में कुछ सन्देश* आदि रखे रहते थे। बीच-बीच मे कभी भूख लगने पर उसी में से एक-दो सन्देश ले लिया करते थे। कभी एक सन्देश में से आधा खाकर शेष आधा जो भी उस समय सामने रहता, उसी को दे देते थे। उनकी सब बातें बालकों-जैसी थीं—ठीक मानो एक बालक हों।"

भोजन के उपरान्त महापुरुष महाराज अपने कमरे में बैठे तमाखू पी रहे हैं। इसी समय एक सन्यासी ने पूछा, "महाराज, श्रीश्रीठाकुर की बीमारी के समय आप, स्वामीजी और काली महाराज† ठाकुर से बिना कहे एक बार चुपचाप बुद्ध-गया चले गए थे। वहाँ से लौटने पर ठाकुर ने आप लोगों से कुछ कहा था?"

महाराज—"हाँ, कहा क्यों नहीं। हाथ की एक उँगली घुमाकर अँगूठा दिखाकर बोले, 'कहीं कुछ नहीं है।' बाद में अपना शरीर दिखाकर बोले, 'इस बार सब कुछ यहीं है। और कहीं भी क्यों न जाओ, कहीं कुछ न मिलेगा। यहाँ के सब द्वार खुले हैं,' इत्यादि।"

---

* एक प्रकार की बंगाली मिठाई।

† भगवान श्रीरामकृष्ण देव के अन्तरंग शिष्य स्वामी अभेदानन्द।

श्रीरामकृष्ण आश्रम, बम्बई

बृहस्पतिवार, २४ जनवरी, १९२७

रात में भोजन के बाद महापुरुष महाराज बैठे हुए हैं। आश्रम के साधु-ब्रह्मचारियों में से अनेक वहाँ पर मौजूद हैं। इसी समय आश्रम के एक संन्यासी ने पूछा, "महाराज, ठाकुर कहा करते थे न, 'यहाँ जो आएगा, उसका यह अन्तिम जन्म है।' आप लोगों ने उन्हें कभी ऐसा कहते हुए सुना था?" महापुरुष महाराज कुछ देर चुप रहकर बोले, "यह बात तो किताबों में भी है।"

संन्यासी—"ठाकुर की इस बात का अर्थ क्या है? इसमें, जिन लोगों ने उनके दर्शन किए हैं और उनकी कृपा से भक्ति-विश्वास प्राप्त किया है, केवल उनका ही निर्देश है, अथवा जो उनमें श्रद्धा करते हैं, उनका भी जन्म समाप्त हुआ समझना चाहिए?"

महाराज—"उनकी यह बात सभी के लिए है। जो लोग उनमें श्रद्धा करते हैं—चाहे उन्होंने उनके दर्शन किए हों या नहीं, जिनकी उन पर आन्तरिक भक्ति है, जो मनसा-वाचा-कर्मणा उनमें आत्मसमर्पण कर चुके हैं, उन्हीं का यह अन्तिम जन्म है और वे ही मुक्त होंगे। पर आत्मसमर्पण जरूरी है।"

संन्यासी—"जो ठाकुर का आश्रय लेकर यहाँ आए हैं, वे भी मुक्त होंगे?"

महाराज—"अवश्य। पर वास्तव में मुक्त होने के लिए सम्पूर्ण आत्मसमर्पण आवश्यक है। यहाँ आना ही क्या कम सौभाग्य की बात है?"

संन्यासी —"अच्छा महाराज, हम लोग कुछ कर पाते हैं ऐसा तो मन में नहीं होता, और कुछ हो रहा है ऐसा भी नहीं जान पड़ता।"

महाराज —"बच्चा, जो इतने दिन करते आए हो, अब भी जो कुछ कर रहे हो, यह भी क्या कम है? उनकी कृपा के बिना इतना भी सम्भव न हो पाता। उनकी तुम्हारे ऊपर कितनी कृपा है; नहीं तो माँ-बाप की गोद और घर-द्वार छुड़ाकर वे क्यों यहाँ लाते? तुम्हारे ऊपर कृपा करने और तुम्हारा मानव-जीवन धन्य बना देने के लिए ही तो वे तुम्हें यहाँ खींचकर लाए हैं।"

संन्यासी —"किन्तु, महाराज, यह जो सब काम-काज कर रहा हूँ, इससे त्याग-वैराग्य बढ़ रहा है ऐसा तो नहीं जान पड़ता।"

महाराज —"यहाँ जो कुछ भी करते हो, सब उनका ही कार्य है। श्रीभगवान की प्रीति के लिए ही सब करते हो। तुम्हारी इसमें अपनी कोई भोग-वासना नहीं है। यहाँ जो कुछ भी करते हो, उसी से त्याग-वैराग्य बढ़ेगा। केवल हृषीकेश में भिक्षा माँगकर खा लेने से ही क्या समझते हो वैराग्य हो गया! Shame! (छिः!) अभी जो कुछ कर रहे हो, वही ठीक है। ऊपरी तौर से भले ही यह consciousness (ज्ञान) सदा न रहे, पर धीरे-धीरे देखोगे कि यही ज्ञान, यही बुद्धि पक्की हो जायगी। तब देखोगे, सब उन्हीं का है। तुम्हारा अपना कहने को और कुछ भी न रह जायगा।"

संन्यासी —"यह अवस्था हो कहाँ रही है, महाराज?

गम्भीर ध्यान में अहं का बिलकुल नाश हुए बिना शान्ति कहाँ? हमारा तो ध्यान भी अच्छा नहीं होता।"

महाराज —"सब होगा, बच्चा, धीरे-धीरे सब होगा। मैं कह रहा हूँ। विश्वास करो।"

श्रीरामकृष्ण आश्रम, बम्बई

शुक्रवार, २५ जनवरी, १९२७

रात में आहार आदि के बाद सभी साधु-ब्रह्मचारीगण महापुरुष महाराज का पुण्यसंग करने के लिए उनके पास एकत्रित हुए हैं। चारों ओर शान्ति विराज रही है। महापुरुषजी धीरे-धीरे स्वामीजी के सम्बन्ध में कह रहे है, "यहाँ स्वामीजी छबिलदास के घर पर बहुत दिन रहे थे। इसी समय वे बम्बई प्रान्त के अनेक स्थानों पर घूमे थे। छबिलदास आर्यसमाजी थे, वे साकार-उपासना नही मानते थे। स्वामीजी के साथ इस विषय में उनका अनेक प्रकार का वार्तालाप होता था। एक दिन वे स्वामीजी से बोले, 'अच्छा, आप तो कहते हैं, साकार-उपासना, मूर्ति-पूजा आदि सब सत्य हैं। यदि आप वेद द्वारा यह प्रमाणित कर मुझे साकारोपासना अथवा साकार भगवान की बात समझा सकें, तो मैं आर्यसमाज छोड़ दूँगा।' स्वामीजी ने खूब जोर के साथ उत्तर दिया, 'ऐसा क्यों नहीं कर सकता? निश्चय ही कर सकता हूँ।' और तभी से वे वेद से साकार-उपासना के सम्बन्ध में अनेक प्रमाण देकर छबिलदास को हिन्दू धर्म समझाने लगे। स्वामीजी की प्रतिभा तो असाधारण थी।

अन्त में छबिलदास को साकारोपासना मानने को बाध्य होना ही पड़ा और प्रतिज्ञानुसार आर्यसमाज छोड़ना पड़ा।

"यहाँ रहते-रहते स्वामीजी पूना और मलाबार आदि स्थानों में भी घूमते रहे। वे प्राय: रेलगाड़ी पर नहीं चढ़ते थे; किन्तु यदि चढ़ते, तो केवल पहले दर्जे में ही। किसी के रुपया-पैसा देने पर लेते न थे। बहुत आग्रह करने पर कहते, 'अच्छा, तो एक पहले दर्जे की टिकट खरीद दो।' उनका पेट अच्छा न था; बार-बार शौच के लिए जाते थे और देरी सही नहीं जाती थी। पहले दर्जे में इस सब बात की अच्छी सुविधा रहती है। एक बार वे निमन्त्रित होकर शायद लिमड़ी राजा के यहाँ जा रहे थे। वे पहले दर्जे में एक पूरी सीट पर बनियाइन पहने लेटे हुए थे। उसी डब्बे में वहाँ के कुछ धनी-मानी व्यक्ति भी चढे। उन्हे एक सन्यासी का पूरी बेंच पर अधिकार करना सहन नही हुआ और अंग्रेजी में वे आपस में बहुत सी बाते कहने लगे। संन्यासियों ने भारतवर्ष का नाश कर दिया है, इत्यादि अनेक प्रकार के अपशब्द कहते रहे। इधर स्वामीजी मजे में लेटे हुए सब बातें सुनते जा रहे थे। अन्त मे उन लोगों ने इतना जोर पकडा कि स्वामीजी और अधिक चुप न रह सके। वे झटपट उठकर बैठ गए और उन लोगों के साथ बहस शुरू कर दी। उन्होंने कहा, 'आप लोग कह क्या रहे है! संन्यासियों ने भारतवर्ष का नाश किया है या उन्हीं ने भारतवर्ष को बचा रखा है? बुद्ध, शंकर, श्रीचैतन्य—ये लोग क्या थे और भारतवर्ष के लिए इन्होंने क्या किया, थोड़ा सोचिए तो।' इस प्रकार उन्होंने ऐतिहासिक उदाहरण देकर उन्हें कायल कर दिया कि संन्यासियों ने ही भारत को

बना रखा है, और क्रमश: उनकी हरएक बात का इतना सुन्दर उत्तर दिया कि वे लोग सुनकर अवाक् रह गए। उनकी विद्वत्तापूर्ण अंग्रेजी और arguments (दलील) सुनकर उन लोगों में जो प्रधान व्यक्ति थे, वे तो इतने चकित हुए कि अन्त में उन्होंने उनको अपने यहाँ आने के लिए निमन्त्रण दे दिया। स्पष्ट था कि स्वामीजी उनका वह निमन्त्रण स्वीकार न कर सके, क्योंकि उस समय वे लिमड़ी के राजा के guest (अतिथि) होकर जा रहे थे। लिमड़ी के राजा की स्वामीजी के प्रति अत्यन्त श्रद्धा थी। स्वामीजी एक समय पूना में भी उतरे थे।"

कुछ देर बाद एक सन्यासी ने पूछा, "महाराज, आपको 'महापुरुष' नाम किसने दिया?"

महाराज—"स्वामीजी मुझे 'महापुरुष' कहकर पुकारते थे।"

संन्यासी—"क्यों? क्या इसका कोई विशेष कारण है?"

महाराज—"हाँ, है। ठाकुर के समीप जब मैं आता-जाता था, तब बीच-बीच में घर भी जाना पड़ता था। विवाह पहले ही हो गया था इसलिए। पर यह मुझे बिल्कुल अच्छा नहीं लगता था; किसी तरह नाक-कान बन्द कर भगवान का नाम करते हुए रात बिता देता था। स्त्री बहुत रोती थी। तब ठाकुर को मैंने सब वृत्तान्त कह सुनाया और अपने सब बन्धन काट देने की प्रार्थना की। उन्होंने सब सुनकर मुझे एक क्रिया करना सिखा दिया और बोले, 'भय किस बात का है? मैं जो हूँ। मेरा खूब स्मरण करना और यह क्रिया करना, तेरा कुछ नहीं बिगड़ेगा। जा, एक कमरे मे रहने पर भी तेरी कोई हानि नही होगी। बल्कि देखेगा, ऐसा करने से तेरा

वैराग्य और भी बढ़ जायगा।' ठाकुर ने राखाल महाराज को भी ऐसी ही एक क्रिया सिखा दी थी। ठाकुर के आदेशानुसार क्रिया करने से किसी प्रकार का उपद्रव नहीं हुआ। एक दिन बातचीत के सिलसिले में यह बात स्वामीजी को मालूम हुई। यह जानकर वे बड़े आश्चर्यान्वित हो बोले, 'क्या कहते हैं! यह तो महापुरुष का लक्षण है। आप तो महापुरुष हैं।' बस उसी दिन से उन्होंने मुझे 'महापुरुष' कहकर पुकारना आरम्भ कर दिया और तब से सब लोग यही कहने लगे। पहले स्वामीजी मुझे 'तारक दादा' कहा करते थे। एक दिन बलराम-मन्दिर में स्वामीजी ने मुझे 'महापुरुष' कहकर बुलाया। यह सुनकर बाबूराम महाराज की माँ ने कहा, 'यह क्या! महापुरुष तो पेड़ पर रहता है। ये कैसे महापुरुष हैं?' तब स्वामीजी ने उन्हें समझाया, 'ये वैसे महापुरुष नहीं हैं—ये वास्तव में महापुरुष हैं।' बाबूराम महाराज की माँ यह सुनकर बहुत आनन्दित हुईं।"

बम्बई

बुधवार, ३० जनवरी, १९२७

स्थानीय श्रीरामकृष्ण आश्रम के उद्योग से आश्रम-प्रागण में आज आचार्य श्रीमत् स्वामी विवेकानन्द महाराज का पैंसठवाँ जन्मोत्सव बड़े समारोह के साथ मनाया गया है। पूजा-पाठ, भजन-कीर्तन, भक्त और दरिद्रनारायण की सेवा आदि इस उत्सव के प्रधान अंग थे। पूजनीय महापुरुष महाराज की उपस्थिति से उत्सव का आनन्द सौगुना अधिक बढ़ गया था।

सन्ध्या समय आरती के बाद आश्रम के संन्यासी और ब्रह्मचारीगण महापुरुषजी के कमरे में एकत्रित हुए और उन लोगों ने उनके श्रीमुख से स्वामीजी का प्रसंग सुनने की इच्छा प्रकट की। उन्होंने भी स्वामीजी के साथ प्रथम परिचय के दिन से लेकर काशीपुर के उद्यान-भवन में एक साथ रहकर ठाकुर की सेवा और बाद में वराहनगर में मठ-स्थापना आदि घटनाओं को संक्षेप में कह सुनाया। बाद में एक सन्यासी ने प्रश्न किया, "महाराज, परिव्राजक-अवस्था में आप और स्वामीजी क्या कभी एक साथ रहे थे?"

महापुरुषजी—"हाँ, कभी-कभी स्वामीजी के साथ में रहा था तथा भ्रमण आदि के समय कहीं-कहीं पर उनसे मुलाकात भी हुई थी। एक बार मैं और काशी का ब्रह्मचारी हाराण दोनों उत्तराखण्ड के तीर्थों के दर्शन करने की इच्छा से निकले थे। पहले हम लोगों ने श्रीवृन्दावन की ओर यात्रा की। रास्ते में हाथरस जंक्शन पर उतरे। वहाँ मालूम हुआ कि स्वामीजी अभी वहीं पर हैं और एक रेलवे-अधिकारी के साथ ठहरे हुए हैं। वे उस समय बीमार थे। यह समाचार पाते ही हम लोग स्वामीजी को देखने के लिए गए। इस आकस्मिक मिलन से स्वामीजी को बड़ा आनन्द हुआ। इस ज्वर-दशा में ही वे कितनी बातें— कितना हास-परिहास और आनन्द करने लगे, उसका क्या वर्णन करूँ! वहाँ पर दो-तीन दिन रहने के बाद स्वामीजी ज्वरमुक्त हो गए; किन्तु उनका शरीर बहुत दुर्बल हो गया था। उन्होंने हम लोगों से वृन्दावन दर्शन करके फिर लौट आने के लिए कहा। निर्णय यह हुआ था कि वृन्दावन से लौटकर हम सब

लोग स्वामीजी के साथ हृषीकेश आएँगे। इस बीच में, सोचा कि उनका शरीर और भी स्वस्थ एवं सबल हो जायगा।

"मैं और हाराण दोनो वृन्दावन-दर्शन के लिए गए। वहाँ पर कुछ दिन खूब आनन्द मे बीते। वृन्दावन क्या कोई साधारण स्थान है? वह स्वयं श्रीभगवान का लीलास्थल है। उस स्थान का आध्यात्मिक वातावरण ही स्वतन्त्र है। वृन्दावन से हम लोग श्यामकुण्ड तथा राधाकुण्ड गए। रास्ते मे एक स्थान पर हाराण ब्रह्मचारी अपनी पोटली रखकर शौचादि के लिए गया; इतने मे ही उस पोटली की चोरी हो गई। हम दोनों का जो कुछ थोडा-बहुत रुपया-पैसा था, वह तो मेरे पास ही रहता था, किन्तु हाराण ने एक और दस रुपये का नोट अपनी पोटली के भीतर अलग से रख लिया था। इसी लिए पोटली की चोरी से उसे बडा दु:ख हुआ। वह बडा खिन्न-मन हो गया। स्वामीजी से जब हम लोग फिर मिले, तो उन्होंने यह समाचार सुनकर खूब हास-परिहास और आनन्द किया था। वृन्दावन के सभी दर्शनीय स्थानो को देखकर जब हम लोग हाथरस लौटकर आए, तो देखा कि स्वामीजी फिर से बीमार हो गए हैं—तापमान खूब अधिक है। और लगातार बुखार रहने के कारण उनका शरीर भी बहुत दुर्बल एव कृश हो गया है। तब वहाँ अधिक न रहकर उनको कलकत्ता ले जाना ही स्थिर किया—वे भी राजी हो गए। तदनुसार यहाँ के सब समाचार ज्ञात कराने के हेतु कलकत्ता और मठ दोनों जगह चिट्ठी लिखी गई। इधर हाथरस मे सभी रेलवे-अधिकारी और अन्यान्य बहुत से विशिष्ट व्यक्ति स्वामीजी के परम भक्त हो गए थे। वे जहाँ कहीं जाते, उनका बहुत प्रभाव पड़ता था। जो भी एक बार उनसे बातचीत करता, वह

बिल्कुल मुग्ध हो जाता था — ऐसा था उनका व्यक्तित्व। वे लोग किसी प्रकार स्वामीजी को छोड़ना नहीं चाहते थे। अन्त में बहुत समझा-बुझाकर उन लोगों को राजी करके, एक उच्चपदस्थ कर्मचारी के पास से कुछ रुपए उधार लेकर मैं स्वामीजी के साथ मठ की ओर रवाना हुआ। इससे हाराण मेरे ऊपर बहुत असन्तुष्ट हुआ; मैं उसे लेकर हरिद्वार क्यों नहीं गया — बस इसी का उसे दुःख था। वह मुझसे कहने लगा, 'जब साधु हुए हैं, तो अब भी इतनी माया क्यों? स्वामीजी को साथ लेकर गए बिना नहीं चल सकता? साधु के लिए इतनी माया अच्छी नहीं' इत्यादि। तब मैंने उससे कहा, 'अरे भाई! हम लोग साधु हुए हैं अवश्य और किसी के ऊपर माया रहना ठीक नहीं यह भी सत्य है; किन्तु गुरुभाइयों के ऊपर थोड़ी माया हम लोगों को है और वह रहेगी भी। यह हम लोगों के लिए ठाकुर की शिक्षा है। उन्होंने हम सब गुरुभाइयों में एक दूसरे के प्रति यह आकर्षण रख दिया है। विशेषतः स्वामीजी हम सबों के सिरताज हैं। उनके लिए हम लोग अपने प्राण तक देने में नहीं हिचकिचाते! हृदय का रक्त देकर भी यदि उनकी सेवा कर सकें, तो हम अपने को धन्य समझेंगे। स्वामीजी क्या हैं, सो तुम क्या समझोगे?' मेरी बात सुनकर हाराण चुप हो गया। फिर हाथरस के भक्तों से कहकर मैंने हाराण के हृषीकेश जाने की व्यवस्था कर दी। उन लोगों ने उसे टिकट देकर हृषीकेश की ओर भेज दिया।

"मैं स्वामीजी को लेकर कलकत्ते की ओर रवाना हुआ। उधर निरंजन स्वामी (स्वामी निरंजनानन्द) भी स्वामीजी के ज्वर का समाचार पाकर मठ से हाथरस की ओर रवाना हुए। मालूम होता है हम लोगों की गाड़ियों का इलाहाबाद में 'क्रॉस' हो

गया, इसलिए हम लोग एक-दूसरे को देख नहीं सके। मठ में आकर स्वामीजी को डाक्टर विपिन बाबू के पास दिखलाया गया। उनकी चिकित्सा से स्वामीजी पूर्णतया स्वस्थ हो गए।

"उसके बाद अनेक स्थानों में घूम-फिरकर स्वामीजी कुछ गुरुभाइयों को साथ ले तपस्या करने के लिए हृषीकेश गए। दिन-रात खूब कठोर तपस्या, जप-ध्यान और वेदान्त-चर्चा चलती थी। स्वामीजी कहते थे कि वे ऐसे आनन्द से और कभी नहीं रहे थे। उस समय वर्षाकाल था; अन्यान्य साधु लोग वहाँ प्रायः नहीं रहा करते थे। एकमात्र छाता ही भरोसा था। उस समय हृषीकेश वास्तविक ही तपस्या का एक अनुकूल क्षेत्र था। आजकल तो यह एक छोटा-मोटा शहर हो गया है। कठोर तपस्या और वेदान्त-चर्चा में बड़े आनन्दपूर्वक कुछ समय बिताने के बाद स्वामीजी को ज्वर हो गया। हरि महाराज, शरत् महाराज आदि गुरुभाई स्वामीजी के साथ थे। ज्वर क्रमशः बढ़ने लगा। वहाँ पर उस समय डाक्टर, वैद्य भी नहीं थे। अतः स्वामीजी के लिए सब लोग बड़े चिन्तित हो गए। एक दिन एकाएक ऐसा हो गया कि ज्वर खूब बढ़ा, फिर धीरे-धीरे कम होते-होते इतना कम हो गया कि सम्पूर्ण शरीर एकदम बरफ के समान शीतल हो गया, नाड़ी बन्द हो गई—केवल माथा थोड़ा गरम था। बातचीत सब बन्द—बचने के कोई लक्षण नहीं दिखते थे। सभी कातर होकर ठाकुर से प्रार्थना करने लगे, 'प्रभो, इस विपत्ति से हम लोगों का उद्धार करो, नरेन्द्र को अच्छा कर दो। यदि इन्हें ले जाना है, तो हम लोगों को भी मत छोड़ो—हम लोगों को भी साथ ले जाओ।' सभी बड़ी विपत्ति में थे; और प्रतीकार कुछ भी दिखाई न देता था। गुरुभाइयों में से एक गंगाजी गए थे।

उस समय एक साधु भी गंगाजी में स्नान कर रहे थे। सा
अत्यन्त वृद्ध तथा उसी प्रान्त के थे और सर्वदा हृषीकेश में ही रहते
थे। उन्होंने उन गुरुभाई से पूछा, 'तुम इतने उदास क्यों दिखा
दे रहे हो?' गुरुभाई ने स्वामीजी की बीमारी की बात उनसे
कही। तब वे साधु आए और स्वामीजी को खूब अच्छी तरह
देख-भालकर कहा, 'तुम लोग तनिक भी चिन्ता मत करो। मैं
एक औषध देता हूँ, इस औषध को काली मिरच के चूर्ण और
शहद के साथ मिलाकर इनकी जीभ में लगा दो; देखोगे, ये शीघ्र
ही स्वस्थ हो जायँगे।' यह कहकर वे अपनी कुटिया में गए और
भस्म की तरह की एक औषध निकालकर दी। इसके बाद अन्य
चीजों की व्यवस्था करके जैसा उन साधु ने बताया था, ठीक उसी
तरह औषध बनाकर स्वामीजी की जीभ पर लगा दी गई। कैसा
आश्चर्य! कुछ समय के अन्दर ही स्वामीजी का शरीर गरम
होने लगा और वे कुछ स्वस्थता का भाव अनुभव करने लगे।
स्वस्थ होने पर स्वामीजी ने जब सारी घटना को सुना, तो
धीरे-धीरे बोले, 'तुम लोगों ने मुझे क्यों औषध खिलाई?
मैं तो बड़े आनन्द में था।' फिर धीरे-धीरे स्वामीजी ने
बहुत-कुछ स्वस्थता लाभ की। किन्तु हम लोगों ने सोचा कि
इस भीषण वर्षाकाल में मलेरिया के होते हुए हृषीकेश में
और अधिक रहना किसी तरह उचित नहीं। अतः अन्य किसी
स्थान में जाना निश्चित हुआ। किन्तु स्वामीजी का शरीर उस
समय भी इतना दुर्बल था कि हम लोगों को यही चिन्ता थी कि
वे किस प्रकार अन्यत्र जा सकेंगे। उस समय टेहरी गढ़वाल के
राजा किसी कार्य से उस भाग में आए थे। श्री हरप्रसाद शास्त्री
के भाई रघुनाथ शास्त्री उस समय टेहरी के राजा के प्राइवेट

सेक्रेटरी थे। उनसे सारा हाल बतलाने पर उन्होंने हृषीकेश से हरिद्वार तक के लिए एक बैलगाड़ी की व्यवस्था कर दी। हरिद्वार मे कुछ दिन रहकर स्वामीजी मेरठ आए। वहाँ पर भी सब गुरुभाई उनके साथ आए। मेरठ की जलवायु बड़ी स्वास्थ्यप्रद है। वहाँ दो-तीन मास रहने के बाद उनका शरीर पूर्ण स्वस्थ हो गया। उस समय उन्होंने एक दिन कहा था, 'इस बार मुझे एक अच्छी जानकारी प्राप्त हुई। आज से फिर कभी गुरुभाइयो के साथ नही रहूँगा, अकेला ही रहूँगा। मेरी अस्वस्थता के कारण तुम लोगो को कितना सब करना पड़ा। कहाँ तो सब तपस्या करने गए थे, और कहाँ मेरी सेवा में ही सबको व्यस्त रहना पड़ा। फिर, तुम लोगो मे से किसी के अस्वस्थ हो जाने पर तो मुझे और भी अधिक व्यस्त होना पड़ेगा। गुरुभाइयो का स्नेह भी एक प्रकार का बन्धन है। इस बन्धन को भी काटना होगा।' और उन्होंने वैसा किया भी था। उसके बाद से अमेरिका जाने के पहले तक वे अकेले ही सम्पूर्ण भारत का भ्रमण करते रहे—किसी ने भी उनका कोई पता नही पाया।"

इसके बाद एक संन्यासी ने प्रश्न किया, "महाराज, स्वामीजी के शरीर-त्याग के समय आप क्या मठ मे थे?"

महापुरुषजी—"नही, उस समय मै मठ में नही था। उससे दस-बारह दिन पहले स्वामीजी ने ही मुझे बहुत समझा-बुझाकर काशी मे वेदान्त-प्रचार का कार्य प्रारम्भ करने के लिए भेजा था। जून मास के अन्त में मै इस कार्य के लिए काशी गया। स्वामीजी जब अन्तिम बार काशी आए, उस समय मै भी उनके साथ था। उस समय भिंगा के महाराजा ने काशी में वेदान्त-प्रचार के लिए एक संस्था स्थापित करने के लिए स्वामीजी को

पाँच सौ रुपए दिए थे। इन महाराजा की स्वामीजी पर बड़ी श्रद्धा भक्ति थी। वे वृद्धावस्था में अपना राज्य छोड़कर काशी दुर्गामन्दिर के पास एक कोठी बनवाकर उसी में वानप्रस्थ अवस्था में रहते थे और अपनी कोठी की सीमा के बाहर नहीं जाते थे। यह खबर पाकर कि स्वामीजी काशी आए हैं, उन्होंने एक कर्मचारी द्वारा बहुत से फल और मिठाई आदि भेजकर स्वामीजी से प्रार्थना की कि वे कृपया अपनी चरणरज से उनके स्थान को पवित्र करें। साथ ही उन्होंने यह भी संदेशा कहला भेजा कि वे अपने घर की सीमा से बाहर न निकलने का व्रत ले चुके हैं, अन्यथा स्वयं स्वामीजी के श्रीचरणों में उपस्थित होते। महाराजा की भक्ति को देखकर स्वामीजी ने कहा, 'हम लोग साधु हैं, जब निमन्त्रण देकर बुलाया है, तब क्यों नहीं जाएँगे ? अवश्य जाएँगे।' वे महाराजा के उस निमन्त्रण को आदर देने के उद्देश्य से उनके घर गए। मैं भी उनके साथ था। महाराजा अत्यन्त भक्ति-भाव से स्वामीजी की अभ्यर्थना कर उन्हें अपने घर के भीतर ले गए और बातचीत के सिलसिले में कहा, 'मैं आपकी कार्य-धारा पर अनेक वर्ष से लक्ष्य करता आ रहा हूँ, और उससे मुझे कल्पनातीत आनन्द का अनुभव हो रहा है। आपका उद्देश्य अत्यन्त महान् है। आपको देखने पर मन में होता है कि बुद्धदेव, शंकर आदि अवतारी पुरुषगण जिस प्रकार धर्म को पुनः प्रतिष्ठित करने के लिए जगत् में आए थे, उसी प्रकार आपने भी उसी उद्देश्य से देह धारण की है। आपका संकल्प कार्य-रूप में परिणत हो—यही मेरे हृदय की आन्तरिक इच्छा है।' फिर उन्होंने अनुरोध किया कि यदि स्वामीजी का प्रचार-कार्य काशी में भी हो सके, तो बड़ा सुन्दर है, और इसके लिए बड़े

ाग्रहपूर्वक उन्होंने स्वामीजी के सम्मुख पाँच सौ रुपए प्रस्तुत
ाए। पर स्वामीजी ने उस समय उन रुपयों को नहीं लिया।
ही कहा कि बाद में इस विषय पर सोच-विचारकर जैसा ठीक
ोचेगा, वैसा किया जायगा। किन्तु कुछ दिनों के बाद ही
हाराजा ने स्वामीजी के पास पाँच सौ रुपए भेज दिए और
नः काशी में कार्य प्रारम्भ करने का अनुरोध किया। इस बार
ामीजी ने उन रुपयों को स्वीकार कर लिया।

"मठ में लौट आने पर पहले स्वामीजी ने शरत् महाराज
काशी जाने के लिए कहा। किन्तु शरत् महाराज कुछ राजी
हीं हुए। उन्होंने कहा कि काशी में उन्हें सुविधा न होगी।
ब स्वामीजी बारम्बार मुझसे काशी जाने के लिए कहने लगे।
स समय उनका शरीर अत्यन्त दुर्बल था, डायबिटिज् (बहु-
त्र) बहुत बढ़ गया था। मैं उनको औषध आदि खिलाता
ा और उनकी सेवा की देख-भाल भी करता था। इसी लिए
स समय उनकी सेवा छोड़कर नहीं गया। बाद में उनका
रीर जब थोड़ा-बहुत स्वस्थ हुआ, तब उन्होंने मुझे काशी
ज दिया।"

एक संन्यासी —"काशी सेवाश्रम की बात का उल्लेख
रके मास्टर महाशय कहते थे — देखो, शिवानन्द के ध्यान के
भाव से काशी सेवाश्रम किस प्रकार चमक उठा है।"

महापुरुषजी —"यह भी कोई बात है? सब कुछ उनकी
(ठाकुर की) इच्छा और कृपा से होता है। ठाकुर के भाव
का दिन-प्रतिदिन अधिकाधिक प्रचार होगा। यह युगधर्म का
प्रभाव है। देखो न, बम्बई में ही पहले क्या था, और अब

इस समय कितना सब हो रहा है! बाद में और भी कित
होगा! सब उनकी लीला है!"

बाद में एक भक्त पारसी महिला के गाने की बात उठ
पर महापुरुषजी ने कहा, "अहा, कैसी भक्ति के साथ व
'मेरे तो गिरिधर गोपाल, दूसरा न कोई' गाना गाती हैं!
यह कहकर वे स्वयं वह गाना गाने लगे।

बेलुड़ मठ

शुक्रवार, जून, १९२७

अपराह्न काल है। महापुरुष महाराज मठ की पूर्व दिशा
की ओर के नीचे के बरामदे में खड़े हैं। सामने कलकत्ता की
एक व्यायाम-समिति के लड़के अनेक प्रकार की कसरतें दिखा
रहे हैं, वही वे बड़ी दिलचस्पी से देख रहे हैं। मठ के अन्यान्य
साधु और भक्तगण भी व्यायाम-क्रीडा का आनन्द ले रहे हैं।
महापुरुष महाराज ने एक संन्यासी को बाजार से कुछ मिठाई
लाने को भेजा। एक लड़के के पेशी-नियन्त्रण की प्रशंसा करते
हुए बोले, "अहा, इस लड़के ने खूब सुन्दर कसरत दिखलाई!
ऐसा ही किए जाओ बच्चा, और भी उन्नत होओ। ब्रह्मचर्य
का ठीक-ठीक पालन करना चाहिए। इन सब शारीरिक कामों
में भी ब्रह्मचर्य की बहुत आवश्यकता है। ब्रह्मचर्य-पालन ही है
प्रत्येक काम में secret of success (सफलता का मूलमन्त्र)—
कोई भी कार्य क्यों न करो। ब्रह्मचर्य के अभाव के कारण
देश में इतनी अवनति है।"

फिर छात्रों को प्रसाद और मिठाई आदि वितरण कर महापुरुष महाराज ऊपर चले गए।

अनेक प्रकार की कसरतें देखकर वे बहुत खुश हुए हैं, इसी लिए निकटस्थ कुछ संन्यासियों को लक्ष्य कर बोले, "तुम लोग exercise (व्यायाम) करते हो न?" उन लोगों में से से एक ने 'हाँ' कहा। इस पर महापुरुषजी ने फिर कहा, "Exercise (व्यायाम) हमेशा नियमित भाव से करना चाहिए। शास्त्र में कहा है, 'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्' (शरीर ही धर्म-प्राप्ति का पहला उपाय है)। धर्म-लाभ करने के लिए पहले शरीर को खूब चुस्त बनाना पड़ेगा। *Mens sana in corpore sano* — a sound mind in a sound body. स्वस्थ शरीर मे ही सबल मन निवास करता है। देखो न, ठाकुर के सब बच्चों का शरीर!" स्वामीजी, महाराज, निरंजन स्वामी, शरत् महाराज आदि सभी खूब अच्छे athlete (पहलवान) थे। स्वामीजी, महाराज आदि ने तो शागिर्दी करके कुश्ती और कसरत करना सीखा था। हम लोगों में से केवल योगीन स्वामी और बाबूराम महाराज का शरीर ही बाकी की तुलना में कुछ कमजोर था। शरीर ठीक न होने से इतनी कठोरता, इतना साधन-भजन किस प्रकार कर सकोगे? तुम लोग सब young men (युवक) हो, तुम लोगों को रोज exercise (व्यायाम) करना आवश्यक है। तुम्हे तो कोई पहलवान नहीं बनना है, केवल शरीर ठीक रखने के लिए ही exercise (व्यायाम) करना है। केवल साधु बनने से नहीं होगा। उपनिषदों में लिखा है, 'युवा

स्यात् साधुयुवाध्यायकः। आशिष्ठो द्रढिष्ठो बलिष्ठः'* (युवक होना चाहिए—सत्प्रकृति, अध्ययनशील और विशेषकर क्षिप्र-कर्मा, दृढ़काय और बलिष्ठ युवक), इत्यादि। तभी ठीक-ठीक ब्रह्मज्ञान के अधिकारी बन सकोगे। स्वामीजी जैसा कहते थे, 'जो पिनपिनाता है, मिनमिनाता है, सात थप्पड़ लगाने पर भी जिसके मुँह से बात नहीं निकलती—वह क्या धर्म-साधन कर सकता है?' यह ठीक बात है। शरीर रोगी होने से दिन-रात तो देह की सेवा में ही अस्थिर रहना पड़ेगा। फिर जप-ध्यान, साधन-भजन, लिखना-पढ़ना या काम-काज कब करोगे? इसके अतिरिक्त, शरीर खूब दृढ़ न होने से वह उच्च आध्यात्मिक अनुभूति का वेग धारण नहीं कर सकता। ऐसी दशा में या तो मस्तिष्क खराब हो जायगा या देह बिलकुल टूट-सी जायगी। इसके अतिरिक्त, तुम लोग तो ठाकुर-स्वामीजी की पलटन हो। तुम लोगों को दुनिया में बहुत काम करना है। जिसका शरीर खूब अच्छा होता था, उसे स्वामीजी खूब चाहते थे। स्वामीजी स्वयं बड़े स्वस्थ और बलिष्ठ देह के थे, इसी लिए तो वे इतने थोड़े दिनों में सारी दुनिया एकदम हिला गए।"

कुछ देर बाद महापुरुषजी नीचे आकर, दक्षिण दिशा के मैदान के पास खड़े होकर गौओं को पुचकारकर उन्हें सहला रहे हैं। आज उनके आदेश से गौओं को गुड़-सत्तू खिलाया गया है। गायों को आनन्दित देखकर वे बहुत खुश हैं। तत्पश्चात् मैदान में टहल रहे हैं। साथ में और भी दो-एक भक्त हैं। उनको लक्ष्य कर वे बोले, "देखो, ठाकुर-स्वामीजी का भाव

* तैत्तिरीय उपनिषद्—२।८।१

इस दुनिया में सभी को अपनाना होगा। स्वामीजी ठाकुर के साम्यभाव के प्रचार के लिए आए थे। समय आने पर देखोगे कि पाश्चात्य देशों ने इस भाव को कैसा अपनाया है। अभी तो नीव पड़ी है, आरम्भ ही है। वे लोग intellectual (विचारशील) जाति के हैं। क्रमशः देखोगे कि इसी उदार भाव को सब अपना रहे हैं, और केवल ठाकुर का यह भाव ही संसार में शान्ति स्थापित कर सकेगा। देश-देश में ठाकुर के जीवनादर्श को लोग अनेक रूपों में ग्रहण कर रहे हैं और ठाकुर-स्वामीजी की ही बातों पर अपने नाम की छाप लगाकर प्रचार कर रहे हैं। करें ऐसा। ठाकुर-स्वामीजी तो नाम-यश के कंगाल नहीं हैं। वे लोग संसार के कल्याण के लिए आए थे। जगत् का कल्याण होने से ही काम हो गया। उनका भाव-प्रचार होने से ही बस काम हो गया। ठाकुर तो मान नहीं चाहते। वे मान-यश को अत्यन्त तुच्छ चीज मानते थे, उसके नाम से ही 'हक् थू थू' करते थे। देखो, नाम-यश हजम करना बहुत कठिन काम है। जिन्हें आत्म-साक्षात्कार नहीं हुआ, वे किसी प्रकार भी मान-यश की आकांक्षा नहीं छोड़ सकते। यही देखो न, आजकल कितने अवतार निकल रहे हैं! थोड़ा भक्ति-विश्वास हुआ, थोड़ा भाव हुआ, बस अवतार बन बैठें! बस यही समाप्ति हो गई। अहंकार, अभिमान होने से धर्मराज्य में फिर और अधिक प्रगति नहीं हो सकती। वरन् जो कुछ हुई भी है, वह भी नष्ट हो जाती है।"

बेलुड़ मठ

शनिवार, जून, १९२७

लगभग पाँच बजे हैं। महापुरुष महाराज अपने कमरे में बैठे हुए हैं। पास में कुछ भक्त लोग भी हैं। बात चली कि एक चार वर्ष का बालक बहुत सुन्दर तबला बजा लेता है। महापुरुषजी बोले, *"यह सब देख-सुनकर जन्मान्तर में विश्वास किए बिना नहीं रहा जाता! पूर्वजन्म के संस्कार के बिना क्या इतनी थोड़ी सी अवस्था में इस प्रकार का कार्य किया जा सकता है?* इसको बजाना किसने सिखाया, और फिर भी इतना अच्छा *ताल-लय के साथ तबला बजा लेता है!"*

सन्ध्या-आरती के बाद रामनाम-संकीर्तन हो रहा है। मठ के साधुवृन्द और भक्तगण कीर्तन में सहयोग दे रहे हैं। महापुरुष महाराज भी निर्दिष्ट आसन पर बैठकर ध्यानमग्न-चित्त से कीर्तन सुन रहे हैं। कुछ देर बाद रामनाम और भजन आदि समाप्त हो गया। भक्तगण प्रसाद लेकर अपने-अपने घर जाने के पहले महापुरुष महाराज *को प्रणाम करने आए हैं।* उनको लक्ष्य कर महापुरुषजी बोले, *"महाराज (स्वामी ब्रह्मानन्द) दक्षिण देश में जाकर यह रामनाम-कीर्तन सुनकर आए थे। उन्हें यह बहुत अच्छा लगा था, इसी लिए उन्होंने मठ के बालकों को यह कीर्तन सिखाया। अब तो मठ में प्रत्येक एकादशी को रामनाम-संकीर्तन होता है। देखते-देखते यह रामनाम सारे देश में व्याप्त हो गया है। कितने लोगों को आनन्द और शान्ति मिल रही है। स्वामीजी की यह हार्दिक इच्छा थी कि भारत के घर-घर में महावीर की पूजा हो। महावीरजी*

बालब्रह्मचारी हैं। उनकी पूजा होने पर ही तो देश में आत्मशक्ति जग उठेगी।"

भक्तों में से बहुत से चले गए हैं। महापुरुष महाराज अब भोजन करनेवाले हैं। एक भक्त ने जाति-विचार का प्रसंग उठाकर कहा, "महाराज, कोई-कोई स्वामीजी के नाम पर दोषारोपण करते हैं कि वे ठाकुर के उत्सव में सबको एक साथ बिठाकर भोजन कराने की प्रथा चालू करके लोगों की जाति नष्ट कर दे रहे हैं।" यह सुनकर महापुरुषजी बोले, "देखो, लोगों की कैसी मति है! 'यहाँ पर जो उत्सव होता है, उसमें ब्राह्मणों द्वारा पकाना आदि कार्य सम्पन्न होता है, तत्पश्चात् ठाकुर का भोग लगता है। यह जो सौ-सौ मन खिचड़ी, साग आदि बनता है, सबका एक विराट् भोग श्रीभगवान को निवेदित होता है, और उसी का प्रसाद सबको दिया जाता है। फिर, लोग तो अपनी इच्छा से प्रसाद पाने को बैठते हैं। हम तो कभी किसी से यह नहीं कहते कि 'तुम लोग एक जगह बैठकर खाओ।' यह तो कभी नहीं कहा। इस पर भी यदि कोई टीका करे, तो करने दो। इसके लिए और क्या किया जाय, बोलो? ऐसा गंगा-तट पर ब्राह्मण द्वारा पकाया गया श्रीभगवान को निवेदित प्रसाद, और उसमें भी आपत्ति? यदि कहा जाय, तो अनेक बातें कही जा सकती हैं। और अब जाति है कहाँ? बारह वर्ष शूद्र की नौकरी करने से शूद्रत्व आ जाता है। बहुत से लोगों को तो देखा है बच्चा, बारह वर्ष क्या, चौबीस वर्ष से वे म्लेच्छ का दासत्व कर रहे हैं। ऊपर से फिर भी जाति का अभिमान! स्वयं तो कुछ करेंगे नहीं, केवल जाति लेकर चख-चख करते रहते हैं। आज कहाँ है वह

सब याग-यज्ञ, दान-ध्यान, त्याग-तपस्या ? इसी लिए तो स्वामीजी ने बहुत दु:खी होकर कहा था, 'तुम लोगों का धर्म तो इस समय दाल-भात की हंडी में घुसा हुआ है — सब छूत-पन्थियों का दल है।'"

बेलुड़ मठ

रविवार, १० जुलाई, १९२७

आज महापुरुष महाराज के कमरे में भक्तों की भीड़ लगी है। बरीशाल से कुछ भक्त स्त्री-पुरुष भी उपदेश सुनने आए हैं। एक वृद्ध भक्त उनके अगुआ होकर बोले, "महाराज, हमें भी थोड़ा उपदेश दीजिए। हम लोग संसारी जीव हैं, रात-दिन जल-भुनकर मर रहे हैं। आप आशीर्वाद दीजिए कि जीवन में शान्ति मिले।"

महापुरुषजी वृद्ध महाशय का आग्रह देखकर करुणार्द्र स्वर से बोले, "उपदेश और क्या दूँ, भाई ? हमारा एक उपदेश है—उनको कभी भूल न जाना। यही सार बात है। हम लोग स्वयं भी इसी का यथासाध्य पालन करने की चेष्टा करते हैं, और किसी के पूछने पर भी यही कहते हैं कि श्रीभगवान को कहीं भूल न जाना ! तुम लोग संसार में रहते हो, यह तो ठीक ही है। संसार छोड़कर और कौन है, बताओ ? किन्तु उनको भूलकर मत रहो। संसार के सब कर्तव्य कर्म करो; किन्तु उसी के बीच दिन बीतने पर, कम-से-कम एक बार ही सही, उनको हृदय से पुकारो। सांसारिक काम-काज तो लगे ही रहते हैं, मैं उन्हें छोड़ने को नहीं कहता; किन्तु इन सब

के बीच ही उनका स्मरण-मनन, उनके समीप प्रार्थना, उनका नाम-जप, यह सब करते जाना। वैष्णव-ग्रन्थों में है, 'हाथ से काम, मुख से हरिनाम।' यह बड़ी सुन्दर बात है। सब कामों के बीच उनका नाम-गुणगान करना चाहिए। प्रत्येक कार्य का जिस प्रकार एक समय निर्धारित रहता है और आवश्यकता होती है, उसी प्रकार भगवान को पुकारने का भी एक निर्दिष्ट समय रखना। उस समय सौ काम होने पर भी उनका स्मरण-मनन करना होगा। और जितना करो, उतना आन्तरिक भाव से करना। वे अन्तर्यामी हैं, वे तो हृदय देखते हैं। यही रहस्य है। संसार में थोड़ी शान्ति के साथ रहने का यही एकमात्र उपाय है। इसमें यदि भूल हुई, तभी गडबड़ की सम्भावना है।"

एक भक्त महिला बोली, "महाराज, हम भगवान को भूल क्यों जाते हैं? हमारा मन उनकी ओर क्यों नही जाता?"

महाराज—"क्यों भूल जाती हो माई? इसी का नाम माया है। माया में बद्ध हो, इसी लिए उन्हें भूल जाती हो और श्रीभगवान को भूलकर तुम लोगों का मन अनित्य विषयों में लिप्त हो जाता है। विषय-भोगों को तुम लोग जिस प्रकार चाहते हो, उसी तरह भगवान को भी चाहो। यह दुनिया तो दो दिन की है। तुम्हारी देह, आत्मीय-स्वजन, जिनको 'मै-मेरा' करके पागल हो, वह भी सब अनित्य है, यह क्या बतला-कर समझाना पड़ेगा? आँखों के सामने दिन-रात देख तो रही हो—आज है, कल नही; अभी है, एक क्षण बाद ही नहीं; हुआ, और मरा; अभी सुख, और दो दिन बाद ही फिर दु:ख। फिर भी यह सब लेकर ही तो मौज में पड़ी हो?"

भक्त महिला—"बाबा, हम लोगों का कैसे उद्धार

होगा ? किस प्रकार इस माया से मुक्त होंगे ? आप थोड़ा आशीर्वाद दीजिए। "

महाराज—"यह संसार अनित्य है, यह ज्ञान उनकी कृपा के बिना नहीं होता। एकमात्र भगवान की शरण को छोड़ इस मायाजाल को काटने का और कोई तो उपाय नहीं है, माई! श्रीभगवान स्वयं गीता में कहते हैं—

> 'दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
> मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ॥' *

—'वह दैवी माया ही है, जो समस्त जीवों को मोहित किए हुए है। यह वास्तव में अत्यन्त दुस्तर है। इस माया के हाथ से परित्राण पाना सचमुच अत्यन्त कठिन है। किन्तु जो अनन्य-मन से मेरी आराधना करते हैं, वे इस दैवी माया को पार कर सकते हैं, इस माया के हाथ से मुक्ति पा जाते हैं।' अनन्यमन से उन्हें पुकारने के सिवाय और कोई उपाय नहीं। तुम लोग संसार में रहते हो, अनेक काम-काज रहते हैं, तुम लोगों को तो साधन-भजन करने का अधिक समय नहीं है। अतः तुम लोग उनके शरणागत होकर पड़े रहो और रोओ। केवल रोओ और प्रार्थना करो, 'प्रभु, दया करो, दया करो।' रोते-रोते मन का मैल धुल जायगा। तब वे सहस्रसूर्य-प्रभा में प्रकाशित हो उठेंगे। तब देखोगे कि वे भीतर में ही विराजमान हैं। खूब रोना और बीच-बीच में सदसत् विचार करना। एकमात्र भगवान ही सत्य हैं, और संसार, जन्म-मृत्यु, सुख-दुःख सभी अनित्य हैं। इस प्रकार विचार और प्रार्थना

* गीता — ७।१४

करते-करते उनकी दया होगी; संसार के प्रति विरक्ति होगी और मन श्रीभगवान की ओर चला जायगा।"

भक्त महिला—"आप, बाबा, जरा आशीर्वाद दीजिए, ताकि आपकी दया से मैं इस संसार से पार जा सकूँ।"

महाराज—"हम लोगों का तो माई, आशीर्वाद छोड़कर और कुछ नहीं है। सब लोग इस संसार-सागर के पार चले जायँ, यही हमारी हार्दिक इच्छा है। हम लोग तो यही चाहते हैं। मैं हृदय से प्रार्थना करता हूँ, तुम्हारा श्रीभगवान में अनुराग हो। और क्या कहूँ, माई!"

भक्तगण परिपूर्ण हृदय से महापुरुष महाराज को भक्तिभावपूर्वक प्रणाम कर विदा हुए। कुछ समय बाद एक सेवक दैनिक डाक की चिट्ठियाँ पढ़कर सुना रहे हैं। एक भक्त ने इस बात का दुःख प्रकट करते हुए पत्र लिखा है कि वे महापुरुष महाराज की कोई सेवा आदि करने का अवसर नहीं पाते।

यह पत्र सुनकर महापुरुषजी बोले, "उसकी उत्तर में मेरा खूब आशीर्वाद देकर लिखना कि मेरी सेवा और क्या करोगे। ठाकुर की इच्छा से मुझे कोई अभाव तो नहीं दिखाई पड़ता। मेरी कोई सेवा नहीं करनी होगी। वरन् यदि वह ठाकुर की थोड़ी आराधना करे, तो उसी से मुझे खूब आनन्द होगा।"

बेलुड़ मठ

शनिवार, ३ सितम्बर, १९२७

श्रीरामकृष्ण-संघ के मातृतुल्य पूज्यपाद शरत् महाराज (स्वामी सारदानन्दजी) आज कुछ दिन हुए श्रीगुरुपादपद्म में

लीन हो गए हैं। मठ के साधु लोग और भक्तगण, और विशेषतः महापुरुष महाराज, सभी शोक से व्याकुल हैं। जब से महापुरुषजी ने शरत् महाराज के apoplexy (संन्यास रोग) द्वारा पीड़ित होने का समाचार पाया था, तभी से वे बहुत गम्भीर हो गए थे। उनके मुखमण्डल पर चिन्ता प्रकट होती थी। वे सदैव कुछ अनमने-से रहते और हरदम शरत् महाराज का समाचार लिया करते थे। यदि कोई दीक्षा आदि अथवा अन्य किसी कार्य के विषय में पूछता, तो बड़े शान्त भाव से कहते, "इस समय यह सब कुछ नहीं होगा, मेरा मन ठीक नहीं। शरत् महाराज बीमार हैं।" बातचीत भी करते, तो अधिकतर शरत् महाराज के ही सम्बन्ध में। बेलुड़ मठ में शरत् महाराज की पूत देह के अन्तिम संस्कार से कुछ पूर्व ही महापुरुषजी ने केवल एक बार धीरे से कहा था, "शरत् महाराज गंगास्नान बहुत पसन्द करते थे। तुम लोग उन्हें खूब अच्छी तरह गंगास्नान करा देना।"

आज शनिवार है। सन्ध्या समय महापुरुषजी के कमरे में बहुत से भक्त आए हैं। महापुरुषजी यद्यपि स्वयं शोक-सन्तप्त हैं, किन्तु फिर भी सभी से कुशल-प्रश्न पूछ रहे हैं और उन्हें आशीर्वाद दे रहे हैं। दो-चार बातें करने के बाद शरत् महाराज की बात उठी। महापुरुषजी बोले, "अहा, जिस शनिवार को शरत् महाराज बीमार हुए थे, उससे पहले सोमवार को वे मठ में आए थे। उस दिन कार्यकारिणी-समिति की बैठक थी। मुझसे बोले, 'देखिए, शरीर बहुत खराब होता जा रहा है। जान पड़ता है, अब और अधिक दिन न टिकेगा।' किन्तु उस समय में यह नहीं जानता

था कि वे इतने शीघ्र चले जाएँगे। वे बहुत भाग्यवान पुरुष थे। उनके ऊपर माँ की विशेष कृपा थी। इसी लिए वे एकदम गौरव के साथ डंके की चोट पर चले गए। जीवन भर वे लोक-कल्याण करते रहे—बहुत लोगों का जीवन-गठन और बहुतों का उद्धार किया। फिर अन्तिम कई दिन रुग्ण शरीर में रहकर भी वे बहुत से लोगों की मनस्कामना पूर्ण कर गए। ऐसे तो वे किसी को सेवा करने नहीं देते थे; किन्तु अन्तिम कुछ दिन लड़कों ने कितनी सेवा की है! बारह वर्ष के साधन-भजन और तपस्या आदि से जो फल इन्हें न मिलता, वह इस कुछ दिन की सेवा से मिल गया। जैसे केवल भक्तों की कामना पूरी करने के लिए ही वे इस भाव में यह कुछ दिन रहे हों। अनेक स्थानों से बहुत से लोगों ने आ-आकर सेवा और दर्शन किए। उन्होंने किसी के मन में थोड़ा भी क्षोभ नहीं रहने दिया। सबकी साध मिटाने के लिए सेवा आदि करने का अवसर दे गए।

"वे तो महायोगी थे, समाधि द्वारा देह त्यागकर ठाकुर और माँ के समीप चले गए। शरीर किसी भी प्रकार छूटे—उनके लिए क्या? शास्त्र में है, ब्रह्मज्ञ पुरुष मूर्च्छित होकर, गिरकर या किसी भी भाव में शरीर-त्याग क्यों न करें, उससे उनका ज्ञान नष्ट नहीं होता। रोग के प्रथम attack (आक्रमण) से ही इधर कुछ दिन उन्हें कोई अधिक बाह्यज्ञान न था; किन्तु भीतर ही भीतर पूर्ण ज्ञान था। मैं केवल एक दिन देखने गया था। वह दृश्य देखने को मन नहीं होता था, इसलिए और नहीं गया। गंगाधर (स्वामी अखण्डानन्द) के 'दादा, दादा' कहकर पुकारने पर उन्होंने आँखें खोलकर देखा, फिर

आँखें बन्द कर लीं। गिरिन डाक्टर के 'शरत्, शरत्' पुकारने पर उन्होंने उनकी ओर भी देखा। गिरिन बाबू ने पूछा, 'शरत्, चाय पियोगे?' तो सिर हिलाकर अनिच्छा प्रकट की। बाद में ठाकुर का चरणामृत देने की पूछने पर सिर हिलाकर सम्मति जताई। ठाकुर का चरणामृत दिया गया; उन्होंने पी लिया।"

थोड़ा चुप रहकर महापुरुषजी फिर कहने लगे, "विशेष-कर अन्तिम कई वर्ष शरत् महाराज ने खूब कठिन साधन-भजन करना शुरू कर दिया था। प्रातःकाल गंगास्नान कर जप-ध्यान करने बैठते, और एकासन में १०-११ बजे तक बैठे रहते। बीच में थोड़ीसी चाय पीते थे — वह भी आसन पर बैठे-ही-बैठे, आसन छोड़ते नहीं थे। भक्तों पर खूब कृपा करते थे। विशेष-कर स्त्रियों के तो एक आश्रय थे। शाम को चार बजे से सब स्त्रियों का आना शुरू होता था। वे सन्ध्या के बाद तक अथक रूप से सबको उपदेश आदि देते रहते थे। उसके बाद भक्त पुरुषों की भीड़ बहुत रात तक लगी रहती थी। उनका कृपालु हृदय सबके लिए हमेशा खुला रहता था। अहा, उनका क्या ही अद्भुत जीवन था — स्थिर, धीर, शान्त, गम्भीर! हमने कभी भी शरत् महाराज को क्रोध करते नहीं देखा। केवल स्नेह और कृपा करते ही देखा। वे तो अब ठाकुर और माँ के साथ तादात्म्य-लाभ कर महदानन्द में हैं और प्रतिक्षण भक्तों की कल्याण-कामना कर रहे हैं। वे लोग तो ठाकुर के अन्तर में ही थे, जगत् के कल्याण के लिए कुछ दिन बीच में लीला-विग्रह धारण कर आ गए थे। उन लोगों की तो कोई पृथक् सत्ता नहीं है! जो उनका चिन्तन करता है, वह ठाकुर का ही

चिन्तन करता है। सभी भक्तों ने तो ठाकुर को नहीं देखा है। उन्होंने, हो सकता है, स्वामीजी, महाराज, बाबूराम महाराज, हरि महाराज या शरत् महाराज में से ही किसी के दर्शन किए हैं और उनके प्रति श्रद्धा-भक्ति और प्रेम करते हैं। यह भक्तिमय प्रेम ठाकुर के पास ही पहुँचेगा।"

रात के कोई आठ बजे हैं। कई भक्त महापुरुष महाराज के कमरे में आए हुए हैं। उनमे से एक बरीशालनिवासी हैं। क्रमशः अश्विनी बाबू की बात चलने पर महापुरुष महाराज बोले, "बरीशाल में अश्विनी दत्त का बड़ा नाम है। हम लोगों ने उनके पिता ब्रजमोहन दत्तजी को ठाकुर के पास देखा था। वे सब-जज थे। एक नए कालेज की स्थापना के विचार से ठाकुर के पास आशीर्वाद लेने आए थे। बड़े अच्छे आदमी थे।"

एक भक्त—"अच्छा महाराज, ठाकुर क्या इन लौकिक कार्यों में भी आशीर्वाद आदि देते थे ?"

महाराज—"हाँ, देते थे। उनका शरीर था दया का। किसी भी सत्कार्य में उनका आशीर्वाद माँगने पर वे बड़ी इच्छा-पूर्वक आशीर्वाद देते थे।"

भक्त—"ठाकुर क्या दीक्षा आदि भी देते थे ?"

महाराज—"हाँ, देते थे; लेकिन बहुत कम। इसके अतिरिक्त उनकी दीक्षा तो साधारण दीक्षा के समान कान में मन्त्र फूंकना नही थी। वे किसी को स्पर्श के द्वारा ही चैतन्य कर देते थे, किसी की जीभ पर कोई बीजमन्त्र लिखकर कुल-कुण्डलिनी जाग्रत् कर देते थे। किसी के मन की गति को अपनी इच्छाशक्ति द्वारा फेर देते थे। वे जगद्गुरु थे। उनकी

बात ही निराली है। 'जगद्‌गुरु मन्त्र दें प्राण में' और 'मानुष गुरु मन्त्र दें कान में।' वे भक्तों के भीतर दैवी शक्ति, ईश्वरीय भाव उद्दीप्त कर देते थे और अधिकारी-भेद से साधकों से भिन्न-भिन्न साधन कराते थे। 'सब धान एक पसेरी' उनके यहाँ नहीं चलता था। किसी मार्ग का भी साधक क्यों न हो, वे उसको उसी मार्ग से आगे बढ़ने में सहायता करते थे। जैसे-जैसे दिन बीत रहे हैं, मैं समझ पा रहा हूँ कि क्यों उन्होंने अनेक प्रकार की साधनाएँ की थीं। सब धर्म सत्य हैं और सब धर्मों में एक ही परमपुरुष सत्यस्वरूप श्रीभगवान की उपलब्धि की जाती है — केवल इसी नूतन सत्य के आविष्कार और अनुभव के लिए उन्होंने सर्वधर्मों की साधना की हो, ऐसी बात नहीं; वरन् उनकी इस साधना का कुछ गूढ़ अर्थ था। यही कारण है कि आज हिन्दू धर्म के प्रत्येक सम्प्रदाय के व्यक्ति ठाकुर के जीवन को आदर्श बनाकर चल रहे हैं। आज कितने ही ईसाई उन्हें ईसा मसीह मानकर पूजते हैं। यह न सोचना कि यह सब किसी के प्रचार के फलस्वरूप हुआ है। भला उनका प्रचार कोई क्या कर सकता है, बताओ तो? सत्यस्वरूप को कौन प्रकाशित करेगा! इसी लिए तो गीता में कहा है —

'न तद्भासयते सूर्यो न शशांको न पावकः।'*

— 'उस ब्रह्म को न सूर्य प्रकाशित कर सकता है, न चन्द्रमा, न अग्नि।'

"तुम लोग यह सुनकर चकित हो जाओगे कि आजकल अनेक मुसलमान स्त्री-पुरुष भी ठाकुर को खुदा का पैगम्बर मुहम्मद मानकर उनकी पूजा कर रहे हैं। मैं उस साल नील-

* गीता — १५।६

गिरि पहाड़ पर था। वहाँ के भक्तों ने कुनूर में एक बँगला हम लोगों के लिए किराए पर ले दिया था। हम लोगों का समाचार पाकर बम्बई से एक मुसलमान डाक्टर सपरिवार वहाँ आए। परिचय से ज्ञात हुआ कि वे बम्बई के एक प्रसिद्ध डाक्टर हैं, विलायत हो आए हैं, और अच्छी प्रेक्टिस भी है। साथ में उनकी स्त्री और दो लड़के थे—बड़े सुन्दर। साधारण दो-चार बातें कर डाक्टर ने मुझसे कहा, 'हम लोग आपके दर्शन करने आए हैं। मेरी स्त्री विशेष आग्रहपूर्वक आपके पास आई है। उसे आपसे कुछ बातचीत करनी है।' यह कहकर वे पास के कमरे मे चले गए। उनकी स्त्री ने बड़े भक्तिभाव से मुझे प्रणाम कर अपनी हार्दिक बात कही। वे बाल्यावस्था से ही कृष्ण-भक्त थी। श्रीकृष्ण की बाल-गोपाल भाव से पूजा करती थीं और बीच-बीच में दर्शन आदि भी पाती थी। तत्पश्चात् ठाकुर की जीवनी और उपदेश पढ़कर ठाकुर के ऊपर उनकी अत्यन्त भक्ति हो गई। उनकी धारणा है कि उनके इष्टदेव ही श्रीरामकृष्ण-रूप से जगत् में अवतीर्ण हुए हैं। मैंने देखा कि ठाकुर के ऊपर उनकी अगाध भक्ति है। वे खूब साधन-भजन करती हैं। ठाकुर ने भी अनेक प्रकार से उन पर कृपा की है। अन्त में बिदा लेते समय घुटने टेककर प्रणाम कर बोलीं, 'कृपया मेरे सिर पर हाथ रखकर जरा आशीर्वाद दीजिए। आप श्रीरामकृष्ण के साथ रहे हैं, उनके कृपाभाजन हैं। आपके जिस हाथ ने श्रीरामकृष्ण का स्पर्श किया है, उसी से मेरा सिर छू दीजिए!' और कितनी रोईं! मैं तो मन में केवल यही सोचने लगा—धन्य प्रभु, धन्य है तुम्हारी महिमा! तुम्हें कौन

जान पाएगा भला? यहीं शिवमहिम्नस्तोत्र का श्लोक याद आया —

'तव तत्त्वं न जानामि कीदृशोऽसि महेश्वर ।
यादृशोऽसि महादेव तादृशाय नमो नमः ॥'

—'हे महेश्वर, तुम्हारा स्वरूप क्या है—तुम्हारा तत्त्व क्या है, यह मैं नहीं जानता। हे महादेव, तुम्हारा जो भी रूप हो, उसी रूप में तुम्हें बारम्बार नमस्कार है।'

"वास्तव में ठाकुर के सम्बन्ध में हमें यह बात कहनी ही पड़ेगी। उन्हें कौन जान सकता है? ठाकुर के और भी अनेक मुसलमान भक्त मैंने देखे हैं। एक भक्त काडुगा में देखा। बड़े धनीमानी थे। गवर्नमेंट ने उन्हें खानबहादुर की title (पदवी) दी थी। वे सूफी सम्प्रदाय के थे, किन्तु ठाकुर के ऊपर बड़ी भक्ति थी। वहाँ ठाकुर का एक छोटा-सा आश्रम है। इन खानबहादुर और स्थानीय कलेक्टर—वे भी मुसलमान थे—आदि कुछ लोगों ने यत्न करके यह आश्रम बनाया था। हम लोग वहाँ तीन-चार दिन रहे। अक्सर ही देखता था कि क्या सुबह, क्या शाम, ये खानबहादुर मंडप के एक कोने में बड़े दीन-हीन भाव से बैठे हैं, और एकदृष्टि से ठाकुर की ओर ताक रहे हैं। उनकी धारणा है कि उनके पैगम्बर मुहम्मद ही इस बार रामकृष्ण-रूप धारण कर जगत् के कल्याणार्थ आए हैं। इसी तरह कितने प्रकार से कितने लोगों पर ठाकुर ने कृपा की है—यह हम लोगों की क्षुद्र बुद्धि से नहीं जाना जा सकता।

एक भक्त—"हम लोग तो, महाराज, संसार में आसक्त हैं। साधन-भजन तो दूर की बात है, उनका थोड़ा सा स्मरण भी नहीं कर पाते। हम लोगों की क्या गति होगी?"

महाराज—"बच्चा, साधन-भजन यदि नहीं कर सकते, तो कम-से-कम उनका स्मरण-मनन, उनका नामगुण-गान तो कर सकते हो? संसार ने तुम्हें रात-दिन तो नहीं बाँध रखा है? यदि कुछ नहीं कर सकते, तो कैसे होगा? यदि और कुछ न कर सको, तो भी उनके लिए मन में एक आकर्षण लाना होगा। जैसे भी हो, उनसे प्रेम करना होगा। हृदय में यदि इतना भी खिंचाव न आए, तो कैसे बनेगा? ठाकुर जैसे कहा करते थे, 'जब तक बच्चा चुसनी लेकर खेलता रहता है, उसे लेकर ही भूला रहता है, तब तक माँ यह-वह कार्य करती रहती है। किन्तु ज्योंही बालक चुसनी फेंककर माँ, माँ, कहकर रोने लगता है, माँ तुरन्त हाथ का काम छोड़-छाड़ झटपट बच्चे को गोद में ले लेती है।' तुम लोग जब तक इस संसाररूपी चुसनी को लेकर भगवान को भूले रहोगे, तब तक उनके दर्शन नहीं पा सकते। ऐसा दुर्लभ मनुष्य-जन्म पाकर भी यदि अवज्ञा कर उसे बिता दिया, तो यह बड़े ही दुर्भाग्य की बात होगी। ठाकुर प्रायः ही इस गाने को उपदेश के बहाने गाया करते थे—

'मनरे कृषिकाज जानो ना।

एमन मानवजमीन रइलो पतित, आबाद करले फलतो सोना॥'†

इसी गाने में है—

---

† मन, तुम कृषि-कर्म नहीं जानते। ऐसी मनुष्य-जीवनरूपी भूमि उपेक्षित हो पड़ी है। यदि इसको आबाद किया जाता, तो इसमें (ईश्वर-प्राप्तिरूप) सोना फलता।

'अद्य किम्वा शताब्दान्ते, वाजाप्त होवे जानो ना।
एखन आपन एकतारे(मनरे)चुटिये फसल केटे नेना ॥ '‡

इत्यादि। इस गाने में सार उपदेश दिया गया है। इसी लिए तो ठाकुर संसारबद्ध जीवों के कल्याणार्थ ये सब गाने गाया करते थे।"

भक्त—"हम लोग तो ठाकुर को बिलकुल नहीं समझ पाए। पर आपके पास आना बड़ा अच्छा लगता है। कुछ दिन न देखने पर मन छटपटाने लगता है, इसी से आते हैं। आपकी बातें याद आती हैं, देखने की भी इच्छा होती है। इसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं कर पाते।"

महाराज—"पर हम लोग तो ठाकुर के सिवाय और कुछ नहीं जानते—अन्दर बाहर सर्वत्र वे ही बसे हैं। वे ही हमारे all in all (सर्वस्व) हैं। यह अच्छी तरह याद रखो कि हम लोग उन्हीं की सन्तान हैं, उन्हीं के चरणाश्रित हैं। हम लोगों का चिन्तन करने पर भी उन्हीं का चिन्तन हुआ।"

काशी

१९२७-२८

काशी में रहने के समय महापुरुष महाराज ने लगभग पचास भक्त स्त्री-पुरुषों को मन्त्रदीक्षा दी थी। काशी शिव-क्षेत्र है, इसलिए इससे पहले स्वामी ब्रह्मानन्द महाराज अथवा

‡ आज या सौ वर्ष बाद यह तो सरकार (ईश्वर) द्वारा जब्त हो जायगी (अर्थात् जीवन का अन्त हो जायगा)। अभी एकनिष्ठ भाव से जितना हो सके, फसल काट लो।

स्वामी सारदानन्द महाराज आदि ठाकुर के अन्तरंग शिष्यों में से किन्हीं ने भी काशी में मन्त्रदीक्षा नहीं दी थी। फिर महापुरुष महाराज ने इस नियम का उल्लंघन क्यों किया—यह सोचकर अनेक साधु और सेवकों के मन में एक अज्ञात सन्देह-सा उत्पन्न हुआ था। उस सन्देह का निराकरण करने के लिए एक सेवक ने उनसे पूछा, "महाराज, हम लोगों के मन में एक सन्देह उत्पन्न हुआ है, आप दया करके उसका समाधान कर दें। सुना था कि राजा महाराज आदि कोई भी काशी में दीक्षा नहीं देते थे; पर आप तो यहाँ दीक्षा दे रहे हैं?"

सेवक का यह प्रश्न सुनकर वे कुछ देर तक खूब गम्भीर और मौन हो रहे। बाद में धीरे-धीरे बोले, "देखो बच्चा, मैं दीक्षा देता हूँ यह बुद्धि मुझमें बिलकुल नहीं है। ठाकुर ने कृपा करके मुझमें गुरुबुद्धि कभी भी नहीं दी। जगद्गुरु तो हैं शंकर—और इस युग में ठाकुर। वे भक्तों के प्राणों में प्रेरणा करके यहाँ ले आते हैं; और वे ही मेरे भीतर प्रवेश कर जो कहलाते हैं, वह मैं कह देता हूँ, बस इतना ही। ठाकुर मेरी अन्तरात्मा हैं।"

* * * *

काशी में अद्वैताश्रम के दुमंजिले मकान में, ऊपर कोने के एक कमरे में महापुरुष महाराज रहते थे। शीतकाल था। अनेक साधु और ब्रह्मचारियों से दोनों आश्रम भरपूर थे। बहुत से तो महापुरुषजी के पवित्र संग के लाभार्थ भी वहाँ आए हुए थे। प्रतिदिन भक्तों की खूब भीड़ लगी रहती थी—मानो कोई उत्सव या आनन्द का मेला हो। एक दिन प्रातःकाल प्रतिदिन के समान जब दोनों आश्रम के साधुगण एक-एक करके

उन्हें प्रणाम कर आशीर्वाद पाकर लौट रहे थे, उसी सम
एक संन्यासी को लक्ष्य करके उन्होंने कहा, "देखो, कल रा
बड़ा मजा हुआ। गम्भीर रात थी। मैं सोया हुआ था। एका
एक देखता हूँ कि जटाजूटधारी, त्रिनयन एक श्वेतकाय पुरु
सामने आकर खड़े हुए; उनकी दिव्य कान्ति से चारों दिशा
आलोकित हो रही हैं। अहा! कैसी सुन्दर कमनीय मूर्ति
थी,—कैसी सकरुण उनकी दृष्टि थी! उनको देखते ही भीतर
से महावायु एकदम गर-गर करके ऊपर की ओर उठने लगी—
क्रमशः ध्यानस्थ हो गया, फिर आनन्द का क्या कहना! इसी
समय देखता हूँ कि वह मूर्ति धीरे-धीरे विलीन हो गई और
उसके स्थान पर ठाकुर खड़े हैं—सहास्यवदन। मुझे हाथ से
संकेत करते हुए बोले, 'तुझे अभी भी रहना होगा, और भी
कुछ समय शेष है।' ठाकुर के यह कहते ही मन फिर नीचे
की ओर आने लगा और क्रमशः वायु की क्रिया भी चलने लगी।
सब उनकी इच्छा है। किन्तु मैं बड़े आनन्द में था। वे और
कोई नहीं हैं, साक्षात् विश्वनाथ हैं।"

संन्यासी—"आपने क्या स्वप्न में दर्शन किए थे?"

महापुरुषजी—"नहीं, जागे-जागे।"

इतना कहकर उन्होंने उस प्रसंग को वहीं दबाकर अन्य प्रसंग छेड़ दिया।

वेलुड़ मठ

मंगलवार, ६ मार्च, १९२८

आज होली है। प्रभात से ही खूब कीर्तन हो रहा है।

मठ के साधु-ब्रह्मचारी लोग और भक्तगण सभी इस उत्सव में संलग्न हैं। इसी समय दक्षिणेश्वर से श्रीश्रीठाकुर के भतीजे रामलाल दादा आ पहुँचे। अपने बीच उन्हें पाकर सबका उत्साह मानो सौगुना बढ़ गया। वे भी कीर्तन में योग देने लगे। उन्हे साड़ी पहना दी गई। वे स्त्री-वेश मे नृत्य कर रहे हैं। गान चल रहा है —

'खेलिबो होली श्याम तोमारि सने।
(तोमाय) एँकला पेयेछि आज निधुबने।'* इत्यादि।

सभी रामलाल दादा को घेरकर नृत्य कर रहे हैं। आनन्द की हाट लगी हुई है। कुछ देर बाद साड़ी पहने ही दादा महापुरुष महाराज से मिलने गए। महापुरुषजी पहले तो उन्हे इस वेश में पहचान ही न सके।

सन्ध्या समय एक भक्त ने अपने छोटे लड़के द्वारा प्रणाम कराकर महापुरुषजी से कहा, "महाराज, आशीर्वाद दीजिए, जिससे इसका कल्याण हो और लड़का अच्छा बने।"

महाराज—"पहले तुम लोग स्वयं जिससे अच्छे बन सको, वही करो। तुम लोगों के अच्छे बनने से ही बच्चे भी अच्छे होंगे।"

शाम हो रही है। महापुरुषजी छत के ऊपर टहल रहे हैं। आरती की तैयारी हो रही है। इसी समय रामलाल दादा छत पर आए। उन्हें देखते ही महापुरुषजी हँसते-हँसते बोले, "आओ दादा, सबेरे तो तुम्हारी खूब वेश-भूषा थी! पहले तो मै तुम्हें पहचान ही न सका। सोचा कि यह और किसके

* हे श्याम, आज मैं तुम्हारे साथ होली खेलूँगी। मैंने तो आज तुम्हें निधुवन में अकेला पा लिया है।

घर की कन्या आ गई ? अन्त में देखा, अरे, यह तो रामलाल दादा हैं !" दोनों हँसने लगे। बाद में रामलाल दादा ने पूछा, "आज क्या बहुत लोगों की दीक्षा हुई है ?"

महाराज —"हाँ, दादा।"

दादा —"बहुत देर तक एकासन में बैठे रहने से आपको आज अवश्य ही बहुत कष्ट हुआ होगा ?"

महाराज —"कष्ट कहाँ ? यह तो आनन्द है। ठाकुर का नाम सुनाऊँ, यह कितने आनन्द की बात है। कितने लोग उनका नाम सुनने के लिए भक्तिभाव से आते हैं ! लोगों की व्याकुलता और आग्रह देखकर और चुप नहीं रहा जाता। ठाकुर ही तो उन्हें खींचकर लाते हैं। जब तक यह शरीर रहेगा, उनका नाम सुनाऊँगा, उनकी बात कहूँगा। इसी लिए तो ठाकुर ने जीवित रखा है।"

दादा —"आपका शरीर दया का है, इसी लिए कष्ट सहकर भी यह सब करते हैं।"

कुछ समय तक दोनों चुप रहे। फिर महापुरुषजी बड़े गम्भीर भाव से धीरे-धीरे बोले, "हाँ दादा। ठाकुर ईश्वर हैं, यह बात जैसे-जैसे दिन बीत रहे हैं, वैसे-वैसे अधिक अच्छी तरह जान पा रहा हूँ। पहले ठाकुर के स्नेह-बन्धन से ही हम लोग उनके पास थे। अब देखता हूँ, अरे बाबा ! देखने में तो छोटे-से आदमी — साधारण मनुष्य के समान ही चलते-फिरते थे, लेकिन वे कितने विराट् हैं ! न जाने कितने विश्व-ब्रह्माण्ड उनके अन्दर हैं !"

दादा —"मेरे मन में भी ऐसा ही होता था। बीच-बीच में देखता था कि मन के ऊपर बिजली-सा एक प्रकाश खेल गया। किन्तु दूसरे ही क्षण फिर आवरण पड़ जाता, सन्देह

आदि अनेक बातें आकर उसे ढक देतीं। एक दिन ठाकुर से पूछा, 'ऐसा क्यों होता है?' इस पर ठाकुर बोले, 'नहीं तो यहाँ का काम (उनकी सेवा आदि) कैसे चलेगा और काली-मन्दिर की पूजा भी कैसे होगी? और तुम्हारे सम्बन्धी स्त्री-पुरुषों की देख-रेख भी कौन करेगा?' "

महाराज—"हाँ, ठीक तो है। नहीं तो उनकी लीला जो नहीं चलती।"

दादा—"अब उनके भक्तों की संख्या बढ़ गई है। इधर कुछ वर्षों के भीतर ही उनका कितना भाव-विस्तार हो गया है। जिन लोगो की भाषा भी मैं नही जानता, ऐसे कितने ही लोग अनेक देशों से आ-आकर पंचवटी के नीचे लोट-पोट होते हैं! वहाँ की रज ले जाते है, पीपल और बेल के पत्ते ले जाते है।"

इसी समय आरती प्रारम्भ हो गई। साधु-भक्त लोग एक स्वर से "खण्डन-भवबन्धन जगवन्दन वन्दि तोमाय····" गा रहे हैं।

दादा—"यह स्तोत्र सुनने में बड़ा अच्छा लगता है। मैं जब कभी सुनता हूँ, जान पड़ता है मानो ठाकुर गम्भीर समाधि में खड़े हैं, और उनके भक्त लोग उनको घेरे हुए यह स्तोत्र गा रहे हैं। अच्छा, चलूँ, पूजा-घर जाऊँ।"

यह कहकर रामलाल दादा मन्दिर में चले गए।

महापुरुष महाराज इस स्तोत्र के सम्बन्ध में कहने लगे, "पहले मठ में आरती के समय यह स्तोत्र नही गाया जाता था। तब 'जय शिव ॐकार, जय शिव ॐकार' इत्यादि बार-बार गाया जाता था। उसके बाद स्वामीजी ने 'खण्डन-भवबन्धन' इस स्तोत्र की रचना की। उसे

स्वर-बद्ध किया और सबको साथ लेकर गाना शुरू किया। वे स्वयं पखावज लेकर गाते थे। वह कैसा अद्भुत दृश्य था! एक तो उनका भैरव के समान दिव्यकान्ति-पूर्ण शरीर; फिर उसके ऊपर भाव में मस्त होकर, पखावज लेकर जब वे गाते थे, तो वह कैसा अद्भुत दृश्य होता था, कैसे वर्णन करूँ!"

बेलुड़ मठ
अप्रैल, १९२८

इस बार श्रीकाशीधाम से लौटकर महापुरुष महाराज का शरीर उतना अच्छा नहीं है। बहुधा सिर में चक्कर आया करता है, अधिक चल-फिर नहीं सकते — चलने से पैर काँपता है। शरीर की बात पूछने पर कहते हैं, "शरीर ठीक नहीं। एक-न-एक रोग लगा ही रहता है। यह सब नोटिस है। शरीर अब अधिक दिन नहीं चलेगा, इसकी नोटिस दी जा रही है। सो हम भी ready (तैयार) हैं, we are ever ready to jump into the Mother's lap (माँ की गोद में कूद पड़ने के लिए हम सदा प्रस्तुत हैं)। श्रीगुरु की कृपा से यह अच्छी तरह जान गया हूँ कि मैं यह शरीर नहीं हूँ। यह ज्ञान उन्होंने खूब पक्का कर दिया है।"

बेलुड़ मठ
शनिवार, ७ जुलाई, १९२८

महापुरुष महाराज अपने कमरे में बैठे मठ के एक संन्यासी

के साथ बातचीत कर रहे हैं। अन्य कई साधु-ब्रह्मचारी भी उपस्थित हैं। बातचीत के सिलसिले में उन संन्यासी ने कहा, "Emotion (भाव) ही सब कुछ है, reason (विचार) केवल थोड़ा रास्ता दिखा देता है। हरि महाराज भी कहा करते थे कि emotion (भाव) ही मनुष्य को धर्म-पथ में खींच ले जाता है, और intellect (बुद्धि) सामान्य सहायता मात्र करती है; केवल विचार या बुद्धि द्वारा ही धर्म नहीं समझा जा सकता।"

महाराज—"धर्म है अनुभूति की वस्तु—उपलब्धि की वस्तु। स्वामीजी जैसा कहते थे, 'Religion is realisation'—अनुभूति ही धर्म है। उससे पहले तक intellect (बुद्धि) का क्षेत्र है, किन्तु केवल बुद्धि के क्षेत्र मे ठीक-ठीक धर्म-जीवन प्रारम्भ नही होता। ठाकुर साधारण भाषा में जैसा कहा करते थे, 'घड़ा जब तक भरता नहीं, तभी तक भक्-भक् शब्द करता है, किन्तु एक बार भर जाने पर फिर बिलकुल चुप हो जाता है।' कैसी सुन्दर उपमा है! उनकी छोटी-छोटी बातों में कितना गूढ़ अर्थ भरा है! उपनिषदों में भी कहा है, 'नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो, न मेधया न बहुना श्रुतेन।'*—'केवल प्रवचन अथवा शास्त्र-व्याख्या के द्वारा इस आत्मा को प्राप्त नही किया जा सकता और न मेधा अथवा बहुविध शास्त्राध्ययन के द्वारा ही।' ठीक ही बात है। भला मनुष्य अपनी इस क्षुद्र बुद्धि द्वारा उसे क्या जान सकता है? असम्भव। इसी लिए तो ठाकुर गाया करते थे, 'के जानेरे काली केमन,

* कठोपनिषद्—१।२।२३

षड्दर्शने ना पाय दरशन।'† " यह कहकर महापुरुषजी बड़े तन्मय भाव से इस गान को गाने लगे। 'महाकाल जेनेछे कालीर मर्म, अन्य केवा जाने तेमन ?'‡ इसी अंश को बार-बार दुहराने लगे। थोड़ी देर बाद मानो सोए से जगे हुए के समान बोले, "Intellect (बुद्धि) द्वारा मनुष्य उस अव्यक्त को क्या जानेगा ? वे महामाया कृपा करके यदि आवरण थोड़ा सा हटा दें, तभी कुछ हो सकेगा। ऋग्वेद के 'नासदीय सूक्त' में उस अव्यक्त अवस्था का बड़ा सुन्दर वर्णन है।"

यह कहकर महापुरुषजी सस्वर उच्चारण करने लगे—

'नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं
नासीद्रजो नो व्योमा परो यत्।
किमावरीवः कुह कस्य शर्म-
न्नम्भः किमासीत् गहनं गभीरम्॥'

"अहा, क्या चमत्कार है! इस टेबिल के ऊपर रखी एक कापी में सब लिखा हुआ है। मैं बीच-बीच में पढ़ता हूँ—ठीक गम्भीर ध्यान की अवस्था इसमें वर्णित है। पढ़ो तो एक बार।"

आज्ञानुसार उस कापी से एक संन्यासी 'नासदीय सूक्त' का पाठ कर रहे हैं। महापुरुषजी भी साथ-साथ आवृत्ति कर रहे हैं।

---

† कौन जाने, काली कैसी है? षड्दर्शन भी उसके दर्शन नहीं पाते।

‡ महाकाल ने काली के रहस्य को जान लिया है। अन्य कोई क्या इस प्रकार जानता है?

'न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि
न राज्या अह्न आसीत् प्रकेतः।
आनीदवातं स्वधया तदेकं
तस्माद्धान्यन्न परः किं च नास ॥
तम आसीत्तमसा गूढमग्रेऽ-
प्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम्।
तुच्छ्येनाभ्वपिहितं यदासीत्
तपसस्तन्महिनाजायतैकम् ॥

* * *

इयं विसृष्टिर्यत आबभूव
यदि वा दधे यदि वा न।
यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन्त्-
सो अंग वेद यदि वा न वेद ॥'

सूक्त पढ़ना समाप्त हो गया। उपस्थित व्यक्तियों के चित्त एक शान्त गाम्भीर्य से परिपूर्ण हो उठे। महापुरुषजी ने तब इसका भाषानुवाद पढ़ने की आज्ञा दी।

'उस समय, जो नही है वह भी नहीं था, जो है वह भी नहीं था—पृथ्वी भी नहीं थी, अत्यन्त विस्तारपूर्ण आकाश भी नहीं था—जो आवरण किए हुए हो ऐसा क्या था? किसका कहाँ स्थान था? तब क्या दुर्गम और गभीर जल का अस्तित्व था?

'तब न मरण था, न अमरत्व। दिन और रात का भेद नही था। केवल वे ही एकमात्र वस्तु, वायु की सहायता बिना ही केवल आत्मा का अवलम्बन कर निश्वास-प्रश्वासयुक्त हो जीवित थे। उनको छोड़ और कुछ भी नहीं था। सर्वप्रथम

अन्धकार के द्वारा अन्धकार आवृत था, कहीं कोई चिह्न न था और चारों ओर जल ही जल था, अविद्यमान वस्तु के द्वारा वे सर्वव्यापी आच्छन्न थे। तपस्या के प्रभाव से उन्हीं एक वस्तु का जन्म हुआ।

'यह नानाविध सृष्टि कहाँ से हुई — किससे हुई; किसी ने बनाई, अथवा नहीं, यह सब वे ही जानते हैं, जो इसके प्रभुस्वरूप हैं और परमधाम में हैं। अथवा वे भी सम्भवतः न जानते हों।'

अनुवाद-पाठ समाप्त होने पर महापुरुष महाराज बोले, "देखो, यह सब अत्यन्त उच्च अवस्था का वर्णन है। योगी लोग ध्यान में निमग्नचित्त होकर इसकी उपलब्धि करते हैं। यह अवाङ्मनसगोचर अवस्था का वर्णन है। स्वामीजी 'नासदीय सूक्त' की आवृत्ति खूब करते थे। वे स्वरसहित वैदिक छन्दों का इतना सुन्दर पाठ करते थे कि जान पड़ता था, मानो कोई वैदिक ऋषि अपनी सब अनुभूति कह रहे हैं। 'तम आसीत्तमसा गूढमग्रेऽप्रकेतम्' इत्यादि श्लोक की आवृत्ति कर वे कहते थे कि ऐसा कवित्व और किसी भाषा में नहीं है। वे इस श्लोक को बहुत पसन्द करते थे। उनकी किसी रचना में भी यह भाव बड़े सुन्दर रूप से व्यक्त हुआ है।"

सन्यासी — "हाँ महाराज, 'वीरवाणी' में है — 'अन्धकार उगरे आंधार, हुहुंकार श्वासिछे प्रलय वायु' — इत्यादि।" *

महाराज — "हाँ, यह 'अन्धकार उगरे आंधार' कैसा

---

* अन्धकार उद्‌गीरण करता अन्धकार घन घोर अपार।
महाप्रलय की वायु सुनाती साँसों में अगणित हुंकार॥
— 'कवितावली'

सुन्दर expression (भावप्रकाश) हैं! यह सब प्रलय-अवस्था का वर्णन है। वे ही unmanifested (अव्यक्त) अवस्था से बाद में क्रमशः सबमें manifested (व्यक्त) हुए हैं।"

बेलुड़ मठ

शुक्रवार, ७ दिसम्बर, १९२८

सन्ध्या समय महापुरुष महाराज पूर्व की ओरवाले बरामदे में बैठे हैं। ५॥ बजे हैं। जाड़ों के दिन है, शरीर पर एक पतला फ्लानेल का कुर्ता पहने हैं। Blood pressure (रक्त-चाप) अधिक होने के कारण शरीर पर गरम कुर्ता नहीं पहन सकते; रात में भी बिलकुल साधारण-सा ही ओढ़ना रखते हैं। कुछ युवक भक्त आए हुए हैं। वे सब एक संस्था में शिक्षक हैं। उनके प्रणाम आदि करने के बाद महापुरुषजी ने उनके विद्यालय के सम्बन्ध में कुछ प्रश्न आदि किए—पठन-पाठन कैसा हो रहा है, लड़कों के लिए खेलने आदि की व्यवस्था है या नहीं, आदि-आदि। उसके बाद अन्तर्मुखी भाव में कुछ क्षण चुपचाप बैठे हैं। कभी एकटक गंगा की ओर ताकते हैं, और कभी आँखें अधखुली हैं। बाद में धीरे-धीरे सबकी ओर देखकर पूछने लगे, "अच्छा, तुम लोग नित्य थोड़ा-थोड़ा जप-ध्यान तो करते हो न?"

एक भक्त—"जी हाँ, महाराज।"

महाराज—"कब करते हो?"

भक्त—"सन्ध्या समय स्कूल का सब कार्य समाप्त कर

कुछ विश्राम के बाद पूजा-घर में जाकर जप-ध्यान करता हूँ
जिस दिन सबेरे विशेष काम-काज नहीं रहता, उस दिन सबे
भी पूजा-घर मे जाता हूँ। यदि सुबह वक्त नहीं मिलता, त
दोपहर में स्कूल जाते समय पूजा-घर में जाकर कम-से-कम ए
बार ठाकुर को प्रणाम कर आता हूँ।"

महाराज—"ठाकुर को प्रणाम तो करोगे ही, साथ ही थोड़ा ध्यान भी करना। रात ही जप-ध्यान का सर्वोत्तम समय है। जितनी भी देर के लिए हो सके, एक बार अपने को सब काम-काज से अलग कर लेना। उस समय मन से सब विचारों को झाड़कर फेंक देना। अपने को सबसे खींचकर आत्मस्थ हो जाना। सन्ध्या समय कम-से-कम इतना तो करना ही चाहिए—चाहे जितनी भी देर के लिए हो। काम-काज, संसार के सुख-दुःख, ये सब तो लगे ही रहते हैं। किन्तु ये सभी अनित्य हैं—सभी दो दिन के लिए हैं। संसार अनित्य है—इससे निश्चित और कुछ नहीं है। अवश्य, तुम लोग जो कर रहे हो, वह बहुत अच्छा काम है। किन्तु इस काम से भी मन को अन्ततः एक क्षण के लिए हटाकर श्रीभगवान के पादपद्मों में अर्पित करना चाहिए। उस समय एकमात्र उन्हीं परमपिता परमेश्वर के नित्य सत्य मंगल रूप में डूब जाना। उस समय मन में केवल वे भगवान ही रहें, जीव-जगत् की कोई भावना न रहे, यहाँ तक कि अपना भी ख्याल हट जाय। और प्रार्थना करना, 'हे प्रभु, मुझे भक्ति-विश्वास दो, ज्ञान दो, और अपनी भुवनमोहिनी माया में मुग्ध मत करो।' हृदय से यह प्रार्थना करना। उनका ऐसा ध्यान करना कि उनके साथ बिलकुल एक हो जाना—भेद-ज्ञान बिलकुल न रहे। यह करना

चाहिए। फिर कहता हूँ, बच्चो, सन्ध्या समय जितनी देर
लए भी हो सके, एक बार सब भूलकर उनके साथ एक हो
ा ही होगा। हो सकता है, पहले-पहल जरा कष्ट हो,
शायद कुछ दिन न भी कर सको। पर इसी कारण छोड़
देना। खूब प्रार्थना करना, तभी वे शान्ति देंगे। वे ही
करके तुम्हारे मन में बल देंगे और अपने साथ एक कर
। ध्यान करने से मन की शान्ति बढ़ेगी और तभी उस मन
थार्थ परोपकार सम्भव होगा। यह दृढ़ रूप से जान रखो कि
जगत् उन्हीं का है, जीव उन्हीं के हैं, सृष्टि उन्हीं ने की है।
लोग उनके दास हो। वे कृपा करके तुम्हारे द्वारा अपने
ों की जितनी सेवा करा लें, उतना ही तुम लोग धन्य
। भगवान का ध्यान करते-करते अहंकार बिलकुल नष्ट हो
गा; तब केवल वे-ही-वे रह जायेंगे। मन की जब यह
स्था हो जायगी, तभी तुम्हारे द्वारा ठीक-ठीक परोपकार
सकेगा।"

बेलुड़ मठ

शनिवार, १६ मार्च, १९२९

तीन दिन हुए श्रीश्रीठाकुर की तिथि-पूजा बड़े समारोह
साथ सम्पन्न हो गई है। इस उपलक्ष्य में मठ में सत्रह
चारी संन्यास-धर्म में दीक्षित हुए हैं और इक्कीस युवकों ने
चर्य-व्रत ग्रहण किया है। वहाँ होम आदि के समय महापुरुष
राज भी उपस्थित थे। तभी से, सुबह ठण्ड लगने से,
हें जुकाम हो गया है। आज तबीयत कुछ अच्छी है। प्रातः-

काल मन खूब प्रफुल्ल है, यद्यपि शरीर ठीक नहीं है। अनेक प्रकार की बातें हो रही हैं। अकस्मात् एक नवदीक्षित संन्यासी को लक्ष्य कर हँसते-हँसते महापुरुषजी ने पूछा, "तुम्हारा क्या नाम रखा गया है?" एक दूसरे संन्यासी ने उस नवदीक्षित संन्यासी का नाम बताया। तब महापुरुषजी खूब गम्भीर हो बोले, "बच्चा, इसके बाद जो होना है, वह भगवान की कृपा बिना नही हो सकता। संन्यास लेना तो सरल है, किन्तु परा-भक्ति, परमज्ञान — यह सब उनकी विशेष कृपा के बिना नहीं होता। हाँ, यदि कोई व्याकुल होकर चाहता है, तो वे दे भी देते हैं। पूर्ण ज्ञान और भक्ति यदि न हुई, तो खाली गेरुआ वस्त्र पहनने से क्या लाभ? पश्चिम भारत में तो देखा है — काशी, हरिद्वार आदि स्थानों में। वहाँ अनेक मठ हैं और वहाँ के लोग कुछ सीधा, कुछ नए कपड़े या एक-आध रुपया लेकर किसी महन्त के पास जाते है और कहते हैं, 'बाबा, बीजा होम कर दो।' 'विरजा होम' भी वे ठीक-ठीक उच्चारण नहीं कर पाते, कहते है 'बीजा होम'। और महन्त भी 'बीजा' होम कर देता है। बस, वह संन्यासी-चेला हो गया। उसके बाद भीख माँगकर खाता है और पड़ा रहता है। और कभी-कभी व्यवसाय या तिजारती काम भी कर लेता है। इस प्रकार के लाखों संन्यासी हैं। किन्तु, बच्चा, वास्तविक मुमुक्षु कितने है? संन्यासी बनूँगा, विरजा करूँगा, मन्त्र पढ़ूँगा,— इन सबके लिए लोगों को जितनी व्याकुलता होती है, उतनी यदि भगवत्प्राप्ति के लिए हो, तो वह व्यक्ति धन्य है, महा भाग्यवान है! यह सब छोड़-छाड़कर जो भगवान को चाहता है, वह महाधन्य है! किन्तु ऐसों की संख्या बहुत कम है।

जिनकी यह अवस्था हो गई है, वे बाह्य वेश की ओर ध्यान नहीं देते। कपड़े सादे हों अथवा गेरुआ। बच्चा, तुम सब असली वस्तु की ओर नजर डालो।"

नवदीक्षित संन्यासी ने बड़े कातर भाव से महापुरुषजी से आशीर्वाद और कृपा की याचना की। इस पर उन्होंने कहा, "बच्चा, हम लोग तो खूब प्रार्थना करते हैं। तुम लोगों को भक्ति-विश्वास हो, परमज्ञान मिले, मुक्त हो जाओ, तुम लोग सब जीवन्मुक्त हो जाओ। जय प्रभु करुणामय, दीनशरण ठाकुर!"

पिछले दिन नवदीक्षित संन्यासियों में से कोई-कोई मधुकरी करने गए थे। उसी प्रसंग में महापुरुषजी बोले, "इस ओर मधुकरी की चाल नहीं है।" फिर कुछ देर चुप रहकर खूब आवेग के साथ कहने लगे, "तुम्हारे चरणों में ये सब मुमुक्षुगण एकत्र हुए हैं; ठाकुर, इन सबको भक्ति-विश्वास दो, इन्हें पूर्ण बना दो।"

बेलुड़ मठ

रविवार, १७ मार्च, १९२९

आज श्रीश्रीठाकुर का विराट् जन्ममहोत्सव है। महापुरुष महाराज का शरीर ठीक नहीं है। जुकाम बहुत तेज है। पिछली रात नींद साधारण ठीक ही हुई। महापुरुषजी के श्रीचरण-दर्शनार्थी अनेक भक्त तड़के से ही आने लगे हैं, क्योंकि जानते हैं कि देर हो जाने पर फिर दर्शन में सुविधा नहीं रहती। एक वृद्ध भक्त के प्रणाम करने तथा कुशल-प्रश्न के

बाद महाराज बड़े प्रफुल्लचित्त हो बोले, "शरीर बिलकुल ठीक नहीं।"

भक्त—"क्या हुआ महाराज? रात को क्या नींद ठीक नहीं हुई?"

महाराज—"नहीं, नींद तो ठीक ही हुई थी, फिर भी जानते तो हो, वृद्ध शरीर है, नाना complaints (उपसर्ग) लगे ही रहते हैं। शरीर तो छः विकारों * से भरा है न! देह का धर्म ही ऐसा है। इस समय अन्तिम विकार 'नश्यति' (विनाश) की ओर चल रहा है। अवश्य ही ये सब विकार देह के ही हैं। परमात्मा, जो अन्तर में हैं, जैसे हैं वैसे ही रहते हैं; उन्हें ये सब affect (अभिभूत) नहीं कर सकते। जो देही हैं, वे जैसे-के-तैसे ही हैं। शरीर तो आत्मा नहीं है। ठाकुर ने कृपा करके यह ज्ञान दे दिया है। अब शरीर जाय या रहे।" कुछ देर आँखें बन्द कर फिर ठठाकर बोल उठे, "ठाकुर ने भीतर में पूर्ण ज्ञान दे दिया है। अब उनकी इच्छा होगी तो शरीर रहेगा, नहीं तो चला जायगा। उनकी जैसी इच्छा। और फिर इस देह की आयु भी तो कम नहीं है!"

बेलुड़ मठ

मंगलवार, १९ मार्च, १९२९

पूजनीय महापुरुष महाराज का शरीर आज उतना स्वस्थ नहीं है। दो दिन पहले रविवार के दिन श्रीश्रीठाकुर का विराट् उत्सव बड़े समारोह के साथ सम्पन्न हो गया है। लगभग डेढ़ लाख

* जन्म, अस्तित्व, वृद्धि, परिणति, क्षय और विनाश।

क्तियों ने इस उत्सवानन्द में भाग लिया था। उस दिन सवेरे ड़के से ही काफी रात बीते तक असंख्य भक्त स्त्री-पुरुष महापुरुषजी दर्शन कर कृतार्थ हुए थे। भक्तों के लिए उस दिन सब समय रोक-टोक प्रवेश था। महापुरुषजी भी ठाकुर के भाव में इतने मत्त गए थे कि शरीर की ओर उनका बिलकुल ही ध्यान न था— नो दैव-बल से बलवान हो अथक रूप से सभी के साथ आनन्द-र्वक ठाकुर की चर्चा कर रहे थे तथा अनेकविध धर्मोपदेश देकर क्तों के प्राणों में विमल आनन्द-सुधा का संचार कर रहे थे। स दिन अधिक थक जाने के कारण आज शरीर और भी अधिक स्वस्थ है; किन्तु वे सदा प्रफुल्ल हैं, सर्वदा आनन्दमय हैं।

आज सवेरे से ही मठ के सब साधु-ब्रह्मचारी एक-एक करके क्तिपूर्ण नम्र भाव से महापुरुष महाराज के कमरे में एकत्रित रहे हैं। वे सबसे कुशल-प्रश्न पूछ रहे हैं। एक सन्यासी के पड़े जीर्ण देखकर उसी समय उन्होंने निकटस्थ एक सेवक को दिश दिया कि इन्हें एक नूतन वस्त्र दिया जाय। साथ ही यह भी कहा, "साधुओं में किसी को कुछ चाहिए अथवा नहीं, तनी भी खोज-खबर तुम लोग नहीं रख सकते?"

इतने में एक वृद्ध संन्यासी आए। उन्हें देखते ही महापुरुषजी ने "ॐ नमः शिवाय, जय माँ" कहकर अभिवादन किया। प्रसंगवश दक्षिणेश्वर के सम्बन्ध में बात उठी। नवदीक्षित संन्यासी और ब्रह्मचारीगण आज दक्षिणेश्वर में माँ के दर्शन करने जायेंगे और समस्त दिन वहीं पर ध्यान-भजन आदि में व्यतीत करेंगे। मन्दिर के परिचालकों ने वहाँ पर तीस साधुओं के लिए प्रसाद की व्यवस्था की है। यह सब सुनकर महापुरुष महाराज अत्यन्त प्रफुल्ल होकर बोले, "दक्षिणेश्वर हम लोगों का भू-स्वर्ग है, हम

लोगों का कैलास है, वैकुण्ठ है। वह क्या कोई छोटा-मोटा स्थान है? पंचवटी महान् सिद्धपीठ है। इस पंचवटी में ठाकुर को कितने भाव-महाभाव हुए थे! ठाकुर ने बारह वर्ष तक कितने विभिन्न भावों की साधना इस दक्षिणेश्वर में की थी! कितने दिव्य दर्शन, कितने दिव्य अनुभव उनको वहाँ पर हुए थे, जिनकी तुलना हो ही नहीं सकती। किसी अन्य अवतारी पुरुष के जीवन में इतने कठोर एवं विभिन्न भावों की साधना तथा इतनी उच्च आध्यात्मिक अनुभूति की बात धर्म के इतिहास में नहीं पाई जाती। ठाकुर कहते थे, 'यहाँ की सभी अनुभूतियाँ वेद-वेदान्त से ऊपर उठ गई हैं।' इसी लिए तो स्वामीजी ने ठाकुर को लक्ष्य कर कहा है—'अवतारवरिष्ठाय।' ठाकुर ने वृन्दावन की धूलि लाकर पंचवटी में छिटका दी थी। दक्षिणेश्वर का प्रत्येक रजकण पवित्र है। स्वयं श्रीभगवान के चरण-स्पर्श से दक्षिणेश्वर महातीर्थ-रूप में परिणत हो गया है। क्या अद्वैतवादी, क्या द्वैतवादी, शाक्त अथवा वैष्णव, शैव या तान्त्रिक—सभी के लिए दक्षिणेश्वर महापीठ है; क्योंकि ठाकुर ने सभी भावों की साधना कर यहाँ पर सिद्धि-लाभ किया था। इस बार भगवान के महान् सात्विक भाव का विकास हुआ है। स्वयं आद्याशक्ति, समग्र विश्व-ब्रह्माण्ड की आधारभूत जगज्जननी ने ठाकुर के शरीर का आश्रय लेकर लीला की है। ठाकुर की अलौकिक तपस्या से 'भूर्भुवः स्वः' इत्यादि लोकसमूह तक उपकृत होंगे। ओह, शक्ति का कैसा खेल है!" और यह कहते-कहते महापुरुषजी का समग्र मुखमण्डल प्रदीप्त हो उठा और वे सिर नवाकर गम्भीर भाव से बैठे रहे।

दोपहर के समय महापुरुषजी भोजन करने के लिए बैठे ही

थे कि उसी समय स्वामी ×× ने आकर प्रणाम करने के पश्चात् पूछा, "आपका शरीर आज कैसा है, महाराज ?"

महापुरुषजी कुछ देर तक शून्यदृष्टि से संन्यासी की ओर देखते रहे। बाद में सुप्तोत्थित के समान धीरे-धीरे बोले, "इस शरीर के विषय में पूछ रहे हो ? शरीर तो अब ढलता जा रहा है, कब क्या होगा कुछ ठीक नहीं। इस समय तुम लोग ठाकुर का सब काम-काज देख-समझ लो। जान पड़ता है इस बार ठाकुर मुझे छुट्टी देंगे। शरीर अन्दर से बिलकुल खोखला हो गया है, थोड़ा भी बल नहीं रहा। पर मन की शक्ति वे दिन-दिन खूब बढ़ाते जा रहे हैं। इस समय तो मैं निर्वाण के किनारे पर खड़ा हूँ— सामने देख रहा हूँ उस विराट् अनन्त धाम को। ठाकुर ने दया कर क्रमशः सब खोल दिया है— निर्वाण के मार्ग को साफ कर दिया है। बस, ठाकुर ने सब दिखला दिया है, परिपूर्ण कर दिया है, (आँखें मूँदकर) अब और कोई इच्छा नहीं—शरीर जाय या रहे।"

संन्यासी—"यह क्या महाराज ! हम लोगों की तो दृढ़ धारणा है कि ठाकुर बहुतों के कल्याणार्थ—इस संघ के कल्याणार्थ आपको और भी अधिक समय तक अवश्य रखेंगे। आजकल आप बहुत थक जाते हैं, इसी से शरीर अधिक खराब हो गया है। आपको जिससे किसी प्रकार की थकावट न हो, इसके लिए हम लोग बहुत चेष्टा कर रहे हैं। आपका शरीर जब तक है—बहुतों का कल्याण होता जा रहा है—हम लोग भी कितने निश्चिन्त हैं।"

महापुरुषजी—"तुम लोग मुझे खूब चाहते हो, यह मैं अच्छी तरह जानता हूँ और मैं भी तुम लोगों के समान साधु

भक्तों के साथ बड़े आनन्द में रहता हूँ। और यह भी मैंने खूब अच्छी तरह जान लिया है कि इस शरीर से उनका जितना कार्य होने का होगा, उसे वे येन केन प्रकारेण करा ही लेंगे; उससे पहले ठाकुर छोड़ेंगे नहीं। कभी-कभी सोचता हूँ ठाकुर ने इस शरीर को अभी भी क्यों रखा है? अवश्य उनका कोई गूढ़ उद्देश्य है। नहीं तो वे इस भग्न शरीर को लेकर अभी भी इतनी हलचल क्यों करते? मुझमें न विद्या है, न बुद्धि, और न बातचीत करने की कला है, फिर भी वे अपने इस भग्न यन्त्र के द्वारा कितना कार्य करा ले रहे हैं।"

स्वामी ×× अन्य प्रसंग उठाने की इच्छा से बोले, "गंगाधर महाराज को लाने के लिए तीन व्यक्ति गए हैं।"

महापुरुषजी—"हाँ, गंगाधर आए तो अच्छा है। ठाकुर का आदमी है, देखने से ही बहुत आनन्द होता है। उसे तो जब तक धर-पकड़कर न लाया जाय, तब तक तो वह आना ही नहीं चाहता। खोका (स्वामी सुबोधानन्द) भी तो आज आ रहा है। आह, खोका महाराज का स्वास्थ्य बहुत खराब हो गया है! तुम्हारा खाना-पीना हो चुका?"

संन्यासी—"जी नहीं, अभी नहीं हुआ है। आज सवेरे से ही आपके पास आना चाहता था, किन्तु ठीक समयानुसार उठ नहीं पाता—आपके पास तो प्रायः प्रत्येक समय ही भक्तों की भीड़ लगी रहती है।"

महापुरुषजी—"अच्छा, तो जाओ, खा लो; अधिक देरी न करो।"

स्वामी ×× चले गए। महापुरुषजी ने आँखें मूँदकर मन-ही-मन कहा, "प्रभु, सभी का कल्याण करो, सभी को चैतन्य कर दो।"

आहार के बाद एक सेवक ने उनको भोजन के आसन से सावधानी से उठाया। आजकल खुद होकर उठने में उन्हें बहुत कष्ट होता है। वे धीरे-धीरे कुर्सी पर बैठे। उनके कमरे के सामने की ओर एक सन्यासी सुराही से जल लेकर पी रहे थे। यह देखकर वे बोले, "क्या XX, तुम.... इस बार जा रहे हो?"

संन्यासी—"जी हाँ। आगामी बृहस्पतिवार को जाने का विचार है।"

दीर्घ निःश्वास छोड़ते हुए महापुरुषजी बोले, "तो जाओ। सभी चले जायँगे। यही तो संसार है। दो दिन के लिए मेल-मुलाकात है, उसके बाद कौन कहाँ? एकमात्र परमानन्दमयी माँ ही सत्य है, और सब तो दो दिन के हैं। सृष्टि प्रवाह-रूप से नित्य निरन्तर चल रही है, कही विराम नही। इस सब सृष्टि के परे नित्यानन्दमयी माँ हैं—वाक्य-मन से अतीत, 'यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह'।" *

बेलुड़ मठ

बुधवार, २० मार्च, १९२९

प्रातःकाल एक मद्रासी संन्यासी आए हैं। उनके प्रणाम करने के पश्चात् महापुरुष महाराज ने कहा, "'Blessed are those who have not seen me but have faith in me' (जिन लोगों ने मुझे देखा नही है, किन्तु मुझमें विश्वास रखते हैं, वे धन्य हैं)। You are really blessed; though you have not seen Thakur, still you have faith in him

* तैत्तिरीय उपनिषद्—२।४।१

(तुम वास्तव में भाग्यवान हो, तुमने ठाकुर को देखा नहीं, फिर भी तुम्हारा उनमें विश्वास है)।"

अपराह्न काल में एक भक्त ने आकर महापुरुष महाराज को प्रणाम किया और हाथ जोड़कर कहा, "महाराज, आशीर्वाद दीजिए।" महाराज ने उत्तर में कहा, "हाँ, हाँ, आशीर्वाद तो दे ही रहा हूँ, खूब आशीर्वाद देता हूँ। We have blessings only, no curse (हम लोगों का तो केवल आशीर्वाद ही है — अभिशाप कभी नहीं)। बच्चा, हम लोगों का तो आशीर्वाद छोड़ और कुछ है ही नहीं!"

वेलुड़ मठ

शुक्रवार, २२ मार्च, १९२९

महापुरुषजी दोपहर के समय अपने कमरे में चौकी पर आहार करने के लिए बैठे हैं। भोजन प्रायः समाप्त हो चुका है। इसी समय खिड़की में से उन्होंने देखा कि एक मोची मठ के प्रांगण में आम्र वृक्ष के नीचे बैठकर मठ के साधु-ब्रह्मचारियों के जूतों की सिलाई कर रहा है। भोजन समाप्त कर हाथ-मुँह धोकर एक सेवक से बोले, "ओह! इस दोपहर के समय हम सबों ने तो भोजन किया और यह बेचारा बिना खाए यहाँ बैठकर काम कर रहा है! इसको अच्छी तरह फल और मिठाई आदि प्रसाद दे तो आओ।" आदेशानुसार सेवक मोची को फल-मिठाई आदि प्रसाद देकर लौट आया और देखता है कि महापुरुषजी भोजन के आसन से उठ चुके हैं और खिड़की के पास खड़े होकर मोची की तरफ एकदृष्टि से देख रहे हैं —

हाथ में एक अठन्नी है। प्रसाद पाते ही मोची को काम बन्द कर खाना शुरू करते देख महापुरुषजी बोले, "अहा! देखते हो, उसे बहुत भूख लगी थी, इसी लिए उसने प्रसाद पाते ही खाना शुरू कर दिया। देखो, मैं एक मजा करता हूँ।" इतना कहकर उन्होंने उस अठन्नी को मोची के सामने फेंक दिया। अचानक ऊपर से अठन्नी गिरी देखकर मोची ने ऊपर की ओर देखा, सामने महापुरुषजी खड़े थे। उन्हें देखकर मोची ने सब समझ लिया और हाथ जोड़कर उनको प्रणाम करके वह अपने हृदय का आनन्द और कृतज्ञता प्रकट करने लगा। कुछ देर बाद एक सन्यासी जूते की सिलाई के बारे में मोची से कुछ भाव-ताव करने लगे। यह देखकर वे व्यथितचित्त हो बोले, "अरे, यह गरीब आदमी है, इसके साथ इस प्रकार भाव-ताव क्या करना?"

* * * *

रात में महापुरुष महाराज अत्यन्त सामान्य आहार करते हैं — किसी दिन केवल थोड़ा सा दूध पी लेते हैं अथवा दो मुनक्का या प्रून (Prune) दूध में डालकर खाते हैं। आज रात में भी वे थोड़ा सा दूध पी रहे थे। इसी समय स्वामी ×× आए और प्रणाम कर खड़े रहे। विभिन्न प्रसंगों के उपरान्त क्रमशः मठ और मिशन के काम-काज सम्बन्धी बातें होने लगी। महापुरुषजी बोले, "अब तुम सब लोग आए हो, मुझे बड़ा आनन्द हुआ है। ठाकुर हिला-हिलाकर अपनी संघशक्ति को उद्बुद्ध कर रहे हैं और दिखला रहे हैं कि उनका कार्य किसी व्यक्तिविशेष के द्वारा नहीं होने का — यह सब तो साधुमण्डली एकत्रित होकर करेगी और तभी सब सुनियन्त्रित होगा। और जितनी विघ्न-बाधा, आपत्ति-विपत्ति आएगी, ठाकुर की संघ-

शक्ति उतनी ही जागृत होगी। 'श्रेयांसि बहु विघ्नानि,' जितनी बाधा-विपत्ति आएगी, लोगों की ठाकुर के प्रति भक्ति, विश्वास और निर्भरता उतनी ही बढ़ती जायगी। उनके युगधर्म के प्रवर्तन के लिए ही इस संघ की सृष्टि हुई है और वे इस संघ के प्रत्येक अंग के भीतर से काम कर रहे हैं। इस युगधर्म का कार्य अनेक शताब्दियों तक अबाध गति से चलता रहेगा — कोई भी इसकी गति का रोध नहीं कर सकेगा। बच्चा, यह त्रिकालज्ञ ऋषि स्वयं स्वामीजी की वाणी है।"

संन्यासी —" स्वामीजी जो कह गए हैं और आप भी जो कह रहे हैं, वह कभी भी मिथ्या होने का नहीं। किन्तु महाराज, समय-समय पर चारों ओर का वातावरण देखकर मन में उस विश्वास को अक्षुण्ण बनाए रखना अत्यन्त कठिन हो जाता है, काम-काज करने में बिलकुल उत्साह नहीं रह जाता — न जाने किस प्रकार का एक अनिर्वचनीय भय और अविश्वास आकर मन को घेर लेता है।"

महापुरुषजी —" ऐसा तो होता ही है। अनेकों बार भय होगा, वितृष्णा आएगी, फिर सब दूर भी हो जायँगे। कार्य की धारा ही ऐसी होती है। जगत् में भला ऐसा कौन सा कार्य है, जो बिना किसी बाधा के होता हो? कार्य जितना बड़ा होता है, विघ्न-बाधा भी उतनी ही अधिक होती है, और उस संघर्ष के द्वारा ही आत्मशक्ति जाग उठती है। वह शक्ति और दूसरी कोई नहीं, वह स्वयं 'माँ' है। काम-काज सब उन्हीं का है और हम लोग भी उन्हीं के हैं। सत्य पथ से चलकर इस ज्ञान को अक्षुण्ण रखते हुए काम करना होगा। यह युगधर्म-संस्थापन का कार्य है। इसी लिए वे हम लोगों को

भी इसमें पकड़कर ले आए हैं। नहीं तो क्या हम लोग साधन-भजन में मग्न होकर नहीं रह सकते थे? और किया भी तो वैसा ही था; किन्तु ठाकुर के द्वारा प्रत्यादिष्ट होकर स्वामीजी ने ही इन सब कार्यों का प्रवर्तन किया और हम सबों को भी खींच लाए। देखो न, स्वयं स्वामीजी भी किस प्रकार जीवन की अन्तिम घड़ी तक अथक रूप से कार्य करते रहे। परिश्रम करते-करते उनका शरीर नष्ट हो गया। और उनके लिए भी क्या बिना झंझट के सब काम करना सम्भव हो सका था? उनकी पाश्चात्य देशों मे जाने की बात को ही लो न। कितनी विपत्ति-बाधाओं के बीच से होते हुए उन्हें श्रीभगवान का कार्य करना पड़ा था! मेरे तो मन में कभी-कभी ऐसा होता है कि अब और अधिक ठाकुर के सगुण भावों को लेकर न रहूँ, एकदम निर्गुण अवस्था में चला जाऊँ — समाधि में मस्त होकर रहूँ, पर ठाकुर वैसा करने कहाँ दे रहे हैं? अवश्य वे ही सब कुछ हैं; सगुण भी वे हैं और निर्गुण भी वे ही हैं। 'पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि।'* उनकी इच्छा के बिना हम लोग कुछ भी नहीं कर सकते। वे जब जिस अवस्था में रखें, उसी में रहना होगा। फिर भी वे कृपा करके सब दिखा दे रहे हैं — उस अमृतधाम के मार्ग को उन्होंने खोल दिया है। 'यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।' † — जिनको ग्रहण करने में असमर्थ होकर मन के साथ वाक्य उनके पास से लौट आता है।"

---

* ऋग्वेद — १०।९०

† तैत्तिरीय उपनिषद् — २।४।१

बेलुड़ मठ
शनिवार, २३ मार्च, १९२९

गत कुछ दिनों से महापुरुष महाराज को खूब सर्दी हुई है। आज सर्दी का वेग पहले की अपेक्षा कुछ कम है। परन्तु शारीरिक अस्वस्थता की ओर उनका ध्यान तनिक भी नहीं है—अत्यन्त कष्ट के समय भी वे सदानन्द रहते हैं। देह का कष्ट या विपत्ति-आपत्ति उनके कूटस्थ मन के ऊपर कुछ भी प्रभाव डाल नहीं पाती। प्रातःकाल लगभग ८ बजे एक वृद्ध संन्यासी एक शाखा-केन्द्र से आए। उन्होंने ऊपर आकर महापुरुषजी को साष्टांग प्रणाम कर पूछा, "महाराज, आपका स्वास्थ्य कैसा है?"

महापुरुषजी —"इस अनित्य शरीर के बारे में पूछ रहे हो? अब इस वृद्ध अवस्था में यह शरीर भला कैसे अच्छा रहे?"

संन्यासी —"वही तो देख रहा हूँ, महाराज, आपका स्वास्थ्य कैसा हो गया है। देखने से ही कष्ट होता है।"

महापुरुषजी —"यह शरीर अब अधिक दिन टिकनेवाला नही। शरत् महाराज के देह-त्याग से मेरा मानो दाहिना अंग ही टूट गया है, मन बिलकुल खाली-खाली-सा हो गया है। मैं भी उसी समय जाने के लिए तैयार हुआ था। शरत् महाराज का शरीर जाने के साथ-साथ मेरा शरीर भी अत्यन्त कमजोर हो गया था। काम-काज से मन बिलकुल उचट गया था। ठाकुर से मैंने आग्रह किया था कि मैं अब नहीं रहूँगा। ठाकुर ने सो सुना ही नहीं। उन्होंने जबरदस्ती मुझे रख दिया,

इसी से पड़ा हुआ हूँ। उन्होंने क्यों नहीं जाने दिया, यह तो वे ही जानें। सब उन्हीं की इच्छा है। वे जितने दिन तक रखेंगे — रहना ही होगा।"

संन्यासी —"ऐसा कहिए, महाराज, ठाकुर की जैसी इच्छा होगी, वैसा ही होगा। हम लोग तो ठाकुर से नित्यप्रति यही प्रार्थना करते हैं कि वे आपको और भी दीर्घ काल तक हम लोगों के लिए रहने दे। आपके चले जाने से तो संघ की आध्यात्मिक शक्ति का विकास ही कम हो जायगा। आपको अपने हाथ से कोई भी कार्य नहीं करना होगा। आप केवल बैठे रहें; आपकी इच्छाशक्ति से ही सब कार्य अच्छी तरह सम्पन्न होंगे, और हो भी रहे हैं। आप केवल हम लोगों को शक्ति देंगे, अनुप्राणित करेंगे, आशीर्वाद देंगे। हमीं लोग सब काम करेंगे। हम लोग जहाँ कहीं भी क्यों न रहें, महाराज, आप हैं यह सोचकर ही हम लोगों के प्राणों में कितना बल आ जाता है, यह किस प्रकार बतलाऊँ?"

महापुरुषजी —"तुम लोग मुझे खूब चाहते हो, श्रद्धा-भक्ति करते हो, यह मैं अपने हृदय से अनुभव करता हूँ। प्रभु के संघ में परस्पर के प्रति जो प्रीति, स्नेह और श्रद्धा है — यही संघ की जीवनीशक्ति है। जब तक परस्पर के प्रति यह निःस्वार्थ प्रेम-सम्बन्ध विद्यमान रहेगा, तब तक संघ की एकता और आध्यात्मिक शक्ति अक्षुण्ण बनी रहेगी। क्योंकि यह जो प्रेम का सम्बन्ध है, वह तो ठाकुर को लेकर है। उनको केन्द्र करके ही यह सम्बन्ध गठित हुआ है। देह का नाश होने पर भी इस सम्बन्ध का नाश नहीं होता। और संघाचार्यों की जो शक्ति इस संघ के भीतर काम कर रही है, वह भी कभी

निःशेष होने की नहीं। यही देखो न, स्वामीजी, महाराज, बाबूराम महाराज, हरि महाराज, शरत् महाराज—ये सभी एक-एक करके देह छोड़कर चले गए, किन्तु उससे क्या? उन लोगों पर हम सबों की जो स्नेह-श्रद्धा थी, उसमें क्या कुछ कमी हुई है? उनकी जो आध्यात्मिक शक्ति थी, वह क्या नष्ट हुई है? और वह क्या कभी भी नष्ट हो सकती है? नहीं, कभी नही। वे लोग अभी भी हैं और उनकी शक्ति भी विभिन्न आधारों के भीतर से ठीक कार्य कर रही है। उनका जीवन अभी भी हम लोगों को आध्यात्मिक प्रेरणा दे रहा है और ठीक मार्ग से ले जा रहा है। इस समय वे लोग चिन्मय देह में रहते हैं और सूक्ष्म रूप से और भी अधिक कार्य कर रहे हैं। अभी भी वे दृष्टिगम्य होते हैं और स्थूल शरीर में रहते हुए जिस प्रकार वे काम-काज के विषय में उपदेश आदि देते थे, वैसा ही अभी भी आवश्यकता पड़ने पर उसी प्रकार देते रहते हैं। मन समाधिस्थ होकर ऐसी एक अवस्था में पहुँच जाता है, जहाँ इन सभी महापुरुषों के साथ अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध हुआ करता है, और यहाँ तक कि उन लोगों के पास से मार्ग का निर्देश भी प्राप्त होता है। अपने शरीर-नाश के बाद हम लोग भी उनमें मिल जायँगे। उस समय ठाकुर का ध्यान करने से ही हम लोगों का भी ध्यान करना हो जायगा। हम लोग उनके भक्त हैं, उनके दास हैं, उनको छोड़कर हम लोगों की कोई पृथक् सत्ता ही नहीं। हम लोगों का व्यक्तित्व उनमें लीन हो गया है। और ठाकुर ही तो सनातन परब्रह्म हैं।"

संन्यासी—"हम लोग तो महाराज, स्थूल जगत् में हैं—हम लोग आपको स्थूल रूप से ही पाना चाहते हैं। इसके

अतिरिक्त, हम लोगों का मन भी इतनी उच्च अवस्था में नहीं पहुँचा है। ठाकुर को तो हम लोग देख नहीं पा रहे हैं। आप ठाकुर के पार्षद हैं, उनके अन्तरंग हैं। उन्हीं के प्रतिनिधि-रूप में आप हम लोगों के सामने रहते हैं। हम लोग आपके द्वारा ही ठाकुर को समझने की चेष्टा करते हैं। आपके पास प्रार्थना करने पर हम लोग मन में सोचते हैं कि हमारी प्रार्थना ठाकुर के पास पहुँच गई।"

महापुरुषजी—"सो हमारा शरीर चला जाय, तो भी तुम लोगों के साथ जो सम्बन्ध है, वह कभी जाने का नहीं। मैं खूब आशीर्वाद देता हूँ, तुम लोग खूब आगे बढ़ जाओ; भक्ति-विश्वास और प्रेम-पवित्रता से तुम लोगों का हृदय परिपूर्ण हो जाय। तुम लोगों के द्वारा जगत् का बहुविध कल्याण हो। ठाकुर तुम लोगों को ठीक परिचालित करेंगे, खूब शक्ति देंगे। ठाकुर और स्वामीजी आए थे जगत् के हित के लिए। नूतन आध्यात्मिक आलोक देकर समग्र जगत् को शान्ति की गोद में बैठा देने के लिए ही तो उन्होंने नर-देह धारण की थी। और उनके उस युगप्रवर्तन के लिए ही स्वामीजी ने इस संघ का गठन किया था। स्वामीजी जिस आदर्श का प्रचार कर गए हैं, उसका ग्रहण समग्र जगत् को क्रमशः करना होगा। समग्र जगत् में शान्ति-स्थापन के लिए अन्य दूसरा मार्ग है ही नहीं।"

बेलुड़ मठ

मंगलवार, २६ मार्च, १९२९

शाम के पाँच बज चुके हैं। कमरे में बहुत गर्मी मालूम होने के कारण महापुरुषजी बाहर निकल आए हैं और पूर्व के बरामदे में आराम-कुर्सी पर लेटे हुए विश्राम कर रहे हैं। पूजनीय स्वामी अभेदानन्दजी भी आज मठ में आए हुए हैं, साथ में एक संन्यासी सेवक हैं। सेवक ने महापुरुषजी के समीप आकर उन्हें प्रणाम किया और एक ओर खड़े हो गए। महापुरुषजी उनसे पूजनीय अभेदानन्दजी के बारे में कुशल-प्रश्न आदि पूछ रहे हैं। कुछ देर बाद सेवक ने पूछा, "महाराज, क्या कुछ स्वास्थ्य में सुधार हुआ है?" महापुरुषजी ने हँसकर उत्तर दिया, "नहीं, यह वृद्ध शरीर क्या अब अच्छा होगा? तुम भी खूब हो! इसी तरह ठाकुर की इच्छा से जो कुछ दिन कट जायँ।"

सेवक—"धीरे-धीरे ठाकुर के पार्षदगण तो सभी चले गए। इस समय आप लोग दो-एक ही हैं। आप का भी तो शरीर ऐसा है। कौन जाने, आप लोग जाने के बाद फिर से कब आएँगे? ठाकुर न आयें, तो आप लोग भी नहीं आएँगे।"

महाराज—"यह कौन जानता है, बच्चा! ठाकुर के और भी तो कितने ही भक्त हैं। हम लोगों को ही लेकर आएँगे, यह कोई बँधा हुआ है क्या?"

सेवक—"आप लोग तो ठाकुर के अन्तरंग पार्षद हैं, आप लोगों को भी साथ-साथ आना पड़ेगा।"

महाराज—"इसका क्या ठीक? यह सब individuality

(व्यक्तित्व) नश्वर है। यह जगत् भी अनित्य है; हाँ, प्रवाहाकार रूप से नित्य है। एकमात्र भगवान ही सत्य है। वे चिरकाल से है और युग-युग में जगत् के कल्याणार्थ नर-देह धारण किया करते हैं। यह केवल उनकी अहेतुकी कृपा है। वे स्वयं पूर्ण, शुद्ध-बुद्ध-मुक्त-स्वभाव हैं। उनका इस दुनिया से कोई प्रयोजन नहीं रहता। उनका न कुछ प्राप्य है, न अप्राप्य; क्योंकि वे स्वयं पूर्ण हैं। फिर भी, जब जगत् भाराक्रान्त होता है और अधर्म का अभ्युदय होता है, तब वे ही परम कारुणिक भगवान पतितों की रक्षा करने के लिए स्वेच्छा से नर-देह धारण करते हैं और जगत् का दु.ख-कष्ट दूर कर देते हैं। देखो न, भगवान ने गीता में ही कहा है—

'न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किंचन।
नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि॥'* इत्यादि

—'हे पार्थ, तीनों जगत् में मेरा कुछ भी कर्तव्य नहीं। मुझे कुछ अप्राप्य भी नहीं, जिसे मुझे नूतन रूप से पाना हो। फिर भी मैं कर्म में प्रवृत्त होता हूँ।'—क्यों होते हैं? इसलिए कि यदि वे कर्म न करें, तो लोग सब प्रकार से उनका अनुसरण करेंगे और फलस्वरूप ये सब लोग नष्ट हो जायेंगे, वर्णसंकर की सृष्टि होगी तथा और भी अनेक प्रकार का अनर्थ होगा। भगवान जानते हैं कि यह जगत् अनित्य है। परन्तु यह जानते हुए भी इस जगत् के कल्याण के लिए वे कितना कष्ट सहन करते हैं। ठाकुर का जीवन ही देखो न, वे साधारण मनुष्य के समान आचरण करते थे। किन्तु उनके इस साढ़े तीन हाथ

* गीता — ३।२२

के शरीर के भीतर पूर्ण ईश्वर खेला करते थे। बाहर में नराकार, किन्तु भीतर में विराट् भगवान।"

बेलुड़ मठ

बुधवार, २७ मार्च, १९२९

महापुरुषजी का शरीर उतना अच्छा नहीं है। इसी लिए एक सेवक को लक्ष्य कर कह रहे हैं, "'अभी कफ वायु ने घेरा।' किधर सँभालूँ बोलो? इधर ठीक करता हूँ, तो उधर खराब हो जाता है — सर्दी की देख-भाल की, तो वायु बढ़ गई। इस तरह शरीर का बहुत दिन रहना क्या अच्छा है? तुम लोगों को भी कितना कष्ट दे रहा हूँ।"

सेवक —"नहीं महाराज, हम लोगों को भला क्या कष्ट है? आप ही तो हमारे माँ-बाप हैं, हमारे सब कुछ हैं। इस समय आपका शरीर वृद्ध हो गया है, सो क्या थोड़ीसी सेवा नहीं करेंगे? आपकी जो थोड़ी सेवा का अधिकार मिल गया है, यह तो हम लोगों का परम सौभाग्य है।"

महाराज —"सो तो मैं अच्छी तरह जानता हूँ, तुम लोग प्रेम से यह सब करते हो। फिर भी बात क्या है, जानते हो, इस तरह भुगतते हुए शरीर-धारण करने की मेरी तो, बच्चा, इच्छा नहीं होती। यह सब ठाकुर की इच्छा है; वे जब जैसा रखेंगे, वैसा ही रहना पड़ेगा।"

सेवक —"महाराज, हम लोगों ने तो ठाकुर को नहीं देखा। आप हैं, इसी से हमें कितना आनन्द है। आप ठाकुर की सन्तान हैं, आपके पास रह सका, यह क्या कम सौभाग्य की

बात है? आप हैं इस कारण इतने साधु-संन्यासी, भक्त, सभी को आनन्द है। मैं कभी-कभी सोचता हूँ, कितने लोग दूर-दूर से रुपया-पैसा खर्च कर और इतना कष्ट उठाकर केवल एक बार आप लोगों के दर्शन करने आते हैं। और हम लोगों का तो ऐसा सौभाग्य है कि सब समय आपके पास रहने का सुअवसर मिला है।"

महाराज —"ठाकुर की विशेष कृपा तुम लोगों पर है। इसी लिए वे तुम लोगों के द्वारा अपने भक्तों की सेवा करा ले रहे हैं। तुम लोग भी धन्य हो और मैं भी धन्य हूँ, जो तुम सब लोगों के साथ रह रहा हूँ। नहीं तो कहाँ रहता और कौन देखता? अवश्य ही ठाकुर हम लोगों की सब समय देख-भाल कर रहे हैं। हम लोगों के महाराज ने देह-त्याग के कुछ क्षण पूर्व अपने सद सेवकों को लक्ष्य कर कहा था, 'तुम लोगों ने मेरी सेवा की है, और क्या कहूँ, तुम सब लोगों को ब्रह्मज्ञान हो।' मैं भी कहता हूँ, बच्चा, तुम सब लोगों को ब्रह्मज्ञान हो, पूर्ण भक्ति-विश्वास हो, तुम सब आनन्द में रहो।"

महापुरुषजी का शरीर अस्वस्थ है। वे और प्रत्येक दिन पूजा-घर में आकर दीक्षा आदि नहीं दे सकते। अनेक बार अपने कमरे में ही, यहाँ तक कि बिस्तर पर बैठे-बैठे ही दीक्षा आदि देते हैं। शाम को लगभग ४॥ बजे मद्रास के एक भक्त ने आकर प्रणाम किया और दीक्षा लेने की इच्छा प्रकट की। महापुरुष महाराज बोले, "अच्छा, होगी, तुम्हारी दीक्षा कल ही होगी। क्यों, क्या कहते हो?"

भक्त ने कहा —"महाराज की जैसी इच्छा।"

महाराज —"वैसे तो इस समय भी दी जा सकती है।

ठाकुर का नाम देना है, जब इच्छा हो, तभी दे दूँगा। उनके लिए इतना समय-असमय का विचार नहीं है। हम लोगों के ठाकुर पतितपावन हैं, पतितों का उद्धार करने के लिए ही वे नर-देह धारण कर आए थे। हम लोग उनके दास हैं, उनकी सन्तान हैं। जब तक शरीर है, तब तक मनुष्यों को वही तारक-ब्रह्म नाम दिए जाऊँगा। हम लोगों की दीक्षा कोई 'ब्राह्मण भट्टाचार्य' आदि की दीक्षा तो नहीं है। हम लोग ठाकुर का नाम छोड़कर और कुछ नहीं जानते। हम इतना जानते हैं—जो राम थे, कृष्ण थे, वे ही इस समय रामकृष्ण-रूप में आए हैं। समस्त भावों और समस्त देवी-देवताओं की घनीभूत मूर्ति हैं ठाकुर।"

बेलुड़ मठ

सोमवार, ८ अप्रैल, १९२९

लगभग ११॥ बजे हैं। महापुरुषजी स्नान करके स्नान-गृह से आ रहे हैं। केदार बाबा प्रणाम करने के लिए खड़े हैं; महापुरुषजी के कमरे में आने पर उन्होंने भूमिष्ठ हो प्रणाम किया। महापुरुष महाराज हँसते-हँसते बोले, "जय केदार बाबा, जय अचलानन्द स्वामी।" फिर दूसरे ही क्षण गम्भीर होकर बोले, "जय प्रभु, जय ठाकुर, दीन-शरण प्रभु !" ऐसा कहते-कहते भोजन के लिए बैठे। थोड़ी देर बाद बोले, "हे ठाकुर, हम लोगों को शुद्धा भक्ति दो, आडम्बरयुक्त भक्ति न देना — दिखाऊ भक्ति लेकर क्या होगा? वे परम दयालु हैं, उनके पास जो भी जो कुछ माँगता है, वे उसे वही देते हैं।"

यह कहकर केदार बाबा को लक्ष्य कर बोले, "पहले नारायण को निवेदन कर दूँ। यह लो प्रसाद। तुम नारायण हो, तुम्हारी सेवा पहले होनी चाहिए।" यह कहकर थाली में से पहले ही अच्छी-अच्छी चीजें उठाकर केदार बाबा के हाथ में देने लगे और बोले, "यह सब ठाकुर का प्रसाद है। पहले नारायण को देकर बाद मे खाना चाहिए। स्वामीजी कभी-कभी स्वयं भोजन बनाते थे। उनकी एक बटलोई थी। उसी में दाल-भात बनाते थे। फिर ठाकुर को समस्त निवेदित कर पहले हम सब लोगों को प्रसाद देते और उसके बाद स्वयं लेते और कहते, 'पहले नारायण की सेवा और बाद में अपना भोजन।'" प्रसाद पाकर केदार बाबा चले गए। फिर महापुरुष महाराज ने भोजन आरम्भ किया।

पास ही में एक सेवक बैठा था। बातचीत के प्रसंग में मठ के एक साधु की, जो गाँव में मधुकरी करके खाते हैं, चर्चा चली। महापुरुष महाराज बोले, "हम लोगों ने भी एक समय यहाँ मधुकरी की है। यह बहुत दिन की बात है। स्वामीजी ने उस समय मठ में ऐसा नियम बना दिया था कि तड़के ४ बजे घंटा बजता था; सबको उस समय नीद छोड़कर शौचादि से निवृत्त हो पूजा-घर में जाकर ध्यान करने बैठना पड़ता था। स्वामीजी स्वयं भी जाते थे। जो नही जाता, उसे उस दिन मठ में भोजन नही मिलता था; उसे उस दिन मधुकरी करनी पड़ती थी। हम लोग सभी इस समय उठकर ध्यान करते थे। किसी-किसी दिन ऐसा होता कि प्रगाढ़ निद्रा न खुलने से घंटा सुनाई नहीं देता था। तब सवेरा होने पर स्वामीजी कहते, 'हम लोग स्वयं इस नियम को यदि नहीं

मानेंगे, तो लड़के कैसे मानेंगे ?' इसी कारण हम लोगों से भी वे कहते, 'जाओ, मधुकरी करके खाओ।' इस प्रकार एक-आध दिन मैंने भी यहाँ मधुकरी की है।"

शाम को ५॥ बजे के लगभग महापुरुषजी कमरे में बैठे हुए हैं। इसी समय एक युवक भक्त ने आकर प्रणाम किया और जमीन पर बैठ गया। महापुरुषजी ने उसका नाम पूछा और कहा, "तुमने क्या यहाँ से दीक्षा आदि ली है ?"

भक्त —"जी हाँ, गत श्रावण मास में दीक्षा ली है।"

महाराज —"बहुत अच्छा। जप-ध्यान करते हो न ? यहाँ से ही दीक्षा ली हो, या न ली हो, उनका नाम-जप अवश्य करना चाहिए। तभी आनन्द मिलेगा। कातर भाव से उनके पास प्रार्थना करना, 'ठाकुर, मुझे भक्ति दो, विश्वास दो, मुझे अपनी भुवनमोहिनी माया में अब और भुलाकर मत रखो।' उनका नाम-जप करना और खूब व्याकुल होकर प्रार्थना करना, जितना भी समय मिले।"

भक्त —"पहले-पहल तो बहुत करता था, किन्तु अब कुछ दिनों से ठीक समय बाँधकर उठ नहीं पाता, इसी लिए थोड़ा-थोड़ा करता हूँ।"

महाराज —"ठीक है, किन्तु जप-ध्यान जितनी भी देर करो, खूब अनुराग और प्रेम के साथ करना। ५-१० मिनिट करो, वह भी अच्छा है; किन्तु उतना समस्त मन-प्राण लगाकर करना होगा। वे अन्तर्यामी हैं, तुम्हारे अन्दर ही हैं — वे हृदय देखते हैं। तुम्हारा प्रेम देखते हैं, वे समय नहीं देखते। सन्ध्या समय जभी अवकाश मिले, उन्हें हृदय से पुकारना। और कातर भाव से प्रार्थना करना, 'प्रभु, इस संसार-चक्र में पड़कर

मैं तुम्हें भूल न जाऊँ।' यह संसार तो दो दिन का है। इस मायिक जगत् में पड़कर उन्हें कहीं भूल न जाना। सो काम करो, करोड़ों रुपया कमाओ, किन्तु हृदय में इतना ठीक-ठीक समझे रखना कि यह सब अनित्य है, यह सब छोड़कर एक दिन जाना पड़ेगा। भगवान ही एकमात्र नित्य वस्तु हैं। तुम उन्हीं को पुकारो, उन्हीं के शरणापन्न होओ। इससे सब बन्धन कट जायेंगे, बच्चा।"

भक्त—"आप आशीर्वाद दीजिए तो सब ठीक हो जायगा।"

महाराज—"आशीर्वाद तो देता ही हूँ, खूब आशीर्वाद देता हूँ। हम लोगों के पास सिवाय आशीर्वाद के और क्या है? आशीर्वाद देने के कारण ही तो यह सब कह रहा हूँ। ठाकुर को पुकारो, उनके शरणापन्न होओ। हमारे ठाकुर तो जीवन्त हैं। व्याकुल होकर उन्हें एक बार पुकार तो देखो, वे तत्क्षण ही उत्तर देंगे। जो भगवान हैं, जो परब्रह्म हैं, वे ही बहुतों के कल्याणार्थ इस युग में रामकृष्ण-रूप धारण कर आए हैं। तुम जब उन युगावतार के आश्रय में आए हो, तो फिर चिन्ता किस बात की?"

भक्त—"आप से लज्जा और भय के कारण इतने दिन एक बात छिपा रखी थी। कुछ दिन हुए मेरा विवाह हो गया है। माँ-बाप के रोने-धोने से मुझे विवाह करना ही पड़ा, मेरी तो बिलकुल ही इच्छा नहीं थी।"

महाराज—"इससे क्या हुआ? जन्म, मृत्यु, विवाह—इन तीन बातों में मनुष्य का कोई बस नहीं। यह तो विधाता का नियम है। विवाह किया है, इसलिए उसी में आसक्त

होकर रहना पड़ेगा, इसका कोई अर्थ नहीं। अच्छा तो है, तुम अपना काम-काज करो। यथासाध्य साधन-भजन करो; पत्नी भी वही करेगी। उसके जीवन का भी तो एक उद्देश्य है न? भोग-विलास के लिए ही तो यह जीवन नहीं मिला। तुम भी भगवत्सृष्ट जीव हो, वह भी वही है। तुम भी भगवान के अंश हो, वह भी जगदम्बा का अंश है। तुम जिस प्रकार जीवन विता रहे हो, उसको भी उसी प्रकार सिखाओ। वह भी भगवान का नाम लेगी, पूजा-पाठ करेगी, संसार के काम-काज करेगी, गुरुजनों की सेवा-शुश्रूषा करेगी। उसको यही सब सिखाओ, तभी तो सार्थकता है। यह न करके यदि केवल देह के भोग-विलास के लिए उसका उपयोग करो, तब तो धिक्कार है! उसमें आसक्त न हो जाना, बच्चा। काम-कांचन मनुष्य का मनुष्यत्व नष्ट कर देते हैं।"

भक्त—"मेरा तो यह विश्वास है कि जब आपका आशीर्वाद मिल गया है और ठाकुर के आश्रय में पड़ा हूँ, तो सब ठीक हो जायगा।"

महाराज—"सार बात है, जीवन का लक्ष्य न भूल जाना। जीवन दो दिन का है, अनित्य है, भोग-विलास के लिए नहीं है—यही बात खूब याद रखना। अब थोड़ी देर पूजा-घर में जाओ तो। ठाकुर को प्रणाम कर उनका ध्यान करो, उनके पास खूब प्रार्थना करो। वे निश्चय ही तुम्हें शान्ति देंगे।"

बेलुड़ मठ

बुधवार, १० अप्रैल, १९२९

आहार करते-करते महापुरुषजी बोले, "मुझे भात-ही-भात खाना अच्छा लगता हैं, उसी में आनन्द है। और यह जो सब देखते हो, (सुक्तो का झोल * दिखाकर) यह सब औषध के समान खाता हूँ।" परवल का साग भात में मिलाकर खाते हुए महापुरुष महाराज बोले, "वास्तव में आहार तो औषध ही है। आचार्य शंकर ने कहा है, 'क्षुद्व्याधिश्च चिकित्स्यता प्रतिदिनं भिक्षौषधं भुज्यताम्।'†—'क्षुधारूप व्याधि की चिकित्सा करो, प्रतिदिन भिक्षारूप औषध सेवन करो।' क्षुधा भी एक व्याधि है। औषध से जिस प्रकार व्याधि का उपशम होता है, उसी प्रकार क्षुधारूप व्याधि का भी आहार से उपशम होता है। यही सोचकर आहार करना पड़ता है। शंकराचार्य महाज्ञानी थे, इसी लिए वे ऐसा कह गए हैं। आत्मा के लिए क्षुधा आदि कुछ भी नहीं हैं, वह तो निर्विकार है, शुद्धचैतन्य-स्वरूप है। भूख-प्यास आदि तो परमात्मा के धर्म नही हैं, वे सब हैं देह के धर्म।"

बेलुड़ मठ

बृहस्पतिवार, १८ अप्रैल, १९२९

शाम के ५ बजे होंगे। एक संन्यासी के आकर प्रणाम

---

* तरकारी का एक विशेष बंगाली प्रकार।

† साधनपंचकम्—४

करने पर महापुरुष महाराज ने उनसे पूछा, "क्या, कुछ कहना है ?" ये संन्यासी इस समय प्रायः नहीं आया करते थे; इसी लिए महापुरुषजी ने ऐसा प्रश्न किया।

संन्यासी —"जी, कल मैं मास्टर महाशय के पास गया था। वे बहुत देर तक ठाकुर की बातें कहते रहे।"

महाराज —"अहा! वे ठाकुर के महाभक्त हैं। ठाकुर की बात छोड़कर और कोई बात उनके पास नहीं मिलेगी।"

संन्यासी —"महाराज, मन में बड़ी अशान्ति है। साधन-भजन तो कुछ भी नहीं कर पाता, इधर दिन निकले जा रहे हैं। हम लोगों के लिए क्या उपाय है?"

महाराज —"बच्चा, शरणागत होकर पड़े रहो। उनकी कृपा बिना कुछ नहीं हो सकता। केवल जप-ध्यान करने से क्या मनुष्य उन्हें प्राप्त कर सकता है? वे यदि दया करके खुद पकड़ में आ जायँ, तभी होगा, नहीं तो उन्हें पाने की किसी में सामर्थ्य नहीं। किसकी हस्ती है, जो उन्हें पकड़ ले? साधन-भजन मनुष्य कितनी देर करेगा? दो घंटा, चार घंटा या बहुत किया तो आठ घंटा। और उस साधना की प्रवृत्ति भी तो वे ही देते हैं। वे सब शक्ति के आधार जो हैं! उनकी दया न होने से, उनके शक्ति न देने से साधन-भजन कैसे करोगे? इसी लिए कहता हूँ, शरणागत होकर पड़े रहो। कातर भाव से प्रार्थना करो, 'प्रभु, कृपा करो, कृपा करो।' तभी वे कृपा करेंगे। कृपा, कृपा, कृपा। ठाकुर कहा करते थे, 'नाहं नाहं, त्वमेव त्वमेव — तू ही, तू ही; मैं नहीं, मैं नहीं।' हम लोग क्या कर सकते हैं, यदि वे दया करके अपने को पकड़ा न दें? दया, दया! दया करो, प्रभु!"

संन्यासी—"महाराज, मैं तो प्रार्थना भी नहीं कर पाता! मन बड़ा चंचल है, सब समय उसे स्थिर नहीं कर पाता।"

महाराज—"नहीं, खूब व्याकुलतापूर्वक प्रार्थना करनी पड़ेगी। मन में नैराश्य भाव न लाओ। दुःख मत करो। आनन्दित रहो और प्रार्थना करो। वे सब देंगे, बच्चा, सब देंगे। उन्हें तुम्हारे लिए कुछ भी अदेय नहीं। भक्ति कहो, विश्वास कहो, त्याग, पवित्रता, विवेक, वैराग्य जो कुछ भी कहो, वे सभी देंगे। उनका जो कुछ था, वह सब तुम लोगों को देंगे। देने के लिए ही तो वे तुम लोगों के कल्याणार्थ जगत् में आए थे। देने के लिए ही तो वे तुम लोगों को यहाँ ले आए हैं, शरण दी है, अपने आश्रय में रखा है। यहाँ क्या तुम लोग अपने आप आए हो? कभी नहीं। एक बार भी ऐसा न सोचना। वे ही कृपा करके तुम सब लोगों को यहाँ खींच लाए हैं। वे अहेतुक कृपासिन्धु हैं। बच्चा, पड़े रहो, सब होगा। धीरे-धीरे सब होगा। मैं कहता हूँ, सब मिलेगा। वे तुम्हें भक्ति-विश्वास से परिपूर्ण कर देंगे।"

यह कहकर स्वयं ही गाने लगे—

'आपनाते आपनि थेको मन, जेओ नाको कारो घरे।
जा चाबि ता बसे पाबि, खोजो निज अन्तःपुरे।' *

"तुम लोग ठाकुर की शरण में हो, तुम्हे फिर डर किस बात का?"

* हे मन, अपने आप में ही रहो, कहीं और न जाओ। अपने भीतर में ही खोजो, फिर जो कुछ चाहोगे, बैठे-ही-बैठे मिल जायगा।

बेलुड़ मठ

मंगलवार, ३० अप्रैल, १९२९

सन्ध्या समय मुंगेर के वकील श्री गंगाचरण मुखोपाध्याय अपनी पुत्री तथा परिवार के अन्य कई भक्त जनों के साथ आए हैं। महापुरुष महाराज को भूमिष्ठ हो प्रणाम करके गंगाचरण बाबू ने कहा, "आपका शरीर बहुत कमजोर हो गया है, महाराज। गत वर्ष जैसा देखा था, उसकी तुलना में तो अभी बहुत रुग्ण दिखता है।"

महाराज—"हाँ, शरीर बहुत कमजोर हो गया है। दिन-पर-दिन गिरता ही जा रहा है। शरीर तो षड्विकारयुक्त है। इस समय अन्तिम विकार हो रहा है। ऐसा होना देह का धर्म है। समस्त शरीरों का एक दिन विनाश होगा ही।"

गंगाचरण बाबू—"प्रत्येक पत्र से यही समाचार पाता था कि आपका स्वास्थ्य बहुत गिर गया है। इसी लिए इस बार दर्शन करने आया हूँ, बड़ी इच्छा थी।"

महाराज—(हँसते-हँसते)—"बाह्य दर्शन-श्रवण से क्या होगा, बतलाइए! आन्तरिक दर्शन ही दर्शन है। और वे ही भगवान तो सबमें हैं। उन्हीं से इस समस्त जगत् की उत्पत्ति हुई है।—

'एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च।
खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवी विश्वस्य धारिणी॥'*

—'इनसे ही प्राण, मन, सकल इन्द्रिय, आकाश, वायु, तेज, जल एवं सब वस्तुओं की आधारस्वरूपा पृथ्वी उत्पन्न हुई है।'"

* मुण्डकोपनिषद् — २।१।३

ये पंचभूत — पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, सब उनमें से ही आए हैं। वे ही सबके नियन्ता हैं। 'भयात् तपति सूर्यः'† इत्यादि। —'इन्हीं के भय से सूर्य तपता है।' उन्हीं में फिर समस्त लय हो जाता है। 'तज्जलान्'‡। यह जगत् उन्हीं में से उत्पन्न होता है, उन्हीं में लय होता है और उन्हीं में क्रियाशील रहता है। जन्म, मृत्यु तो है ही, इन्हें तो कोई रोक नहीं सकता। एकमात्र भगवान ही अजर, अमर, शुद्ध-बुद्ध-मुक्त-स्वभाव हैं। अन्तर में उनकी उपलब्धि करना ही जीवन का उद्देश्य है। यह होने से ही सब हुआ। तत्पश्चात् देह रहे या न रहे। वे तो हमारे अन्तर में ही हैं। सर्वभूत के परमात्मा, वे अमृतधाम सबके अन्तर में हैं, केवल यही जानना होगा।"

गंगाचरण बाबू —"महाराज, मन में एक प्रश्न उठा है। मृत्यु के बाद क्या सभी को प्रेतशरीर धारण करना पड़ता है?"

महाराज —"ऐसा क्यों? जो भगवद्भक्त हैं, ठीक-ठीक भक्ति-लाभ कर चुके हैं, उन्हें प्रेतशरीर क्यों धारण करना पड़ेगा? वे तो सब भगवान के साथ एक हो जाते हैं—मुक्त हो जाते हैं।"

गंगाचरण बाबू —"तब यह जो श्राद्ध आदि की व्यवस्था है, उसका क्या तात्पर्य है? सभी को तो श्राद्ध आदि — वार्षिक श्राद्ध आदि करने पड़ते हैं?"

महाराज —"हाँ, वह सब करना पड़ता है। वह साधारण नियम है, सभी को मानना पड़ता है। फिर भी स्थान-विशेष में, जैसे आपकी पत्नी के समय, वह सब कर भी सकते

† कठोपनिषद् — २।३।३
‡ छान्दोग्य उपनिषद् — ३।१४।१

हैं, और न करने पर भी कोई हानि नहीं। वे बड़ी भक्तिमती थीं; उनकी बात ही अलग है। आपकी पत्नी देह-त्याग के बाद कैलासधाम चली गई, यह मैंने स्पष्ट देखा है। उनकी बहुत उच्च गति हुई है। इसलिए आप निश्चिन्त रहें।"

गंगाचरण बाबू एकाएक उच्च स्वर में रो उठे और सजल-नयन हो, हाथ जोड़कर महापुरुष महाराज के श्रीचरणों में गिरकर बोले, "महाराज, मुझे एक भिक्षा दीजिए — देनी ही पड़ेगी। मेरे लिए इतना कर दीजिए कि माँ के श्रीपाद-पद्मों में भक्ति-विश्वास हो और अन्त में उनके श्रीचरणों स्थान मिले।" *यह कहकर वे बालक के समान रोने लगे।*

महापुरुषजी गंगाचरण बाबू का सिर छूकर आशीव देते हुए बोले, "बच्चा, तुम्हारा ऐसा ही होगा (अब 'आ कहकर सम्बोधन नहीं किया), तुममें भक्ति-विश्वास है, व और भी बढ़ेगा। पुनः-पुनः आशीर्वाद देता हूँ, तुम्हारा सु भक्ति-विश्वास हो। मैं कहता हूँ, तुम्हें खूब होगा, तुम्हारे ऊप माँ की बड़ी कृपा है।"

गंगाचरण बाबू — "आप कहते हैं, तो होगा ही। म आपकी बात सुनेंगी ही। आप ही मेरे बल, भरोसा स कुछ हैं।"

महाराज — "माँ हम लोगों की बात तो सुनेंगी ही, तुम्हारी बात भी सुनेंगी। जो सरल हृदय से, व्याकुल हो उनसे प्रार्थना करता है, वे उसकी बात ही सुनती हैं। दया, दया! उनकी दया के बिना कुछ भी सम्भव नहीं। जय प्रभु, जय करुणामय ठाकुर!"

गंगाचरण बाबू उनका आशीर्वाद पाकर आश्वस्त हुए —

उन्हे बड़ा ढाढ़स बँधा। अब दो-चार बातें कर बिदा लेंगे। एक-एक करके सभी भक्त प्रणाम करके उठ रहे हैं। गंगाचरण बाबू की पुत्री ने प्रणाम कर आशीर्वाद माँगा। महाराज अत्यन्त करुण स्वर से बोले, "खूब शान्ति में रहो, माई। तुम्हारे स्वामी, पुत्र, कन्या, आत्मीय-स्वजन सभी खूब शान्ति में रहें। संसार में तो सुख नहीं है। दुःख-कष्ट की तुलना में सुख बहुत कम है। फिर भी, इसी के बीच जो संसार में भगवद्भक्त होकर रहते हैं, वे काफी शान्ति से रहते हैं। दुःख-कष्ट कुछ भी क्यों न आए, उससे वे विचलित नही होते; क्योंकि वे जानते हैं कि सभी भगवान का दान है। जो भगवान सुख दे रहे हैं, वे ही फिर दुःख-कष्ट भी देते हैं। इसी लिए सब कुछ श्रीभगवान का आशीर्वाद है, ऐसा समझकर चुपचाप सहन कर लेते हैं। वे लोग सुख में भी प्रफुल्लित नही होते और दुःख मे भी अधीर नहीं होते। संसार में जिस प्रकार सुख अनित्य और क्षणिक है, दुःख भी वैसे ही अनित्य है। ये सब आते हैं और चले जाते हैं। कुछ भी टिकता नही। एकमात्र नित्य वस्तु, एकमात्र शान्ति के स्थान हैं श्रीभगवान। उन्हे पकड़े रहो माई, तभी जीवन में शान्ति मिलेगी।" एक छोटी कुमारी कन्या ने प्रणाम किया, तो महाराज उसका सिर स्पर्श कर बोले, "ये सभी माँ हैं। 'स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु।'—'जगत् में विविध शक्तियुक्त सभी स्त्रियाँ तुम्हारे विभिन्न रूप हैं।'"

सन्ध्या होने के थोड़ी देर पहले एक स्त्री भक्त ने प्रणाम कर पूछा, "महाराज, आपका स्वास्थ्य कैसा है?"

महाराज—"स्वास्थ्य ठीक नहीं है, माई। यह वृद्ध शरीर है, यह अब क्या ठीक होगा?"

इसके पश्चात् कुछ देर चुप रहकर फिर बोले, "संसार को अनित्य जानना क्या इतना सहज है? उनकी कृपा के बिना यह ज्ञान नहीं होता। खूब रोओ और प्रार्थना करो, तभी उनकी कृपा होगी। वे तो अन्तर में ही हैं। कृपा करके जब माया का आवरण काट देंगे, तभी उन्हे देख पाओगी। कृपा—कृपा को छोड़ और कोई उपाय नहीं।"

बेलुड़ मठ

बुधवार, १ मई, १९२९

एक युवक वैराग्य होने से बी. ए. परीक्षा न देकर साधन-भजन करने के लिए घर-बार छोडकर चला गया था, किन्तु उसके अभिभावकगण उसे पकड़कर ले आए और घर पर रहकर ही भगवान का जप-ध्यान करने के लिए कहा। तब से वह महापुरुषजी के उपदेशानुसार घर पर रहकर ही साधन-भजन करता है। वही युवक महापुरुषजी के दर्शनार्थ आया है। उसके प्रणाम करने पर महाराज ने पूछा, "क्यो जी, कैसे हो?"

"शरीर अच्छा ही है, महाराज, किन्तु मन बहुत चंचल है। मन में थोड़ी भी शान्ति नही है, घोर अशान्ति है।"

महाराज —"यह जो तुम्हारे मन में अशान्ति का भाव आया है, इसी से समझ लो कि माँ तुम्हारे ऊपर कृपा कर रही हैं। उनको पाने के लिए जो व्याकुलता, और पा न सकने के कारण मन में जो अशान्ति होती है, यह उनकी कृपा का लक्षण है। अनेक जन्मों की सुकृति के फलस्वरूप और भगवत्कृपा से मनुष्य के मन मे मुमुक्षुत्व आता है। इस समय बड़ी

व्याकुलता के साथ रोओ, प्रार्थना करो, 'माँ, दर्शन दो। मैं *साधनहीन और भजनहीन हूँ, दुर्बल हूँ, कृपा करके दर्शन दो।'* और किसी ओर नजर न डालो, बस उन्हें पुकारे जाओ। मन लगे, न लगे, पुकारना न छोड़ो। लगे रहो। खानदानी किसान के समान लगन लगाए रहो। तभी तो कहता हूँ, कहाँ घूमते फिरोगे? यहीं घर में बैठे-ही-बैठे माँ को पुकारो। यहाँ से ही माँ कृपा करके तुम्हें संसार की अनित्यता का ज्ञान करा देंगी; संसार के बन्धन काट देंगी।"

युवक —"*कभी-कभी ध्यान करने में बड़ा आनन्द मिलता* है। पर कभी-कभी मन को बिलकुल वश में नहीं ला पाता।"

महाराज —"मन का स्वभाव ही ऐसा है, wave-like motion —तरंगों के समान गतिशील है। उत्ताल तरंगें नहीं देखीं? पानी खूब ऊँचा उठकर एक तरंग आई और साथ ही उसके पीछे एक गहरा गर्त बन गया। फिर उत्ताल तरंगें उठीं। यह जो कभी-कभी मन control (वश) के बाहर चला जाता है, उसका अर्थ है, फिर उत्ताल तरंग उठेगी, उस समय खूब आनन्द मिलेगा। किन्तु जो वास्तविक भक्त हैं, वे इस आनन्द में भी अपने को न तो भूल जाते हैं और न निरानन्द में हताश ही होते हैं। सभी कुछ माँ की इच्छा है — माँ की कृपा समझकर एकनिष्ठ चित्त से माँ को समान रूप से पुकारे जाना। माँ चाहे जिस अवस्था में रखें। इस प्रकार करते-करते निरवच्छिन्न आनन्द होगा — माँ का पूर्ण प्रकाश होगा। तुम किसी प्रकार भी विचलित न होओ बच्चा, माँ तुम पर कृपा कर रही हैं; *और भी करेंगी, मैं कहता हूँ, विश्वास करो।* केश इतने क्यों बढ़ा रखे हैं? यह कटा डालो। इससे दिखाऊ धर्म हो

जायगा। पाँच लोग जैसे रहते हैं, तुम भी वैसे ही रहो। बाहर से कोई पार्थक्य न रहे। अन्दर में माँ को पुकारना। अरे, वे क्या कोई बाहर की वस्तु हैं? अच्छा, अब पूजा-घर में जाओ, ठाकुर के दर्शन करो और प्रसाद लो।"

बेलुड़ मठ

शनिवार, ४ मई, १९२९

महापुरुष महाराज के कमरे में कई भक्त बैठे हुए हैं। महापुरुषजी आनन्दपूर्वक सभी के साथ बातचीत कर रहे हैं। इसी समय उनकी कृपाप्राप्त एक भक्त बालिका अपनी माँ को साथ लेकर उनके दर्शनार्थ कलकत्ते से आई। बालिका की आयु लगभग तेरह-चौदह वर्ष की है, स्कूल में पढ़ती है। माता और पुत्री दोनों ही महापुरुषजी को भक्तिपूर्ण हृदय से प्रणाम कर, कातर भाव से आशीर्वाद की याचना करती हुई कुशल-क्षेम आदि पूछने लगीं। इसके पश्चात् बालिका की माता अत्यन्त विनीत भाव से बोलीं, "महाराज, इसे आशीर्वाद दीजिए, जिससे श्रीश्रीठाकुर के श्रीचरणकमलों में इसका खूब भक्ति-विश्वास हो। मेरी तो इच्छा है कि इसका ब्याह नहीं करूँगी। ठाकुर का नाम लेगी और आनन्द में रहेगी। बाबा, संसार में बड़ी ज्वाला है। मैं स्वयं तो भुक्तभोगी हूँ! संसार में क्या सुख है, सो तो मैंने अच्छी तरह जान लिया, इसलिए स्वयं जान-बूझकर कन्या को संसार-दावानल में झोंकने का मन नहीं होता। आप कृपया इसे आशीर्वाद दीजिए।"

व्याकुलता के साथ रोओ, प्रार्थना करो, 'माँ, दर्शन दो।
साधनहीन और भजनहीन हूँ, दुर्बल हूँ, कृपा करके दर्शन दो
और किसी ओर नजर न डालो, बस उन्हें पुकारे जाओ।
लगे, न लगे, पुकारना न छोड़ो। लगे रहो। खानदानी कि
के समान लगन लगाए रहो। तभी तो कहता हूँ, कहाँ घू
फिरोगे? यहाँ घर में बैठे-ही-बैठे माँ को पुकारो। यहीं से
माँ कृपा करके तुम्हें संसार की अनित्यता का ज्ञान करा देंगी

थी कि उनको समझने का कोई उपाय ही नहीं था। वे क्या थीं, यह तो एकमात्र ठाकुर ही जानते थे; और स्वामीजी ने थोड़ा-थोड़ा उनको समझा था। स्वामीजी ने पाश्चात्य देशों में जाने के पहले एकमात्र माँ को ही अपना उद्देश्य बताया था, और उनका आशीर्वाद लेकर समुद्र-पार गए थे। माँ ने भी जी खोलकर आशीर्वाद देते हुए कहा था, 'बेटा, तुम दिग्विजयी होकर लौटो; तुम्हारे मुख में सरस्वती बसे।' और हुआ भी वैसा ही। माँ के आशीर्वाद से स्वामीजी विश्वविजयी हुए थे। वे तो कभी-कभी ऐसा भी कहते थे कि माँ तो ठाकुर से भी बड़ी हैं। इतनी अगाध श्रद्धा थी उनकी श्रीश्रीमाँ पर! ठाकुर ने भी कहा था, 'नहवत * में जो हैं, वह यदि किसी कारण किसी के ऊपर क्रुद्ध हो जाय, तो उसकी रक्षा करना मेरे साध्य के बाहर है।' जगत् की समग्र स्त्री-जाति को जगाने के लिए माँ नर-देह धारण कर अवतरित हुई थीं। देखो न, माँ के आने के बाद से सभी देशों की नारी-जाति के भीतर कैसी अद्भुत जागृति पैदा हो गई है। वे सब अब अपने जीवन को सर्वांगसुन्दर बनाने और सभी विषयों में उन्नत होने के लिए कमर कसे हुए हैं। अभी हुआ ही क्या है? यह तो केवल प्रारम्भ मात्र है। वैदिक और पौराणिक युग में जैसे गार्गी, मैत्रेयी, सीता, सावित्री आदि अद्भुत नारी-चरित्र का विकास हुआ था, इस युग में स्त्रियों के भीतर उससे भी बड़े-बड़े आधार का विकास होगा। स्त्रियों के भीतर आध्यात्मिकता, राजनीति, विज्ञान, शिल्पकला, साहित्य आदि सभी विषयों में अत्यन्त आश्चर्यजनक जागृति हुई है; तथा आगे और भी होगी। यह सब ईश्वरीय शक्ति का खेल

* दक्षिणेश्वर में श्रीश्रीमाँ छोटे से नहवतखाने में रहती थीं।

है। साधारण मनुष्य इस सबका गूढ़ मर्म कुछ भी नहीं समझ सकता।"

बालिका भक्त —"मैं तो माता ठाकुरानी के विषय में विशेष कुछ नहीं जानती। उनकी जीवनी या उपदेश कुछ भी नहीं पढ़ा है। आप उनके सम्बन्ध में कृपा करके कुछ बताइए। मेरी सुनने की बड़ी उत्कण्ठा हो रही है।"

महापुरुषजी —"माँ तो सभी की माँ थीं। उनमें कितनी दया थी, कितनी क्षमा और कैसी अद्भुत उनकी सहनशीलता! माँ को हम लोग भी भला कितना समझ पाए हैं? फिर भी, उन्होंने कृपा करके इतना समझा दिया है कि वे साक्षात् जगन्माता हैं। उनका स्वरूप क्या है, इस बात को जब तक वे स्वयं नहीं समझातीं, तब तक उन्हें समझने का कोई अन्य उपाय नहीं। पहले योगीन्द्र महाराज ने और बाद में शरत् महाराज ने माँ की खूब सेवा की थी। मैंने भी एक बार जयरामवाटी में जाकर माँ को रसोई बनाकर खिलाई थी। यह बहुत दिन की बात है—ठाकुर के देह-त्याग के कुछ वर्ष बाद की बात है। माँ उस समय जयरामवाटी में रहती थीं। मैं, शशी महाराज तथा एक व्यक्ति कोई और था—ठीक याद नहीं आता, सम्भवतः खोका महाराज थे। हम तीनों माँ के दर्शन करने के लिए जयरामवाटी गए। उस समय जयरामवाटी में भक्त लोग अधिकतर नहीं जाते थे। और यातायात की भी बड़ी असुविधा थी। हम लोगों ने पहले से माँ को सूचना दे दी थी। हम लोगों को देखकर माँ को जो आनन्द हुआ, उसका कहना ही क्या! क्या खिलाएँगी, किस प्रकार हम लोगों को सुख होगा—इसी को लेकर वे समस्त दिन व्यस्त रहीं। जय-

रामवाटी एक छोटा सा गाँव है। वहाँ सामान आदि कुछ नहीं मिलता। किन्तु ऐसे छोटे से गाँव में भी माँ ने ग्वाले से कहकर दूध का बन्दोबस्त कर लिया था, तथा तरह-तरह की साग-भाजी भी संग्रह कर ली थी। कलकत्ते के लोगों को चाय पीने की आदत होती है, यह माँ जानती थीं। इसलिए माँ ने हम लोगों के लिए चाय का भी प्रबन्ध कर रखा था। समस्त दिन अत्यन्त आनन्द में बीत गया। हम लोग तालपुकुर (तालाब) में खूब नहाए। माँ हम लोगों के सामने प्रायः नहीं आती थीं, बातचीत भी नहीं करती थीं। रात में खाने-पीने के बाद सोने के समय शशी महाराज के साथ परामर्श करके यह ठीक किया कि दूसरे दिन माँ को रसोई बनाकर खिलानी होगी। दूसरे दिन सवेरे चाय पीने के बाद माँ के पास जब यह प्रस्ताव रखा गया, तो माँ ने पहले तो हँसकर ही हम लोगों की बात को उड़ा दिया। वे बोलीं, 'सो कैसे होगा, बेटा? मैं माँ हूँ, कहाँ तो मैं भोजन बनाकर तुम लोगों को खिलाऊँ, और कहाँ तुम लोग उलटे भोजन बनाकर मुझे खिलाना चाहते हो। फिर तुम लोग भोजन बना भी कैसे सकोगे? धुएँ से तो तुम लोगों की आँखें दुखने लगेंगी।' इत्यादि अनेक कठिनाइयाँ उन्होंने सुझाईं। पर हम लोगों ने माँ की बातों पर ध्यान नही दिया; लगे जिद करने। अन्त में मैंने कहा, 'हम लोगों का तो ब्राह्मण-शरीर है, हम लोगों के हाथ की रसोई खाने में आपको कोई आपत्ति क्यों होनी चाहिए? ठाकुर ने भी तो हम लोगों के हाथ की रसोई खाई थी,' इत्यादि। लाचार होकर माँ राजी हो गईं। शशी महाराज और मैंने रसोई बनाई। माँ ने प्रसन्नतापूर्वक भोजन किया और बहुत खुश हुईं।"

बालिका भक्त —"महाराज, आपने ठाकुर को भी रसोई बनाकर खिलाई थी ?"

महापुरुषजी —"हाँ, माई ! ठाकुर का शरीर उस समय विशेष अस्वस्थ था, चिकित्सा के लिए काशीपुर के उद्यान-भवन में रहते थे। स्वामीजी आदि हम लोग सभी उनकी सेवा के लिए वहाँ पर रहते थे। हम लोग पारी-पारी से दिन-रात समान भाव से उनकी सेवा में लगे रहते थे। सबका खाना-पीना वहीं होता था। सुरेश बाबू ने सभी व्यवस्था कर दी थी। रसोई बनाने के लिए एक रसोइया भी था। एक बार उसके अस्वस्थ हो जाने पर हम लोगों ने पारी बाँधकर अपने हाथ से ही रसोई बनाई थी। भात, दाल, रोटी, चच्चड़ी,* झोल — इस प्रकार सामान्य दैनिक रसोई हम लोगों ने बनाई थी। उस समय हम सब लोगों के मन की अवस्था ऐसी थी कि खाने की ओर किसी का मन था ही नहीं — जो बन जाता, उसी को पा लेते थे। एक तो ठाकुर को अत्यधिक कष्ट था, उसके अतिरिक्त उस समय हम सभी लोग अत्यन्त कठोर साधन-भजन में लगे रहते थे। उसी समय एक दिन रात में मैंने रसोई बनाई थी — दाल, रोटी और चच्चड़ी। चच्चड़ी में जब मैं बघार दे रहा था, ठाकुर ऊपर से ही बघार की महक पाकर एक सेवक से पूछने लगे, 'क्यों रे, क्या रसोई बन रही है तुम लोगों को ? वाह ! बघार की महक बहुत सुन्दर है ! कौन बना रहा है ?' यह सुनकर कि मैं रसोई बना रहा था, उन्होंने कहा, 'जा रे, मेरे लिए थोड़ा सा ले आ।' उसी चच्चड़ी को ठाकुर ने थोड़ा सा खाया था। उस समय तो ठाकुर को

* तरकारी का एक विशेष बंगाली प्रकार।

गले की सख्त बीमारी थी -- कोई भी चीज नहीं खा सकते थे। दूध में सूजी पका करके थोड़ा सा उनको दिया जाता था, वह भी वे अत्यन्त कष्ट से खाते थे। अधिकतर तो वे उतना भी नहीं खा सकते थे। उसके अतिरिक्त, उन्हे बारम्बार इतनी भावसमाधि होती थी कि उन्हें बिलकुल बाह्यज्ञान नहीं रहता था। काशीपुर बगीचे मे ठाकुर की सेवा और साधन-भजन में हम लोगों का दिन कितने आनन्द से कटता था! हम सबों को एकत्रित करके भावी संघ की सृष्टि करने के लिए ही मानो ठाकुर को यह बीमारी हुई थी। अवतार की लीला के गूढ़ रहस्यों को साधारण मनुष्य भला कैसे समझेगा?"

यह कहते-कहते महापुरुषजी एकदम निर्वाक् और स्थिर हो गए। थोड़ी देर बाद धीरे-धीरे बोले, "हाँ भाई, तो तुम लोगों को जयरामवाटी की बात बता रहा था। उस बार माँ के पास तीन दिन हम लोग खूब आनन्द से रहे। अहा! माँ का क्या स्नेह था! सवेरे से लेकर रात तक अत्यन्त व्यस्त रहती थी, ताकि हम लोगों को कोई कष्ट या असुविधा न हो। मैं तो जब छोटा था, तभी मेरी माँ का स्वर्गवास हो गया था; माँ की स्नेह-ममता क्या चीज है—यह मैं एक प्रकार से भूल ही गया था। किन्तु जयरामवाटी में माँ के पास जाकर वही स्नेह-ममता मुझे फिर मिली थी। तीसरे दिन रात में मुझे बहुत जाड़ा देकर ज्वर हो आया। सन्ध्या समय से ही थोड़ा-थोड़ा ज्वर-सा मालूम होता था; परन्तु फिर भी रात में मैंने खाना खा लिया था। माँ के यहाँ तो खाए बिना छुटकारा था ही नहीं। रात में जब सोया, तो खूब जाड़ा देकर ज्वर हो आया। रात ज्यों-ज्यों बढ़ने लगी, ज्वर भी त्यों-त्यों बढ़ने

लगा। सारी रात एक प्रकार से बेहोश-सा ही पड़ा रहा। रात के पिछले पहर शशी महाराज को धीरे-धीरे पुकारकर मैंने कहा, 'भाई, अब और अधिक यहाँ रहना ठीक नहीं। यहाँ पर बीमार होकर रहना माँ को केवल कष्ट देना है। कल सबेरे ही माँ के पास जाकर उनसे आज्ञा लेकर लौट चलना होगा। उसके बाद जो होने का है, सो होगा।' शशी महाराज भी सहमत हो गए। सबेरा होते ही हम तीनों लोग माँ को प्रणाम कर रवाना हुए। हम लोगों को इतनी जल्दी लौटते देख माँ ने पहले तो बहुत रोका। अन्त में हम लोगों का आग्रह देखकर वे फिर और कुछ नहीं बोलीं। हम लोग माँ के घर से निकलकर अत्यन्त कष्टपूर्वक थोड़ी दूर आए। इसी समय रास्ते में एक खाली बैलगाड़ी मिली। आरामबाग तक का भाड़ा तय करके हम तीनों उस गाड़ी में बैठ गए। गाड़ी में बैठ जाने के बाद में तो एक प्रकार से बेहोश-सा ही होकर पड़ा रहा। दोपहर के समय एक गाँव में गाड़ी को खड़ी करके थोड़े से गरम पानी का प्रबन्ध किया गया। उस गाँव का एक व्यक्ति मेरा इस प्रकार का ज्वर देखकर बोला, 'बेल-पत्ते का रस पी लेने से ज्वर तुरन्त उतर जायगा।' हम लोगों के पास कोई औषध आदि तो थी नहीं; अन्त में बेल-पत्ते का रस पीने के लिए ही मुझे बाध्य होना पड़ा। वह ग्रामीण व्यक्ति बेल-पत्ते का थोड़ा सा रस बनाकर ले आया और उसे गरम पानी में डालकर मुझे पिला दिया। शशी महाराज इस गाँव की दूकान से थोड़ी सी लाई और गुड़-लाई खरीद लाए और उन दोनों ने जलपान किया। फिर गाड़ी रवाना हुई। मुझे तो ज्वर बराबर बना ही रहा। इस ज्वर को लेकर आरामबाग

आए। वहाँ डाक्टर को बुलवाकर चिकित्सा आदि की व्यवस्था की गई। डाक्टर ने देखकर कहा — मलेरिया है। मैं तो सुनकर अवाक् रह गया। मलेरिया कैसे हो गया? मुझे तो दस-पन्द्रह वर्ष से कोई भी ज्वर नहीं हुआ। लड़कपन में अवश्य मैं मलेरिया का भोग पर्याप्त कर चुका था। किन्तु ठाकुर के श्रीचरणों के समीप आने के अनेक वर्ष पहले से ही मैंने एक प्रकार से बारासात छोड़ दिया था! एक बार मुझे खूब मलेरिया हुआ था। उस समय मेरी आयु चौदह-पन्द्रह वर्ष की थी। थोड़ा सा आराम होते ही जलवायु-परिवर्तन के लिए मैं पश्चिम चला गया था और बहुत दिनों तक पश्चिम में ही रहा था। उसके बाद भी बारासात प्रायः नहीं जाता था, विशेषकर मलेरिया के समय। इसी लिए आरामबाग में डाक्टर ने जब कहा कि मलेरिया है, तो अन्त में निर्णय किया कि यह जो जयरामबाटी के तालपुकुर में खूब नहाया गया था, शायद उसी से अनेक वर्ष पुराना उस मलेरिया ज्वर का बीज कहीं फिर से तो नहीं जाग उठा है। जो भी हो, आराम-बाग में कुछ दिन रहकर स्वस्थ होने के बाद हम लोग कलकत्ता लौट आए।"

बेलुड़ मठ

मंगलवार, ७ मई, १९२९

एक भक्त की संन्यास ग्रहण करने की प्रबल इच्छा है। उसने महापुरुषजी से अपनी इच्छा प्रकट की। इस पर उन्होंने कहा, "यह मैं क्या जानूँ? यदि संन्यासी होने की तुम्हारी

आन्तरिक इच्छा है, तो बस निकल पड़ो। यदि संसार अनित्य प्रतीत होता है, तो अत्युत्तम बात है। कहीं चले जाओ, खूब साधन-भजन करो। इसमें मेरे आदेश या निषेध की क्या जरूरत? भगवान के नाम का आश्रय लेकर संसार छोड़कर चले जाना, यह तो महाभाग्य की बात है। उनकी कृपा होने पर ही यह सम्भव होता है। इस समय मठ-मिशन में प्रवेश करने की कोई आवश्यकता नहीं। पहले खूब साधन-भजन में डूब जाओ। बाद में यदि कोई आदेश मिले, तो अच्छी बात है। तब मिशन में आकर उनका कार्य करना।"

है। परन्तु सबमें सार वस्तु है भक्ति। जहाँ भक्ति है, वहीं जानना भगवत्कृपा है। यह बाह्य पूजा आदि तो केवल अवलम्बन मात्र है।"

बेलुड़ मठ

सोमवार, १३ मई, १९२९

सबेरे का समय है। महापुरुष महाराज अपने कमरे में बैठे हुए हैं। मठ के अनेक साधु वहाँ उपस्थित हैं, विविध प्रसंग की वार्ता हो रही है। गत कई दिन से मठ में सन्ध्या के बाद एक क्लास लगता है। मठ के प्रायः समस्त साधु उसमें उपस्थित रहते हैं। इसी क्लास का प्रसंग चला। क्लास में स्वामीजी-रचित मठ की नियमावली का अध्ययन किया जा रहा है। एक-एक नियम, पढ़ा जाता है और उस पर विचार-परामर्श आदि होता है। सुधीर महाराज, कालीकृष्ण महाराज, शर्वानन्द स्वामी आदि सभी इस क्लास में उपस्थित रहते हैं और जटिल प्रश्नों का समाधान कर देते हैं। क्लास के सम्बन्ध में महापुरुषजी ने कहा, "इस प्रकार का क्लास लगना बहुत अच्छा है। यह मठ है, यहाँ दिन-रात पूजा, पाठ, ध्यान, जप, आलोचना आदि—यही सब होना चाहिए।"

एक संन्यासी—"आजकल मठ की नियमावली पढ़ी जा रही है।"

महाराज—"बहुत अच्छी बात है। स्वामीजी के शब्द सब ऋषि-वाक्य हैं, सूत्राकार में लिखे हुए हैं। एक-एक बात में अनेकों भाव निहित हैं। ये सब बातें लेकर परस्पर आलोचना करने पर

अनेक नई चीजें मालूम हो सकती हैं। मठ में यह सब जितना हो, उतना ही अच्छा है। प्रत्येक को जीवन के लक्ष्य की ओर नजर डालनी चाहिए। भगवद्भक्ति, विश्वास, प्रेम, प्रीति, पवित्रता, परस्पर स्नेह-प्रेम — यही सब तो जीवन का उद्देश्य है। घर-द्वार छोड़कर हम लोग जो यहाँ आए हैं, इसका तात्पर्य क्या है? क्यों आए हैं? क्यों हम लोग यहाँ संघबद्ध होकर बैठे हैं? जिसके द्वारा हमारा त्याग-भाव बढ़ेगा, उसी के लिए कातर हृदय से प्रार्थना करनी होगी।"

सामने एक संन्यासी खड़े थे। उनको लक्ष्य कर महापुरुषजी ने कहा, "क्यों, तुम इस क्लास में सहयोग देते हो न?"

संन्यासी — "जी नहीं। सन्ध्या समय, काम-काज करने के बाद बड़ी थकावट मालूम होती है, इसी लिए वहाँ बैठ नहीं पाता।"

महाराज — "नहीं, यह सब सुनना बहुत अच्छा है। स्वामीजी दूरदर्शी ऋषि थे। वे भविष्य में क्या होगा, क्या नहीं होगा, यह सब जान सकते थे। इसी लिए तो मठ के हेतु ये सब नियम बना गए हैं। हम लोग उनके वचनों पर जितना विचार-परामर्श करेंगे, जितना पालन करेंगे, उतना ही हमारा कल्याण होगा। हम लोग सब साधु हैं। भगवत्प्राप्ति ही हमारे जीवन का एकमात्र लक्ष्य है। यह संसार बड़ी भयंकर जगह है। यहाँ अनेक प्रकार के काम-काज के बीच में से ठीक उद्देश्य की ओर अग्रसर होना बड़ा ही कठिन है। कहीं भी पैर फिसल सकता है। ठाकुर जैसे कहते थे, 'खेत की ऊँची मेंड़ पर से जाते-जाते बच्चों का पैर फिसल जाता है। जो बालक बाप का हाथ पकड़े रहता है, वह यदि अपने को सँभाल न पाया, तो कभी-कभी

एकदम मेंड़ पर से नीचे गिर पड़ता है। किन्तु जिस बालक का हाथ बाप स्वयं पकड़े रहता है, उसको फिर गिरने का डर नहीं रहता।' इसी प्रकार हम भी इस संसार के टेढ़े-मेढ़े, दुर्गम पथ पर विचरण कर रहे हैं; गिर जाने की बहुत सम्भावना रहती है। किन्तु ठाकुर यदि हमारा हाथ पकड़े रहें, तो फिर गिरने का भय नहीं रहता। ठाकुर हम लोगों के हाथ पकड़े ही हुए हैं, नहीं तो कौन जाने कहाँ और कब पैर फिसल जाता और हम लोग गिर पड़ते? इसी लिए मन-वचन-कर्म से प्रार्थना करनी चाहिए, 'ठाकुर, तुम हमारा हाथ पकड़े रहो। हम तो दुर्बल हैं, पद-पद पर हमारे फिसलने की सम्भावना है; किन्तु तुम यदि हमारा हाथ पकड़े रहो, तो हम बच जायँगे।' वे तो हम लोगों के प्राणों के भी प्राण हैं। भीतर ही विराजमान हैं। कातर भाव से प्रार्थना करने पर वे हमारी प्रार्थना सुनेंगे ही। वे तो युगावतार हैं, युगधर्म के संस्थापन के लिए ही यह रामकृष्ण-रूप धारण कर आए हैं। वे हम सब पर भी कृपा करेंगे। और कर भी रहे हैं। नहीं तो यहाँ लाते क्यों? 'जृम्भित-युग-ईश्वर जगदीश्वर योगसहाय'—ये स्वामीजी के वचन हैं, बच्चा। वे युग-ईश्वर हैं। इस युग में जो भी उनके शरणागत होगा, उसका कल्याण होगा ही। शरणागति, और प्रार्थना (हाथ जोड़कर), 'ठाकुर, हममें त्याग-वैराग्य बढ़ा दो, हमें पवित्र करो, पारस्परिक स्नेह-प्रीति बढ़ा दो। तुम हाथ पकड़े रहो।' * * * पर-निन्दा, पर-चर्चा, यह सब बहुत खराब है। इससे मन की गति नीच हो जाती है। जितनी देर हो सके, भगवान का जप-ध्यान, पूजा-पाठ आदि करना और शेष समय चुपचाप रहकर स्मरण-मनन करना बहुत अच्छा है।

संघबद्ध होकर रहने की बड़ी आवश्यकता है और इसकी उपयोगिता भी बहुत है। इसी लिए तो स्वामीजी इस संघ की सृष्टि कर गए। साथ ही सेवा आदि शुद्ध कर्म का भी प्रवर्तन कर गए।"

बेलुड़ मठ

बृहस्पतिवार, २३ मई, १९२९

आज वैशाखी पूर्णिमा—बुद्धपूर्णिमा है। सन्ध्या समय बुद्धदेव की जीवनी पर चर्चा हुई थी। मठ के अनेक संन्यासियों ने भाषण आदि दिए। उसके पश्चात् रात्रि को बुद्धदेव का चित्र पुष्प और माला आदि से सुशोभित किया गया। फिर भजन आदि हुए और बुद्धदेव की जीवनी पढ़ी गई। तत्पश्चात् स्वामी शुद्धानन्दजी ने बँगला में और स्वामी शर्वानन्दजी ने अंग्रेज़ी में बुद्धदेव की जीवनी, उनके सिद्धान्त और उपदेशों के सम्बन्ध में व्याख्यान दिया। भोजन आदि के बाद स्वामी ओंकारानन्द महापुरुषजी के समीप आकर खड़े हुए और दो-एक साधारण बातचीत के उपरान्त बोले, "आज बहुत अच्छा दिन है। यहाँ खूब उत्सव हुआ। सन्ध्या समय भाषण आदि भी हुए थे।"

महाराज—"हाँ, बहुत शुभ दिन है। 'Thrice blessed day.' अच्छा, क्या वह गाना हुआ था, 'जुड़ाइते चाइ, कोथाय जुड़ाइ, कोथा होते आसि, कोथा भेसे जाइ?*'"

* शान्ति चाहता हूँ, पर वह कहाँ पाऊँ? न जाने कहाँ से आता हूँ और कहाँ चला जाता हूँ?

स्वामी ओंकारानन्द—"जी नहीं, इस गाने को कोई भलीभाँति जानता न था।"

महाराज—"बड़ा सुन्दर गाना है; इसे गिरीश बाबू ने बनाया था।"

यह कहकर वे स्वयं सस्वर गाने लगे। फिर कहा, "बहुत सुन्दर बनाया है गिरीश बाबू ने। ठीक ललितविस्तर का भाव लेकर उन्होंने इस गाने की रचना की थी। ललितविस्तर में यह sense (भाव) बहुत सुन्दर है। एक समय बुद्धदेव, जब वे सिद्धार्थ थे, अपनी पत्नी गोपा के साथ आमोद-प्रमोद कर रहे थे। उसी समय आकाशमार्ग से अप्सराएँ यह गाना गाते हुए जा रही थीं। एकाएक यह गाना सुनकर बुद्धदेव चौंक उठे और कहने लगे, 'कौन यह गाना गा रहा है? यह तो मेरा परिचित गान है। "जुड़ाइते चाइ, कोथाय जुड़ाइ" यह तो मेरा चिर-परिचित गान है!' यह गाना सुनकर बुद्धदेव की मनोगति तत्क्षण बदल गई। तब से वे सदा उदास-से रहने लगे और भोग-विलास से मन उचट गया। उनके पिता राजा शुद्धोदन ने जब यह बात सुनी, तो अनेक प्रकार से बुद्धदेव की मनोगति फिराने की चेष्टा करने लगे, नाना प्रकार के प्रलोभनों द्वारा उनके मन को भोग की ओर खींचने का प्रयत्न करने लगे। किन्तु उस समय उनकी निद्रा खुल चुकी थी। अतः सभी चेष्टाएँ विफल हो गईं। उसके बाद वे एक रात प्रासाद छोड़कर बाहर निकल पड़े। * * * मध्यमार्ग के सम्बन्ध में भी ललितविस्तर का अवलम्बन कर गिरीश बाबू ने और एक गाना बनाया था—

'आमार ए साधेर वीणे, यत्ने गाँथा तारेर हार।
जे यत्न जाने, बाजाय वीणे, उठे सुधा अनिवार॥

तानें मानें बांधले डुरि, शतधारे वय माधुरी ।
बाजे ना आलगा तारे, टानले छेड़े कोमल तार ॥ ' †

* * * "वह भी क्या समय बीत गया — कैसा त्याग, वैराग्य, तपस्या ! भगवान जब जगत् में आते हैं, तब आध्यात्मिकता का एक स्रोत बह जाता है । बहुत से लोग ज्ञानालोक पाकर धन्य हो जाते हैं, बहुत लोगों की रक्षा होती है ।"

स्वामी ओंकारानन्द — "परेशनाथ के पहाड़ पर भी चौबीस-पचीस भिक्षुओं ने सिद्धि पाई थी । उनमें से पन्द्रह-सोलह जैन-भिक्षु थे और शेष बौद्ध-भिक्षु ।"

महाराज — "एक समय हम लोगों के बीच भी बौद्ध धर्म के सम्बन्ध में बहुत आलोचना और विचार आदि चला करता था । यह बहुत दिनों की बात है । उस समय स्वामीजी तथा हम सब लोग ठाकुर के पास काशीपुर के बगीचे में रहते थे । स्वामीजी तो बड़े विद्वान् थे ही, हम लोगों ने भी कुछ-न-कुछ पढ़ा था । खूब तर्क-वितर्क होता था । उस समय हम लोग ईश्वर आदि कुछ नहीं मानते थे । हम लोगों की यह सब वार्ता सुनकर अन्य भक्तगणों को बड़ा दुःख होता था । स्वामीजी स्वयं तो अधिक बोलते नहीं थे — बहस में मुझे ही लगा देते थे और मैं खूब बोलता था । स्वामीजी सब सुनते और मजा लेते रहते थे । कभी-कभी तो मैं यह भी कहता था कि शरीर-

† मेरी यह वीणा मुझे बड़ी प्रिय है । इसके तार बड़े यत्न से गूँथे हुए हैं । इस वीणा को जो यत्नपूर्वक रखना जानता है, वही इसे बजाता है, और तब इससे अनवरत सुधा-धारा बह चलती है । ताल-मान के साथ इसके तारों को कसने पर माधुरी शत धाराओं से होकर प्रवाहित होने लगती है । तारों के ढीले रहने पर यह नहीं बजती, और अधिक खींचने से इसके कोमल तार टूट जाते हैं ।

बुद्धि लाना ही अन्याय है, इससे ध्यान में विघ्न पड़ता है; यहां तक कि ईश्वर की भावना भी मन को निर्विषय नहीं होने देती। केवल मुख से ही यह सब कहा करते थे, ऐसी बात नहीं, उस समय ध्यान, दर्शन आदि भी सब इसी भाव के अनुरूप होते थे। उस समय इस भाव में हम लोग इतना डूब गए थे कि अन्य किसी दूसरे प्रकार से सोच ही नहीं सकते थे। धीरे-धीरे यह बात ठाकुर के कानों तक पहुँची। ठाकुर ने यह सब सुनकर कहा, 'वे लोग जो कुछ कहते हैं, यह ठीक ही है। एक प्रकार की अवस्था आती है, जब साधक भगवान नहीं मानता।' मेरा यह भाव अनेक दिन रहा। जब ठाकुर के देहान्त के बाद हम लोग वराहनगर मठ में आ गए, तब भी यही भाव चलता रहा — भगवान को तब भी नहीं मानता था। एक दिन ठाकुर दर्शन देकर बोले, 'अरे, गुरु ही सर्वस्व हैं। गुरु से बड़ा और कोई नहीं है।' यह सुनते ही मन से वह सब भाव चला गया। उसके बाद फिर मन में वह भाव और कभी नहीं आया। ठाकुर तो युगावतार हैं न, युगधर्म-संस्थापन के लिए ही आए थे; वे संकीर्ण या एकदेशीय भाव क्यों रखने देंगे?"

स्वामी ओंकारानन्द —"ठाकुर के पास रहते समय आप लोग एक बार बिना किसी को बताए बुद्ध-गया भी तो गए थे न?"

महाराज —"हां, स्वामीजी के साथ गए थे। वहां जाकर उसी बोधि-वृक्ष के नीचे हम लोग एक साथ ध्यान करने बैठे। बहुत अच्छा ध्यान जम गया था। इसी समय एकाएक स्वामीजी भावावस्था में चिल्लाकर रो उठे और मुझे जोर से पकड़कर बैठ गए, मैं पास ही बैठा था। फिर कुछ देर बाद अपने आप

ही, साधारण मनुष्य के समान प्रकृतिस्थ होकर स्वामीजी दुबारा गम्भीर ध्यान में मग्न हो गए। दूसरे दिन बातचीत के सिल-सिले में मैंने स्वामीजी से पूछा, तो उन्होंने बतलाया, 'मन में मैंने एक गम्भीर वेदना अनुभव की थी। मन में ऐसा हुआ कि यहाँ और तो सब कुछ रखा हुआ है — यहाँ बुद्धदेव का वह भाव घनीभूत होकर विद्यमान है। उनका त्याग, वैराग्य, उनकी वह महाप्राणता, उनकी वह गम्भीर आध्यात्मिकता सभी कुछ तो विद्यमान है। किन्तु वे स्वयं कहाँ हैं? इन सब भावों की घनीभूत मूर्ति वे बुद्धदेव कहाँ हैं? हृदय में बुद्धदेव का विरह इतना अनुभूत हुआ कि संभाल न सका, रो पड़ा और आपको कसकर पकड़ लिया।' बुद्ध-गया में जितने दिन हम लोग रहे, बड़े आनन्द में रहे।"

स्वामी ओंकारानन्द —"बुद्ध-गया में बुद्धदेव जहाँ टहलते थे, वहाँ संगमरमर का पथ बनाकर रख दिया है।"

महाराज —"हाँ, सिद्धि-लाभ होने के बाद उनको इतना आनन्द हुआ कि वे समस्त रात्रि आत्मविस्मृत होकर टहलते रहे — मन के आनन्द में केवल घूमते रहे।"

उस रात को बहुत देर तक भगवान बुद्धदेव का प्रसंग चलता रहा।

वेलुड़ मठ

रविवार, २१ जुलाई, १९२९

आज गुरुपूर्णिमा है। प्रातःकाल से अनेक भक्त महापुरुष महाराज के दर्शनार्थ आ रहे हैं। उनका स्वास्थ्य उतना अच्छा

नहीं है। एक भक्त के प्रणाम कर कुशल-प्रश्न पूछने पर महापुरुषजी ने कहा, "शरीर बिलकुल ठीक नहीं। और क्या ठीक रहे, बच्चा? अब तो दिन-प्रतिदिन शरीर क्षीण होता जायगा। शरीर का धर्म ही ऐसा है। देह तो षड्विकारात्मक है—'जायते, अस्ति, वर्द्धते, विपरिणमते, अपक्षीयते, नश्यति'।' अब धीरे-धीरे शरीर अन्तिम विकार की ओर जा रहा है। समस्त शरीरों का यही परिणाम होता है।"

भक्त—"आपके इच्छा मात्र करने से ही तो सब ठीक हो जायगा।"

महाराज—"नहीं बच्चा, ऐसा क्या हो सकता है? सब शरीरों का एक-न-एक दिन नाश होगा ही। 'अद्य किंवा शताब्दान्ते वाजाप्त होबे जानो ना?' * देह का नाश होता ही है। और यह शरीर तो बहुत दिन बच गया। लगभग ७६-७७ साल तो हो गए, और कितने दिन बचा रहेगा? देह का नाश तो होगा ही, पर मेरा उससे क्या? मैं तो देह नहीं हूँ? ठाकुर ने कृपा करके यह ज्ञान दे दिया है। पांचभौतिक देह पंचभूतों में मिल जायगी और मैं उस दिव्य-धाम में चला जाऊँगा, जहाँ जरा (बुढ़ापा) नहीं, मृत्यु नहीं, सुख नहीं, दुःख नहीं,—जो अमृतधाम है। यह ज्ञान ठाकुर ने कृपा करके खूब अच्छी तरह दे दिया है, और सतत दे भी रहे हैं।"

लगभग ९॥ बजे महाराज पूजा-घर में आए और दो भक्तों को दीक्षा दी। वहाँ से लौटकर, आरामकुर्सी पर शान्त भाव में बैठे हुए हैं। इसी समय एक भक्त ने आकर प्रणाम

---

* आज या सौ वर्ष बाद यह जब्त कर ली जायगी (अर्थात् इस देह का नाश हो जायगा), क्या यह नहीं जानते?

करने के बाद विनम्र भाव से पूछा, "महाराज, आज भी आपने दीक्षा दी है?"

महाराज — "हाँ, ठाकुर का नाम दिया है।"

भक्त — "आपका स्वास्थ्य तो वैसे ही ठीक नहीं, उस पर दीक्षा आदि देने से तो और भी खराब हो जायगा, महाराज!"

महाराज — "क्या करूँ, बताओ? जब लोग कातर होकर कहते हैं, तो बिना दिए नहीं रहा जाता। लोगों की व्याकुलता देखकर और अधिक नहीं रह सकता। देह रहने से ही सुख-दुःख हैं। और इस देह का भी एक दिन नाश होगा, यह तो निश्चित है। अतएव जितने दिन हैं, उतने दिन लोगों का कल्याण होता रहे। लोगों का कल्याण करते-करते यदि देह छूट जाय, तो वह तो अच्छा ही है। यदि एक मनुष्य का भी यथार्थ हित इस देह द्वारा हो, तो यह देह सार्थक हो जायगी।"

थोड़ी देर बाद एक भक्त ने आकर प्रणाम किया। वे अपने माता-पिता आदि सबको लेकर श्रीपुरीधाम के दर्शन कर अभी कुछ ही दिन हुए लौटे हैं। महापुरुषजी ने यह बात जानकर कहा, "यह तो अच्छा ही हुआ। माँ-बाप का कल्याण और तुम्हें भी श्रीजगन्नाथजी के दर्शन हो गए।" यह कहकर वे हँसने लगे।

भक्त — "मैंने और भी एक बार दर्शन किए थे; किन्तु उस समय अकाल पड़ा था। बहुतों ने कहा था, अकाल में दर्शन करने से कुछ फल नहीं होता।"

महाराज — "यह सब, बच्चा, हम नहीं मानते। भगवान

के दर्शन करने में काल-अकाल क्या? सब काल ही काल है। भगवान के दर्शन करने से अकाल भी काल हो जाता है। भगवान तो चिरमंगलमय हैं। उनके दर्शन से क्या कभी अमंगल होता है?" यह कहकर वे गाने लगे —

'मंगल तोमार नाम, मंगल तोमार धाम,
मंगल तोमार कार्य, तुमि मंगलनिदान।'*

बार-बार यह गाना गाकर बाद में बोले, "स्वामीजी यह गाना बहुत गाते थे।"

बेलुड़ मठ

शुक्रवार, २६ जुलाई, १९२९

सन्ध्या का समय है। महापुरुषजी अभी क्षौरकर्म से उठे हैं। इसी समय वराहनगर अनाथाश्रम के एक संन्यासी को देखकर उसे अपने पास बुलाया। उसके समीप आने पर कुछ साधारण वार्तालाप के बाद बोले, "तुम अभी कैसे जाओगे? स×× को लौट आने दो, फिर चाहे चले जाना। और भला जाओगे भी क्यों? यहाँ भी तो काम-काज करने के बाद जप-ध्यान के लिए तुम्हें यथेष्ट समय मिलेगा। यह तो मन का व्यापार है। मन यदि भगवन्मुखी होकर रहे, तो सब अवस्थाओं में जप-ध्यान करने का समय और सुविधा मिल जाती है। ठाकुर कहते थे, 'जिसके लिए यहाँ है, उसके लिए वहाँ भी है।' यह बिलकुल सत्य बात है, बच्चा! खूब व्याकुल होकर उन्हें पुकारो, प्रार्थना

* तुम्हारा नाम मंगलमय है, तुम्हारा धाम मंगलमय है, तुम्हारे कार्य-कलाप मंगलमय हैं, (हे नाथ,) तुम मंगल के हेतु हो।

करो। वे अधिकाधिक भक्ति-विश्वास देंगे। क्यों जाओगे? उनका काम कर रहे हो, यह क्या कम है?"

संन्यासी—"काXX जब जो चाहता है, कहने लगता है।" और यह कहकर रोने लगा।

महापुरुषजी—"मैं भी यही सोच रहा था कि तुम लोगों में कुछ हुआ है। क्यों वह चाहे जो कुछ कहता है? तुम ऐसे व्यक्ति तो नहीं हो, यह मैं अच्छी तरह जानता हूँ। तुम तो बड़े शान्त और बहुत अच्छे आदमी हो। अच्छा, काXX को एक बार यहाँ भेज तो देना। मैं समझा दूँगा। बच्चा, तुम बुरा न मानो। यह तो जानते ही हो कि चार बरतन एक जगह होते हैं, तो आवाज होती है। इसके लिए क्या किया जाय बताओ? ऐसा होता है, फिर सब चला भी जाता है। और फिर एक हाथ से भी तो ताली नहीं बजती? वह कहता है, तो कहने दो। तुम सब सहते जाओ। बस, सब झगड़ा मिट जायगा। तुम्हें थोड़ा दबना पड़ेगा, थोड़ा sacrifice (त्याग स्वीकार) करना पड़ेगा। तुम लोग ठाकुर के कार्य के लिए देह, मन, प्राण सब दे चुके हो, उनके लिए सब छोड़-छाड़कर आए हो, उनके काम के लिए इतना और करना पड़ेगा। तुम सहते जाओ, sacrifice किए जाओ—उनके काम के लिए। प्रभु तुम्हारा अनन्त कल्याण करेंगे।"

संन्यासी—"आप आशीर्वाद दीजिए, जिससे ऐसा ही कर सकूँ।"

महाराज—"खूब कर सकोगे। मैं बहुत आशीर्वाद देता हूँ, बच्चा, खूब आशीर्वाद देता हूँ। तुम भी ठाकुर के पास अत्यन्त कातर भाव से प्रार्थना करो। वे तुम्हें और भी शक्ति

देंगे। तुम लोग उनके लिए सब छोड़कर आए हो, उनके लिए कुछ भी अदेय नहीं। पांच व्यक्ति मिलकर यदि एक स्थान पर नहीं रहेंगे, तो उनका (ठाकुर का) कार्य कैसे होगा ? उनकी ओर देखकर सब सहे जाओ — भला-बुरा जो कुछ कहे। तुम सब लोग साधु हो। भला बनने के लिए, सत् होने के लिए यहाँ आए हो। तुम्हारे जीवन में और कोई वासना नहीं, कामना नहीं। तुम लोग केवल उन्हें ही चाहते हो। काम-काज में, थोड़ा-बहुत झगड़ा-झंझट हुआ ही करता है। यह होना कोई विचित्र नहीं, स्वाभाविक ही है। फिर भी, वह सब तुम लोगों के अन्दर रहता नहीं। आता है और चला जाता है; क्योंकि तुम्हारे जीवन का लक्ष्य है भगवान-लाभ। तुम लोगों के भीतर ये सब क्षुद्र राग-द्वेष आदि आ ही नहीं सकते। हमारी तो यही धारणा है। और यह जो काम-काज कर रहे हो, सब सेवा ही तो समझकर करते हो। इससे तुम्हारा मन दिन-पर-दिन शुद्ध होता जा रहा है। इसमें तुम लोगों की थोड़ी भी स्वार्थ-बुद्धि नहीं है। फिर भी, देखो, काम-काज के साथ-साथ साधन-भजन भी करना पड़ता है। जब कभी भी समय मिलेगा, बैठकर जप करोगे, ध्यान करोगे और हृदय से प्रार्थना करोगे। जब कभी मन में किसी प्रकार की दुर्बलता या अभाव मालूम हो, तभी ठाकुर के पास प्रकट कर देना। खूब व्याकुलता के साथ पुकारने से उनका उत्तर मिलेगा। नाम-जप खूब करना। नाम के द्वारा देह-मन शुद्ध हो जाता है, मन का मैल धुल जाता है। तुम लोग साधु बनने के लिए सब छोड़-छाड़कर यहाँ आए हो; भगवान-लाभ ही है, बच्चा, तुम लोगों के जीवन का उद्देश्य। तुम्हारा आदर्श है, 'तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी सन्तुष्टो

येन केनचित्' * —'निन्दा-स्तुति में समभाव, मौन रहना, और जो मिल जाय उसी में सन्तुष्ट रहना'— यह अवस्था। तुम लोग ठाकुर के भाव में रहोगे। किसने क्या कहा, क्या नहीं कहा, इससे तुम्हारा क्या प्रयोजन?"

यह उपदेश सुनकर संन्यासी ने जोर से रुदन करते हुए महापुरुषजी के चरण पकड़ लिए और कहा, "महाराज, ऐसा आशीर्वाद दीजिए, जिससे निन्दा, स्तुति सब एक हो जायें, जिससे मैं केवल ठाकुर में मग्न होकर रह सकूँ।" महापुरुषजी उसे जितनी सान्त्वना देने लगे, वह उतना ही व्याकुल होकर करुण स्वर से बालक के समान रोने लगा। महापुरुषजी बोले, "खूब होगी, बच्चा, तुम्हारी यह अवस्था निश्चय ही होगी। ठाकुर की तुम पर कृपा है, इसी लिए वे तुम्हें अपने समीप खींच लाए हैं।" कुछ क्षण बाद बड़े स्नेह के साथ बोले, "इस समय थोड़ा पूजा-घर जाओ। वहाँ बैठकर थोड़ा जप और प्रार्थना करो। इससे देखोगे कि मन बहुत हलका हो गया है। बाद में ठाकुर का थोड़ा सा प्रसाद लेना। जब फुरसत मिले, इसी तरह बीच-बीच में आते जाना। मठ में अनेक साधु-ब्रह्मचारी हैं, सबके साथ मिलते-जुलते हो न?"

बेलुड़ मठ

शुक्रवार, २ अगस्त, १९२९

सन्ध्या समय मठ के साधु-ब्रह्मचारीगण एक-एक कर महापुरुष महाराज को प्रणाम करने आ रहे हैं। जानकी आश्रम

* गीता — १२।१९

का एक ब्रह्मचारी कई दिन से मठ में है। उसके प्रणाम करने पर महाराज ने उनसे कहा, "यहाँ तो काम-काज रहता है। मठ में आए हो, तो जप-ध्यान तो करते हो न? प्रातः, सन्ध्या और रात में खूब जप-ध्यान करना। यह बहुत जाग्रत् स्थान है। स्वामीजी ने ठाकुर को सिर पर रखकर यहाँ लाकर बैठाया है। यहाँ ठाकुर का विशेष प्रकाश है। इसके अतिरिक्त, स्वामीजी, महाराज, बाबूराम महाराज, इन सबों ने कितना साधन-भजन यहाँ किया है! स्वामीजी ने तो यहाँ देह ही छोड़ी है। इस स्थान का कितना माहात्म्य है! साधन-भजन के लिए इतना अनुकूल स्थान और कहीं नहीं मिलेगा। घनीभूत भाव है यहाँ का। कितना ही ध्यान-जप, पूजा-पाठ, नाम-कीर्तन यहाँ हुआ है और हो रहा है। कितना भक्त-समागम, कितना होम, कितना क्या-क्या हुआ है! जितने दिन यहाँ रहो, खूब जप-ध्यान कर आनन्द-प्राप्ति करके जाओ। जितना अधिक ध्यान आदि करोगे, उतना ही इस स्थान का माहात्म्य समझ सकोगे। तुम लोग ठाकुर के भक्त हो, उनको पुकारते ही उनका उत्तर पाओगे, हृदय में आनन्द पाओगे।"

ब्रह्मचारी—"कितने ही समय मन में कितने ही प्रश्न उठते हैं, और सोचता हूँ कि सब आपसे कहूँ। कई बार मन में सन्देह भी होता है। किन्तु आपके सामने आते ही सब भूल जाता हूँ। मालूम होता है जैसे अब कोई संशय नहीं, सब मिट गया। आपके पास आते ही लगता है कि मैं भरपूर हो गया।"

महाराज—(सस्नेह)—"मन में क्या सन्देह होता है कहो न? जब जो मन में आए, कह दिया करो। फिर भी, यह जान लो कि सब शंकाओं का अपने अन्दर से ही समाधान हो जायगा। ठाकुर तो हम लोगों के अन्दर ही हैं, वे सबकी

अन्तरात्मा हैं। सब सन्देह वे भीतर से मिटा देते हैं। पर अवश्य ही उनसे वह सब कह देना पड़ेगा।"

यह कहकर गाना गाने लगे—

'आपनाते आपनि थेको मन, जेओ नाको कारो घरे।...
जा चाबि ता बसे पाबि, खोंजो निज अन्तःपुरे॥'*

"सब तुम्हारे भीतर ही है। फिर भी खोजना पड़ेगा, बच्चा, खोजना पड़ेगा।"

थोड़ी देर बाद एक दूसरा ब्रह्मचारी प्रणाम करने आया। उसकी शिखा छोटी देखकर महापुरुषजी ने मृदु भर्त्सना-सी करते हुए कहा, "क्यों जी, तुम्हारी शिखा इतनी छोटी है? तुम ब्रह्मचारी हो, शिखा धीरे-धीरे उड़ा ही दो। यह क्या? शायद समझते हो मुण्डित होते ही सन्यासी हो गए। बच्चा, संन्यास तो अन्दर की चीज है, वह शिखा काटने से नहीं होता।"

थोड़ी देर बाद स्वामी यतीश्वरानन्द ने आकर प्रणाम किया। महापुरुषजी ने कुशल-प्रश्न आदि के बाद कहा, "क्यों यतीश्वर, मद्रास जाना कब निश्चित हुआ?"

स्वामी यतीश्वरानन्द—"सोच रहा हूँ, ९ तारीख को जाऊँ। इससे पहले कोई शुभ दिन नहीं है। अश्लेषा, मघा, त्र्यहस्पर्श, बृहस्पतिवार का दिक्शूल आदि हैं। इसी लिए यही मुहूर्त ठीक किया है।"

महाराज—"ठीक है। फिर भी, तुम लोग कर्मण्य हो, तुम लोगों का यह मुहूर्त आदि देखना क्या चलेगा? जिन लोगों को काम-काज कुछ विशेष नहीं होता, वे ही उठते-बैठते पंचांग

* हे मन, अपने आप में ही रहो, कहीं और न जाओ। अपने भीतर ही खोजो, फिर जो कुछ चाहोगे, बैठे-ही-बैठे मिल जायगा।

देखा करते हैं। ठाकुर भी कहते थे कि जो लोग यह सब मानते हैं, उन्हीं को यह लगता भी है। और क्या? फिर तुम सब लोग तो माँ के भक्त हो, माँ सब अवस्थाओं में तुम लोगों की रक्षा कर रही है और करेंगी भी। ठाकुर का नाम लेकर चल देने से कोई विपद नहीं आती। उनके नाम के जोर से विपत्ति भी सम्पत्ति हो जाती है।"

यह कहकर वे गाना गाने लगे—

'जे जन दुर्गा दुर्गा बोले पथे चले जाय,
शूलहस्ते शूलपाणि रक्षा करेन ताय।'*

"तुलसीदास ने भी कहा है—

'सब तिथि सुतिथि है, सब वार सुवार।
उसको लागे भद्रा जे बिसरे नन्दकुमार॥'

"जिस दिन मन भरके भगवान का नाम लिया जाय, वही दिन सुदिन है।"

बेलुड़ मठ

बुधवार, ७ अगस्त, १९२९

प्रातःकाल, लगभग ७॥ बजे हैं। महापुरुषजी अभी थोड़ी मालिश कराएँगे। उसके लिए तैयारी हो रही है। इसी समय स्वामी शर्वानन्द ने आकर प्रणाम किया और पूछा, "कल रात में नींद हुई, महाराज?"

महाराज—"हाँ, रात में नींद ठीक ही हुई थी।"

---

* जो मार्ग में दुर्गा-दुर्गा कहकर जाता है, उसकी रक्षा स्वयं शिव हाथ में शूल लेकर करते हैं।

स्वामी शर्वानन्द —" शरीर कैसा है ?"

महाराज —(हँसते-हँसते)—" जब तक राम-नाम लेता हूँ, तब तक तो अच्छा ही हूँ ।"

फिर थोड़े गंभीर स्वर से बोले, " शरीर बिलकुल ठीक नहीं, दिन-पर-दिन क्षीण होता जा रहा है । फिर भी, उनकी इच्छा जितने दिन रखने की है, उतने दिन तो चलेगा ही । उनका *प्रयोजन हो, तो इस फूटी हांड़ी से भी काम निकाल सकते हैं ।* उनकी इच्छा से सब सम्भव है, और चला भी ले रहे हैं । इस टूटे शरीर से इस समय भी काम करा ले रहे हैं । यह देखो न, चल-फिर तो सकता नहीं, फिर भी उनकी इच्छा से इस देह के द्वारा काम तो हो ही रहा है । "

स्वामी शर्वानन्द —" हाँ, महाराज । आप लोगों का शरीर जितने दिन रहे, उतना ही हम लोगों का और जगत् का कल्याण है । ठीक-ठीक कार्य तो आप लोगों द्वारा ही सम्भव है । आप लोगों की एक बात से जो काम हो जायगा, हम लोगों की सौ चेष्टा करने पर भी वह नहीं होगा । "

महाराज —" सब उनकी इच्छा है । वे दया करके जिससे जितना काम करा लेंगे, वह उतना ही कर सकता है । और वही धन्य है, जिसे वे कृपा करके अपने कार्य में यन्त्ररूप से select (निर्वाचित) कर लें । वे स्वयं भगवान हैं, युगधर्म-संस्थापन के लिए युगावतार होकर आए थे । अतएव उनके कार्य में सहायक बनना क्या कम सौभाग्य की बात है ? ठाकुर का भाव कितना विशाल है, यह साधारण मनुष्य क्या समझ सकेगा ! उस साढ़े तीन हाथ के शरीर में क्या वस्तु थी, कैसी

महाशक्ति लीला करती थी, इसे यदि वे दया करके स्वयं न समझाएँ, तो किसकी सामर्थ्य जो समझ सके?—

'के तोमारे जानते पारे, तुमि ना जानाले परे?
वेद वेदान्त पाय ना अन्त, खुँजे वेड़ाय अन्धकारे।'*

वे यदि कृपा करके समझा दें, तभी सब कुछ सम्भव है, नहीं तो कैसे उनको समझोगे? देखने में तो वे साधारण मनुष्य के समान खाते, पीते, सोते, घूमते और शौच आदि क्रियाएँ करते हैं। किन्तु उनके भीतर जो ऐसा अनिर्वचनीय व्यापार चल रहा है, उसे लोग भला कैसे समझेंगे बताओ! उनकी विशाल शक्ति का खेल, जैसे-जैसे समय बीतेगा, लोग वैसे-ही-वैसे समझते जाएँगे। धर्म-जगत् में एक महान् उलट-पलट हो जायगा। यह सब ठाकुर कृपा करके कितना दिखा दे रहे हैं, यह मैं किससे कहूँ? किससे कहूँ और वह सब समझेगा भी कौन? वे बहुत कुछ दिखा दे रहे हैं। उनके सम्बन्ध में कितनी बातें हृदय के अन्दर (हृदय को हाथ से दिखाकर) उथल-पुथल कर रही हैं! किसी से यह सब कहने की तो बात है नहीं और फिर यह सब कोई समझ भी न सकेगा। तुम लोगों से भी नहीं कह सकता। यहाँ तक कि तुम लोग भी वह सब नहीं समझ सकोगे। महाराज (स्वामी ब्रह्मानन्द) जितने दिन थे, उनसे हृदय खोलकर सब बातें कहता था और कहकर हृदय हलका कर लेता था। वे भी आनन्द पाते और मुझे भी आनन्द होता। ये सब अत्यन्त गोपनीय बातें हैं। उनके साथ एकान्त

* (श्री माँ.) यदि तुम स्वयं को न जना दोगी, तो तुम्हें कौन जान सका है? वेद-वेदान्त तुम्हारा अन्त नहीं पा सके, वे तो अन्धकार में ही टटोलते फिरते हैं।

बेलुड़ मठ

शुक्रवार, ९ अगस्त, १९२१

कुछ दिन मठ में रहने के पश्चात् आज स्वामी ×× अपने कर्मस्थल मद्रास शाखा-केन्द्र में वापस चले जा रहे हैं। इसी लिए जब उन्होंने सवेरे आकर महापुरुषजी को प्रणाम किया, तो महापुरुषजी स्नेहपूर्वक बोले, "आज तुम भी चले जा रहे हो। इस बार अनेक दिन तक मठ में थे — ठाकुर के स्थान में। अच्छा, जाओ। तुम लोग प्रभु के भक्त हो, जहाँ भी जाओगे, ठाकुर तुम लोगों के साथ-साथ रहेंगे। उनके भक्त जहाँ रहते हैं, वे भी उनके साथ-साथ रहते हैं। वे बड़े भक्त-वत्सल हैं। '*मद्भक्ताः यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद,*' जहाँ भक्तगण उनका नामगुण गाते हैं, वहीं वे रहते हैं। अब तो ठाकुर के भक्त सब जगह हैं, और भी कितने ही होंगे। यही देखो न, केवल ४२-४३ वर्ष ही हुए हैं उन्हें देह छोड़े, पर इसी बीच में कितनी हलचल हो गई! जैसे-जैसे दिन बीतते जा रहे हैं, उतना ही लोग उनकी महिमा को समझते जा रहे हैं, और उनके भक्तों की संख्या भी बढ़ती जा रही है।

युगावतार जब आते हैं, तब ऐसा ही हुआ करता है। 'Truth will reveal itself'—सत्य स्वयप्रकाश है। सूर्य को देखने के लिए क्या किसी अन्य प्रकाश की आवश्यकता होती है? वैसे ही हमारे ठाकुर भी है। वे स्वयं ही प्रकाशित हो रहे हैं। ये दिखाऊ ठाकुर तो हैं नहीं। ये स्वयं भगवान है, जीव के दुःख से कातर होकर जगत् के कल्याण के लिए नर-देह धारण कर आए है। यहाँ सबको नतमस्तक होना पड़ेगा। 'रामकृष्ण' नाम इस युग का मन्त्र है। जो भी यहाँ शरण लेगा, उसका निश्चय कल्याण होगा। आजकल सभी देशों में, जो thoughtful minds (मनीषी) हैं, वे सभी भीतर-ही-भीतर ठाकुर के भाव से भावान्वित हो रहे हैं। यहाँ तक कि विलायत में भी ऐसे बहुत से लोग है, जो ठाकुर-स्वामीजी के प्रति अत्यन्त श्रद्धालु है। हाँ, इतनी बात जरूर है कि प्रकट रूप से कुछ कहने मे ये लोग सकोच करते हैं; क्योंकि भारत पराधीन देश है, उन्ही के आधीन है। इसी लिए Indian ideas (भारतीय भाव) या Indian personality (भारत के विशिष्ट व्यक्ति) को प्रकट रूप से अपनाने में उन्हें कुछ लज्जा-सी मालूम होती है। किन्तु क्रमशः उनका यह संकोच मिट जायगा। ठाकुर तो जगद्गुरु है। उनका भाव सभी को अपनाना पड़ेगा। उनको प्रकट रूप से कोई माने चाहे न माने, इससे कुछ बनता-बिगड़ता नहीं। आजकल तो West (पश्चिम) के बहुत से लोगों ने यही रट लगा रखी है कि वेदान्त तो उनके देश में ही था, वह कोई foreign (विदेशी) चीज नही है!"

किसी दूसरे अवसर पर स्वामी ×× के साथ मठ और मिशन सम्बन्धी अनेक महत्वपूर्ण वार्तालाप करने के प्रसंग में ठाकुर की संघ-शक्ति के सम्बन्ध में महापुरुषजी ने कहा था,

"'सत्यमेव जयति नानृतम्,'* सत्य की जय चिरकाल से होती आ रही है, और होगी भी। यह सब ईश्वरीय शक्ति का खेल है। ठाकुर स्थूल शरीर का परित्याग कर अब इस संघ के भीतर रहते हैं। इस समय ठाकुर संघरूप में हैं—यह स्वामीजी की वाणी है। यह जो तुम सब भक्तगण दूर-दूर के केन्द्रों से आकर एकत्रित हुए हो, इसका फल अत्यन्त शुभ होगा। ठाकुर अभी भी संघ की रक्षा कर रहे हैं तथा भविष्य में भी करेंगे, इसकी सूचना वे कभी-कभी इस संघ को जरा हिला-डुलाकर दे देते हैं। स्वामीजी ने स्वयं ठाकुर के निर्देशानुसार इस संघ का संगठन किया है और उनके उदार धर्म-भाव का समग्र जगत् में प्रचार करने का महान् उत्तरदायित्व इस संघ के ऊपर छोड़ गए हैं। कोई भी इस संघ का अनिष्ट नहीं कर सकता, इस बात को निश्चित रूप से जान लो। यदि कोई कभी अन्य प्रकार का अभिप्राय लेकर आए भी, तो ठाकुर उसके मन की गति को फेर देंगे, सभी को वे समझा देंगे—यहाँ तक कि अनेक प्रतिकूल अवस्थाओं के बीच में फेंककर भी। क्षुद्रबुद्धि मनुष्य तो भूल करेगा ही, किन्तु वे सब पर कृपा करते हैं। पापी, तापी, कोई भी उनकी कृपा से वंचित नहीं रहता है। स्वामीजी ने कहा है न—'आचण्डाला तिहतरयो यस्य प्रेमप्रवाहः' इत्यादि। वे सभी को क्षमा प्रदान करते हैं। चाण्डाल तक समस्त प्राणियों पर कृपा करने के लिए ही तो वे रामकृष्ण-रूप धारण कर आए थे। तुम लोगों ने ईसा मसीह की कहानी पढ़ी है न। जिन लोगों ने उन्हें सूली पर चढ़ाया, उन्हीं लोगों के लिए उन्होंने परमपिता [illegible] भाव से क्षमा की भिक्षा माँगी थी—'हे प्रभो,

[illegible] निषद्—३।१।६

इन लोगों को क्षमा करो। ये लोग क्या अन्याय कर रहे हैं, इसे समझ नही पाते।' वे परब्रह्म ही इस समय रामकृष्ण-रूप में आए हैं। हम लोगों ने तो अपनी आँखों देखा है—उनकी कैसी असीम क्षमा थी, कैसी अद्भुत क्षमा थी! और माँ,—उनकी तो तुलना ही नहीं है, वे तो साक्षात् जगदम्बा थीं। ऐसा भी सुना है कि एक व्यक्ति ने आकर माँ के पास एक लड़के का नाम लेकर कहा था—'उसने अत्यन्त घृणित अपराध किया है।' माँ ने बड़े गम्भीर भाव से वह सब सुन लिया। उसके बाद उस व्यक्ति ने माँ से अनुरोध करते हुए कहा, 'आप यदि उसको बुलाकर कुछ कह दें, तो अच्छा हो।' उस पर माँ ने कहा, 'बच्चा, तुम लोग ऐसा कह सकते हो, किन्तु मैं तो माँ हूँ! मेरे लिए तो सभी समान हैं। वह तुम्हारे निकट महा अपराधी और घृणित हो सकता है, किन्तु अपनी माँ के निकट नही। मैं माँ होकर सन्तान से कैसे घृणा करूँगी?' ऐसी क्षमा थी माँ की! यह सब तो हमारी आँखो के सामने हो गया है। हम लोगों ने भी यही सीखा है। ठाकुर, माँ, स्वामीजी इनके जीवन को देखकर ही तो हम लोगों को सीखना होगा।" और यह कहते-कहते महापुरुषजी का कण्ठ-स्वर कुछ रुद्ध-सा हो गया; वे और कुछ न बोल सके। कुछ देर चुप रहकर मन-ही-मन गुनगुनाने लगे—

'गाइए जगपति जगवन्दन,
ब्रह्म सनातन पातकनाशन।
एक देव त्रिभुवनपरिपालक,
कृपासिन्धु सुन्दर भवनायक॥
सेवक मन-मुद मंगलदाता,
विद्या-संपद-बुद्धि-विधाता।

जाचूँ चरण-भगति कर जोड़े,
वितर प्रेम-सुधा चित्त-चकोरे ॥'

वेलुड़ मठ

बृहस्पतिवार, १५ अगस्त, १९२९

एक भक्त वकालत करते है। महापुरुषजी का इन पर विशेष स्नेह है। इन भक्त ने आकर महापुरुषजी को प्रणाम किया और कुशल-प्रश्न आदि पूछकर उनके चरणों के समीप बैठ गए और अपने साधन-भजन के सम्बन्ध में बातचीत करने लगे।

भक्त — "महाराज, हार्दिक शान्ति तो नहीं मिल रही है। भीतर में सदा मानो हाहाकार मचा रहता है।"

महाराज —"उनका नाम-जप किए जाओ बच्चा, धीरे-धीरे शान्ति मिलेगी। यदि अधिक न कर सको, तो प्रातः और सायंकाल नियम करके बैठना।"

भक्त —"यह तो करता हूँ, किन्तु उससे हार्दिक तृप्ति नहीं होती। इच्छा होती है कि और भी करूँ, किन्तु समय से उठ नहीं पाता। शाम-सवेरे जब जप-ध्यान करने बैठता हूँ, विशेष आनन्द पाता हूँ। इतना आनन्द पाता हूँ कि छोड़कर उठने की इच्छा नहीं होती। किन्तु क्या करूँ, काम-काज के कारण उठना पड़ता है।"

महाराज —"इसका भला क्या उपाय? फिर भी, मन उनका स्मरण-मनन करते रहो। वे तो अन्तर्यामी हैं, हार्दिक आकुलता वे खूब जानते हैं। वे तुम पर कृपा

कर रहे हैं, और भी अधिक करेंगे। तुम्हारे हृदय की अतृप्त कामना पूर्ण कर देंगे। वे तो इच्छा-कल्पतरु हैं। उनके समीप जो कोई जो कुछ चाहता है, वे उसे वही देते हैं। तुम हृदय से उनका नाम लिए जाओ। उनका नाम, उनका ध्यान खूब लगन से करो। जब कभी समय पाओ, स्मरण-मनन करो। उनके स्मरण-मनन में समय-असमय, काल-अकाल, स्थान-अस्थान का विचार नहीं है। व्याकुल होकर प्रार्थना करना, 'प्रभु, दया करो, दया करो, दया करो। तुम कितने लोगों पर देश-विदेश में दया कर रहे हो और मुझ पर नहीं करोगे? तुम्हारी एक सन्तान (स्वयं को उद्देश्य कर) ने ही मुझे तुमको पुकारना सिखाया है।' मैं तो उसी तरह तुम्हारी कृपा पाने के लिए तुम्हें पुकार रहा हूँ। तुम्हारी सन्तान ने ही इस तरह पुकारना सिखाया है।' इस तरह पुकारे जाओ। अवश्य ही वे कृपा करेंगे। हम लोग तो उनके दास हैं। देह, मन, प्राण उनके चरणों पर चढ़ा चुके हैं। मैं कहता हूँ, वे तुम पर कृपा करेंगे, अवश्य करेंगे।"

भक्त—(सजलनयन होकर)—"आप कृपा कीजिए, आप ठाकुर से थोड़ा कह दीजिए, तभी होगा।"

महाराज—"मेरी तो कृपा है ही बच्चा, नहीं तो इतना कहता क्यों? ठाकुर जीवोद्धार के लिए आए थे। हम लोग उनके दास हैं, हम लोगों की भी इसके अतिरिक्त और कोई कामना नहीं। साधन-भजन जो कुछ करते हैं, सब जगत् के कल्याण के लिए करते हैं। नहीं तो हमें क्या आवश्यकता है? उन्होंने तो हम लोगों को सब प्रकार से परिपूर्ण कर दिया है।

कुछ भी तो और अपूर्ण नहीं रखा। फिर भी, जीव के कल्याणार्थ साधन-भजन करा ले रहे हैं।"

भक्त —"ध्यान किस प्रकार करूँ? ठाकुर की सम्पूर्ण मूर्ति का ध्यान नहीं कर पाता।"

महाराज —"वह न कर सको, तो ठाकुर के एक-एक अंग का ध्यान करना। पहले श्रीचरणों का ध्यान करना, फिर क्रमशः अन्यान्य अंग-प्रत्यंगों का। फिर ठाकुर की समस्त मूर्ति एक साथ ध्यान में लाने का प्रयत्न करना। एक बार में पूर्ण मूर्ति का ध्यान करना ही अच्छा है।"

भक्त —"माँ की मूर्ति का ध्यान नहीं कर पाता—एक प्रकार का कुछ भय-सा मालूम होता है। ठाकुर का ध्यान तो फिर भी कुछ-न-कुछ हो जाता है।"

महाराज —"सो तो ठीक ही है। ठाकुर का ध्यान तो कर लेते हो न? उसी से हो जायगा। माँ का अलग ध्यान न कर सकने पर भी कोई दोष नहीं; क्योंकि सब कुछ ठाकुर के अन्दर ही विद्यमान है—माँ भी हैं। ठाकुर समस्त देवी-देवताओं की भावघन मूर्ति हैं। अब तक जितने देवी-देवता हुए हैं, तथा भविष्य में और भी जितने होंगे, वे समस्त ठाकुर के भीतर विराजमान हैं। अतएव ठाकुर का ध्यान करने से सबका ध्यान करना हो जाता है। परन्तु यह consciousness (ज्ञान) भीतर में रहना अवश्य चाहिए।"

भक्त —"जप किस प्रकार करूँ, महाराज?"

महाराज —"जप मन-ही-मन करना अच्छा है। 'माला जपे साला, कर जपे भाई। मन मन जपे तो बलिहारी जाई।' मन-ही-मन जप करना सबसे अच्छा होता है। माला-जप या कर-जप

करते समय गिनने की ओर नजर रखनी पड़ती है। इस कारण मन सोलहों आना जप में नहीं लगता। Concentration (एकाग्रता) में कुछ विघ्न होता है। खूब प्रेम से नाम लो, गिनती में क्या रखा है? यह क्या कोई बाजारू चीज है, जो इतने रुपये गिन दिए और चीज खरीद लाए? भगवान देखते हैं भाव। वे देखते हैं हार्दिक आकर्षण। उनके ऊपर यदि प्रेम है, तो फिर किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं। प्रेम के साथ यदि एक बार भी उनका नाम लिया जाय, तो मन-प्राण आनन्द से भर जाते हैं। प्रेम के साथ एक बार नाम लेना लाख-लाख जप से अधिक है।

"अच्छा, पूजा-घर में गए थे?"

भक्त—"नहीं महाराज, अब जा रहा हूँ।"

महाराज—"अवश्य जाओ। उनके स्थान पर आए हो, पहले उनके दर्शन करना चाहिए। जाओ, पूजा-घर में जाओ। वहाँ बैठकर थोड़ा जप करो, आनन्द मिलेगा। हमारे ठाकुर बड़े जीवन्त ठाकुर हैं। यहाँ उनका विशेष प्रकाश है। अवश्य ही वे सर्वत्र हैं, फिर भी यहाँ पर एवं उनके भक्तों में उनका विशेष प्रकाश है। और देखो, थोड़ा प्रसाद लेना न भूलना।"

बेलुड़ मठ

रविवार, १८ अगस्त, १९२९

तीर्थाटन आदि की बात चल रही है। एक संन्यासी अभी श्रीबद्रीनारायण आदि तीर्थ-यात्रा कर लौटे हैं। वही प्रसग चल रहा है।

ने ठाकुर को नहीं देखा, उनका पुण्य संग लाभ नहीं किया, किन्तु हम लोगों को देखा है, और जो हम लोगों के भीतर से ठाकुर को जानने और ग्रहण करने की चेष्टा कर रहे हैं, वे भी संसार के करोड़ों नर-नारियों से अधिक भाग्यवान हैं। क्या कहते हो? स्वयं भगवान नर-देह धारण कर आए थे — यही तो उस दिन की बात है। हम लोगों की आँखों के सामने ही सब घटना घटी है। उन्होंने कैसी कठोर साधना की अग्नि प्रज्वलित की थी! आज भी उस अग्नि की आँच मनुष्यों के शरीर पर लग रही है। यह क्या कोई कम युग है, यह महापुण्य समय है। इस युग में जो 'रामकृष्ण' नाम जपेंगे, उनको जीवन का आदर्श बनाकर भगवत्प्राप्ति के मार्ग में आगे बढ़ेंगे, उनके लिए सब सहज हो जायगा। इस समय यदि श्रीरामकृष्ण के आदर्श में कोई अपने जीवन को गढ़ ले, उनके जीवन-साँचे में अपने जीवन को ढाल ले, तब तो उसके लिए भगवत्प्राप्ति का मार्ग अत्यन्त सरल है। किन्तु लोग ऐसा कहाँ कर पाते हैं?"

सन्यासी — "महाराज, भगवान-लाभ करना क्या अत्यन्त सरल है?"

महाराज — "नहीं, अत्यन्त सरल नहीं है।"

यह कहकर गाने लगे —

"'श्यामा माँ उड़ाच्छो घुड़ि।
घुड़ि लक्षेर दूटा एँकटा काटे, हेसे दाओ माँ हात चापड़ि।'*

* माँ श्यामा, तुम पतंग उड़ा रही हो। लाखों में एक-दो को ही पतंग कट पाती है, तब माँ, तुम हाथों से तालो बजा-बजाकर हँसती हो।

हमारे अन्य प्रकाशन

हिन्दी विभाग

१-३. श्रीरामकृष्णवचनामृत—तीन भागों में–अनु० पं. सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', प्रथम भाग (तृतीय संस्करण)—मूल्य ६); द्वितीय भाग (द्वि.सं.)—मूल्य ६); तृतीय भाग (द्वि. सं) —मूल्य ७)

४-५. श्रीरामकृष्णलीलामृत—(विस्तृत जीवनी)—(तृतीय संस्करण) दो भागों में, प्रत्येक भाग का मूल्य ५)

६. विवेकानन्द-चरित—(विस्तृत जीवनी)—(द्वितीय संस्करण)—सत्येन्द्रनाथ मजूमदार, मूल्य ६)

७. परमार्थ-प्रसंग—स्वामी विरजानन्द, (आर्ट पेपर पर छपी हुई)
कपड़े की जिल्द, मूल्य ३।।)
कार्डबोर्ड की जिल्द, " ३।)

स्वामी विवेकानन्द कृत पुस्तकें

८. विवेकानन्दजी के संग में—(वार्तालाप)—शिष्य शरच्चन्द्र, द्वि सं, मूल्य ५।)

९. भारत में विवेकानन्द (द्वि सं.) ५)
१०. ज्ञानयोग ३)
११. पत्रावली (प्रथम भाग) २≈)
१२. पत्रावली (द्वितीय भाग) २≈)
१३. देववाणी २≈)
१४. धर्मविज्ञान (द्वि.सं.) १।।≈)
१५. कर्मयोग (द्वि. सं) १।।≈)
१६. हिन्दू धर्म (द्वि. सं.) १।।)
१७. प्रेमयोग (तृ. सं.) १।≈)
१८. भक्तियोग (तृ. सं.) १।≈)
१९. विवेकानन्दजी से वार्तालाप १।≈)
२०. आत्मानुभूति तथा उसके मार्ग (च. सं.) १।)
२१. महापुरुषों की जीवनगाथायें (च. सं.) १।)
२२. परिव्राजक (च. सं.) १।)
२३. प्राच्य और पाश्चात्य (च. सं) १।)
२४. विविध प्रसंग १≈)
२५. व्यावहारिक जीवन में वेदान्त १≈)
२६. राजयोग १≈)
२७. स्वाधीन भारत! जय हो! १≈)
२८. चिन्तनीय बातें १)
२९. धर्मरहस्य (द्वि. सं) १)
३०. जाति, संस्कृति और समाजवाद १)
३१. भगवान रामकृष्ण धर्म तथा संघ (द्वि. सं.) ।।।≈)
३२. भारतीय नारी (द्वि.सं.) ।।।)
३३. शिक्षा (द्वि सं.) ।।≈)
३४. शिकागो-वक्तृता (प. सं.) ।।≈)